SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

## महाराजा सयाजीराव विश्व विद्यालय, बड़ौदा

की

पी.एच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

# "हिन्दी साहित्य को पुष्टिमार्ग की देन"

*

शोध छात्रा

**हरियाली ए. परीख**

*

निर्देशिका

**डॉ. शैलजा भारद्वाज**

हिन्दी विभागाध्यक्ष,

हिन्दी विभाग,

आर्ट्स फैकल्टी,

म.स. विश्व विद्यालय, बड़ौदा.

F-W-CS
16-12-09
Head
Department of Hindi
Faculty of Arts
M.S. University of Baroda
BARODA.

२००९

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

# ''हिन्दी साहित्य को पुष्टिमार्ग की देन''

Contents

# अनुक्रमणिका

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

## प्रथम अध्याय : पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की धार्मिक पृष्ठभूमि


कुमारिल भट्टाचार्य का योगदान 19

शंकराचार्य का योगदान 20

१. **प्रमुख वैष्णवचार्यों का संक्षिप्त परिचय :** 22

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) रामानुजाचार्य – | विशिष्टाद्वैत वाद – | श्री सम्प्रदाय | 22 |
| (२) निम्बार्काचार्य – | द्वैताद्वैत वाद – (भेदा–भेद वाद) | सनकादि सम्प्रदाय | 23 |
| (३) विष्णुस्वामी – | शुद्धाद्वैत वाद – | रुद्र सम्प्रदाय | 24 |
| (४) माधवाचार्य – | द्वैत वाद – | ब्रह्म सम्प्रदाय | 26 |

२. **प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों का संक्षिप्त परचिय :** 26

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) रामानंद – | विशिष्टा द्वैत वाद – | रामानंदी सम्प्रदाय | 26 |
| (२) चैतन्य महाप्रभु – | अचिन्त्य भेदा भेद वाद – | चैतन्य सम्प्रदाय | 27 |
| (३) हरिदास – | – – | सखी सम्प्रदाय | 28 |
| (४) हित हरिवंश – | – – | राधा–वल्लभ सम्प्रदाय | 29 |
| (५) वल्लभाचार्य – | शुद्धाद्वैत वाद – | वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग) | 30 |

**वल्लभाचार्य :** वंश, जन्म, शिक्षा, यात्राएँ, श्री नाथजी की सेवा, गृहस्थाश्रम व संतति, तिरोधान, शिष्य सेवक, बैठकें, ग्रन्थ–रचना, वल्लभाचार्य की सामाजिक देन

**द्वितीय अध्याय : पुष्टिमार्ग का विस्तृत परिचय** 39

१. **पुष्टिमार्ग की स्थापना व व्याख्या :** 39

(१) पुष्टिमार्ग की स्थापना 39

(२) पुष्टिमार्ग की परिभाषाएँ 40

(३) वल्लभाचार्य प्रणीत तीन मार्ग – पुष्टि मार्ग, मर्यादा मार्ग, प्रवाह मार्ग 42

(४) पुष्टिमार्ग का भक्ति पक्ष – 43

(५) पुष्टिमार्ग का ज्ञान पक्ष – 44

(१) परब्रह्म – अक्षर ब्रह्म 45

(२) जगत् – संसार 46

(३) जीव–शुद्ध जीव, संसारी जीव, मुक्त जीव 46

(४) माया 47

(५) आविर्भाव – तिरोभाव शक्ति 47

२. **पुष्टि भक्ति का स्वरुप :** 48

(१) पुष्टि भक्ति – प्रेमलक्षणा भक्ति 48

(२) शुद्ध पुष्टि – विशुद्ध प्रेम – गोपियाँ 48
(ब्रजांगनाएँ, गोप कुमारिकाएँ, गोपांगनाएँ)

(३) वात्सल्य भाव भक्ति – ब्रजांगनाएँ 48

(४) स्वकीया (पत्नी) भाव भक्ति – गोप कुमारिकाएँ 48

(५) परकीया (प्रेयसी) भाव भक्ति – गोपांगनाएँ 49

(६) नवधा भक्ति 49

(७) वल्लभाचार्य की भक्ति के प्रकार – मर्यादा भक्ति, पुष्टि भक्ति 50

| | | |
|---|---|---|
| ३. | **पुष्टिमार्ग की शरण दीक्षाएँ :** | 50 |
| (१) | समर्पण (आत्म निवेदन) अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध | 50 |
| (२) | समर्पण मंत्र – (१) गद्य मंत्र, (२) अष्टाक्षर मंत्र | 51 |
| (३) | समर्पण मंत्र की विधि | 51 |
| (४) | समर्पण व दान में अन्तर | 52 |
| ४. | **पुष्टिमार्गीय सेवा :** | 52 |
| (१) | सेवा व पूजा में अन्तर | 52 |
| (२) | पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रकार – | 53 |
| | (१) क्रियात्मक सेवा – तनुजा, वित्तजा | |
| | (२) भावनात्मक सेवा – मानसी | |
| (३) | पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम – | 53 |
| | (१) नित्योत्सव सेवा | |
| | (२) वर्षोत्सव सेवा | |
| ५. | **पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरुप :** | 53 |
| | मुख्य ग्यारह सेव्य स्वरुप हैं। | 54 |
| ६. | **पुष्टिमार्गीय आचार्यों की बैठकें :** | 55 |
| (१) | वल्लभाचार्य की चौरासी बैठकें | 55 |
| (२) | विट्ठलनाथ जी की अट्ठाइस बैठकें | 55 |
| (३) | गिरिधरलाल जी की चार बैठकें | 55 |
| (४) | गोकुलनाथ जी की तेरह बैठकें | 55 |
| (५) | हरिराय जी की सात बैठकें | 55 |
| (६) | गोवर्धन नाथ जी की तीन बैठकें | 55 |

(७) दामोदर जी की तीन बैठकें 55

७. **पुष्टिमार्ग का ललित कलाओं में योगदान :** 56

१. चित्रकला – 56

(१) चित्रकला का संक्षिप्त परिचय 56

(२) पुष्टिमार्गीय चित्रकला के प्रकार – पिछवाई कला, भिति चित्रकला 58

(३) नाथद्वारा के प्रमुख चित्रकार 60

(४) चित्रकारी की साधन – सामग्री – ब्रश, तुलिका, रंग 61

२. **सांझी कला –** 62

(१) सांझी कला का परिचय 62

(२) सांझी बनाने की रीत 62

(३) पुष्टिमार्ग में सांझी का महत्व 63

३. **छठी अंकन –** 64

(१) छठी पूजा का परिचय 64

(२) पुष्टिमार्ग में छठी का उत्सव व विधि (या रीत) 64

४. **पुष्प कला –** 64

(१) पुष्प कला का आरम्भिक परिचय 64

(२) पुष्टिमार्ग में पुष्पकला 65

५. **पाक कला –** 66

(१) पुष्टिमार्गीय पाक कला का विस्तृत विवरण – 66

सखड़ी प्रसाद, अनसखड़ी प्रसाद

८. **पुष्टिमार्ग के पर्वोत्सव :** 68

(१) नित्योत्सव व वर्षोत्सव 68

(२) वर्षभर के मुख्य उत्सवों की सूची 69

९. **पुष्टिमार्ग और ब्रज तथा ब्रज यात्रा :** 75

(१) ब्रज – पुष्टिमार्गीय परिचय 75

(२) ब्रज यात्रा – 79

(१) ब्रज यात्रा परिचय 79

(२) पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा का परिचय 79

(३) पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा की विधि 80

(४) पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा के स्थान 82

१०. **पुष्टिमार्ग में राधा का महत्व :** 90

(१) राधा का परिचय व महत्व 90

(२) पुष्टिमार्ग में राधा का स्थान 91

११. **पुष्टिमार्ग में यमुनाजी का महत्व :** 92

१२. **पुष्टिमार्ग में गिरिराज गोवर्धन का स्वरुप :** 98

१३. **पुष्टिमार्ग में रास लीला का स्वरुप :** 103

(१) रास लीला का परिचय 103

(२) रास लीला की व्याख्या 103

(३) रास लीला का आरम्भ और विकास 107

(४) रास लीला के तीन रुप – 109

नित्य रास, नैमित्तिक रास, अनुकरणात्मक रास

(५) रास लीला का वर्तमान रुप 110

१४. **पुष्टिमार्ग में तिलक व तुलसी कण्ठी का महत्व :** 112

(१) तिलक – परिचय व महत्व 112

(२) तुलसी कण्ठी – परिचय व महत्व 115

१५. **पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा :** 116

(१) लीला का अर्थ व व्याख्या 116

(२) लीला के तीन भेद – 117

**नित्य लीला** **सृष्टि लीला** **अवतार लीला**

ब्रज वृन्दावन लीला मथुरा लीला द्वारिका लीला

१६. **पुष्टिमार्ग में भगवान श्री कृष्ण – श्री नाथ जी का स्वरुप :** 121

(१) श्रीनाथ जी का प्राकट्य 122

(२) श्रीनाथ जी का स्वरुप 124

१७. **पुष्टिमार्गीय देवालयों में प्रतिष्ठित सप्त ध्वजा जी :** 126

(१) ध्वजा जी – परिचय व महत्व 126

(२) सात अंक का लगाव 127

(३) पुष्टिमार्ग की सप्तरंगी ध्वजा का वर्णन 128

(४) ध्वजा जी के तीन स्वरुप : आधि भौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक। 128

१८. **पुष्टिमार्ग की प्राचीनता:** 130

१९. **भारतीय संस्कृति में पुष्टिमार्ग का स्थान :** 131

(१) भारतीय संस्कृति में मध्यकालीन भारत – वल्लभाचार्य का समय 131

(२) समाज में पुष्टिमार्ग का स्थान 133

## तृतीय अध्याय : पुष्टिमार्गीय कीर्तन साहित्य - प्रारम्भ और विस्तार 145

१. **भारतीय संगीत :** 145

(१) संगीत की भूमिका 145

(२) संगीत की परिभाषाएँ 145

(३) संगीत के आधार – नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, सप्तक, वर्ण, अलंकार, पकड़, जाति, मेल या ठाट, राग । 147

(४) मानव जीवन में भक्ति संगीत 150

(५) संगीत का साहित्यिक इतिहास – कृष्ण काव्य के मुख्य भक्त कवि–जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, नामदेव, नरसिंह महेता, कबीर, गोपाल नायक, अमीर खुसरों। 152

२. **पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीतः** 156

(१) **भक्ताचार्यों द्वारा संगीत का विकास –** 156

स्वामी हरिदास , 158

हित हरिवंश , 159

चैतन्य महाप्रभु 161

(२) पुष्टिमार्ग में कीर्तन का आरम्भ 163

(३) पुष्टिमार्ग में कीर्तन की महिमा 163

(४) पुष्टिमार्गीय सेवा में कीर्तन गान का क्रम– 165

(१) नित्य कीर्तन सेवा का क्रम

(२) वर्षोत्सव कीर्तन सेवा का क्रम

(५) कीर्तन में प्रयुक्त राग – रागिनियाँ 168

(६) अष्टछाप द्वारा प्रयुक्त राग – रागिनियाँ 169

(७) अष्टछाप के समय के संगीतोपयोगी वाद्य – 173

(१) वाद्य के प्रकार – तत् वाद्य, सुषिर वाद्य, आनद्ध वाद्य, धन वाद्य 173

(२) मुख्य वाद्यों के नाम 174

(८) पुष्टिमार्गीय कीर्तन में प्रयुक्त गायन शैली 175

(१) ध्रुपद–घमार गायन शैली 176

(२) हवेली संगीत 178

(९) पुष्टिमार्ग के अन्य कीर्तनकार भक्त 180

(१०) कृष्ण भक्ति काव्य साहित्य में कीर्तन संगीत का स्थान 182

(११) पुष्टिमार्गीय कीर्तन की मुख्य पुस्तकें तथा उनका विवरण 184

(१) वर्षोत्सव के पद (भाग–१) 184

जन्माष्टमी से रास पर्यन्त

(२) वर्षोत्सव के पद (भाग–२) 186

धन तेरस से राखी पर्यन्त

(३) नित्य के पद (भाग–३) 192

(४) वसंत, घमार, होली, रसिया के पद (भाग–४) 197

**चतुर्थ अध्याय : पुष्टिमार्गीय साहित्य** 208

**१. मुख्य पुष्टिमार्गीय गद्य साहित्य** 208

(१) वार्ता साहित्य – 208

(१) वार्ता शब्द की व्याख्या 208

(२) वार्ता साहित्य का आरम्भ 208

(३) पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य का हिन्दी साहित्य में स्थान 210

(४) वार्ता साहित्य की भाषा – ब्रज भाषा 211

(५) पुष्टिमार्ग में वार्ता का महत्व 212

(६) पुष्टिमार्गीय वार्ता के प्रकार – 213

प्रसंगात्मक, संख्यात्मक, भावनात्मक

(७) वार्ता साहित्य का वर्गीकरण – 213

(१) साम्प्रदायिक व धार्मिक दृष्टि से 213

(२) ऐतिहासिक दृष्टि से 215

(३) सामाजिक दृष्टि से 216

(४) साहित्यिक दृष्टि से 216

(८) मुख्य वार्ता ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय – 216

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता 216

(२) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता 217

(३) निज वार्ता, धरु वार्ता, बैठक चरित्र 217

(४) महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्राकट्य वार्ता 217

(५) भाव सिन्धु की वार्ता 217

(६) श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता 217

(७) अष्टसखान की वार्ता 217

(२) भावना साहित्य 218

(३) वचनामृत साहित्य 219

(४) अन्य गद्य साहित्य 219

(५) नई खोज से प्राप्त मुख्य पुष्टिमार्गीय ब्रज भाषा के गद्य ग्रन्थ की सूची 220

२. **पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य :** 221

(१) पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य – सामान्य विवरण 221

(२) पुष्टिमार्गीय मुख्य भक्त कवियों की तालिका – 221

(१) अष्टछाप कवियों के नाम 221

(२) गोस्वामी आचार्य गण के नाम 221

(३) गोस्वामी स्त्री वर्ग के नाम 222

**पंचम अध्याय : पुष्टिमार्ग के प्रमुख रचनाकारों का परिचयात्मक विवरण** 225

१. **पुष्टिमार्ग के गोस्वामी आचार्य वर्ग** 225

(१) वल्लभाचार्य 225

(२) गोपीनाथ जी 225

(३) गुसाँई विट्ठलनाथ जी 226

(४) गोकुलनाथ जी 230

(५) हरिराय जी 233

२. **पुष्टिमार्ग के भक्त कवि – अष्टछाप** 235

(१) कुम्भनदास 236

(२) सूरदास 239

(३) परमानंददास 242

(४) कृष्णदास 244

(५) गोविन्ददास 246

(६) नंददास 247

(७) चतुर्भुजदास 248

(८) छीतस्वामी 249

(९) अष्टछाप का महत्व 249

**षष्ठ अध्याय : पुष्टिमार्गीय हिन्दी कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन** 255

१. **पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी गद्य कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन :** 255

(१) पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी गद्य कृति – 255
वार्ता साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन

(२) ब्रज भाषा हिन्दी का साहित्यिक मूल्यांकन 256

२. **पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी पद्य कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन :** 258

(१) पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी पद्य कृति – 258
अष्टछाप काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन (जिसमें भाषा शैली, रस, काव्य परम्परा आदि का विवरण है।)

(२) संक्षेप में अष्टछाप के कवियों की मुख्य कृतियों का साहित्यिक विवरण– 262

(१) सूरदास 262

(२) परमानंद दास 266

(३) कुम्भनदास 268

(४) नंददास 270

(५) गोविन्ददास 272

(६) कृष्ण दास 273

(७) छीतस्वामी 275

(८) चतुर्भुजदास 276

**सप्तम अध्याय : उपसंहार** 279

उपसंहार में मैंने अपने शोध–अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष को प्रस्तुत किया है। साथ ही मुझे सहायता व सहयोग करने वाले महानुभावों का आभार व्यक्त किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची 295

Chap-1

## प्रथम अध्याय :

# पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की धार्मिक पृष्ठभूमि

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में वि.सं. १३७५ से १७०० तक के समय को 'भक्तिकाल' के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल के अंतर्गत भी अनेक धाराएँ हैं –

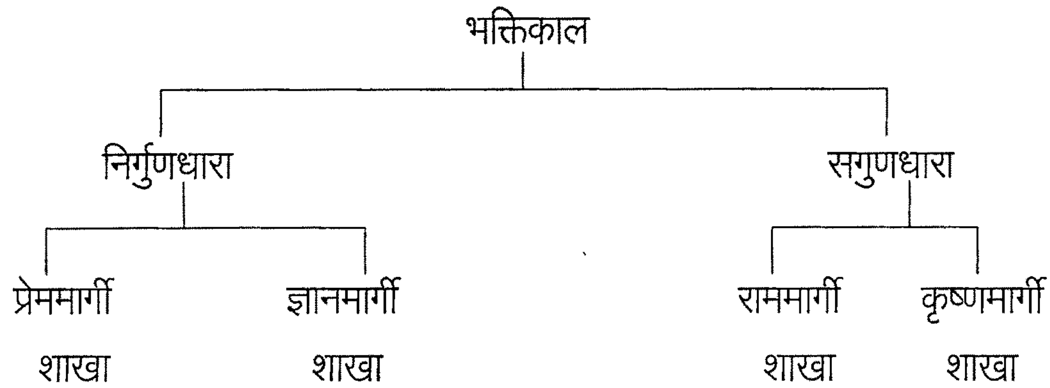


यहाँ मैं सगुण धारा की कृष्णमार्गी शाखा के भीतर रहे वैष्णव सम्प्रदायों का अध्ययन और मुख्य रुप से अपने शोध के विषय पुष्टिमार्ग पर भी अपना मंतव्य प्रस्तुत करुंगी।

आदिकाल से ही मानव स्वभाव भक्तिमय प्रकृति का रहा है। वेदकालीन मानव प्रकृत्ति के अनेक देवी – देवताओं का आवाहन करता हुआ दिखाई देता है। यही देवी – देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक भी हैं।[1] ''वेदों के बाद उपनिषद युग में मानव का ध्यान प्राकृतिक शक्तियों से अधिक उस परम शक्ति परब्रह्म की और उन्मुख हुआ, जिसे हम त्रिदेव के रुप में जानते हैं – ब्रह्मा, विष्णु और महेश। इसी कारण कालान्तर में अनेक देवी–देवता, मतवाद विकसित हुए। भारतीय संस्कृति में हमें मनुष्य के अन्तः और बाह्य दो रुपों का वर्णन मिलता है, जिसे क्रमशः लौकिक और अलौकिक अर्थात् आत्मा और परमात्मा के रुप में जानते हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा की खोज के लिए मानव ने धर्म का सहारा लिया है।''[2]

दसवीं शताब्दी में भारतीय समाज़ अनेक धर्मों का अखाड़ा बन गया था। वैदिक और पौराणिक धर्म की मान्यता तो ज्यों की त्यों बनी हुई थी, बौद्ध और जैन धर्म की अनेक विकृत शाखाएँ भी चल पड़ी थी। आचार हीनता, तन्त्र–मन्त्र तथा जादू–टोने की भावना आदि ने धर्म को ग्रस लिया था। शैवों, शाक्तों और वैष्णवों के अपने–अपने पंथ थे। धर्म में आडम्बर का बोलबाला था। नाथ पंथियों में अभी भी संयम, सदाचार और योग की प्रधानता थी। दूसरी ओर मुसलमान शासक विजेता बन कर अपने धर्म का प्रचार–प्रसार बड़ी कठोरता से कर रहे थे। लेकिन हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति दृढ़ आस्था थी। इसी कारण वे मुसलमानों के अत्याचारों से विचलित नहीं हुए।

उपरोक्त परिस्थिति से अनुमान लगाया जा सकता है कि सामान्य जनता की धर्म भावना दबती जा रही थी। इसी कारण सामान्य जनता ने अपने उद्धार के लिए भगवान की शरण लेना ही उपयुक्त समझा।

भारत वर्ष में धर्म की साधना के मुख्य तीन मार्ग है – कर्म, ज्ञान और भक्ति। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विकलांग सा हो जाता है; कर्म के बिना लूला – लँगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना हृदयविहीन या निष्प्राण–सा लगता है। ज्ञान के अधिकारी गण तो सामान्य से बहुत अधिक समृद्ध व विकसित बुद्धि के कुछ थोड़े से विशिष्ट व्यक्ति ही होते हैं, किन्तु कर्म और भक्ति ही सारे जन समुदाय की सम्पति होते हैं। इनमें से कभी ज्ञान की प्रधानता थी, कभी कर्म की तो कभी भक्ति मार्ग की प्रधानता रही है। इन तीनों का मूल उद्‌गम या स्रोत्र वेद है। किन्तु कालान्तर में कर्म मार्ग का विकास रुक–सा गया और ज्ञानमार्गियों ने अपनी वाणी में गूढ़ रहस्यदर्शिता की धाक जमाने की कोशिश की थी। सामान्य अशिक्षित या अर्द्ध शिक्षित जनता पर इनकी वाणियों का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ कि वे सच्चे और अच्छे शुभ कर्मों के मार्ग को छोड़कर तंत्र–मंत्र आदि के चक्करों में फँस गए। इसी दशा का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी ने कहा था – 'गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।' ऊपर जिस अवस्था का वर्णन हुआ है वह सामान्य जन समुदाय की थी। शास्त्रज्ञ

विद्वानों पर तो सिद्धों और जोगियों की वाणियों का कोई असर न था, वे अपना कार्य करते जा रहे थे। पंडितों के शास्त्रार्थ भी होते थे और दार्शनिक खण्डन–मण्डन के ग्रंथ भी लिखे जाते थे। उपनिषदों, गीता और ब्रह्मसूत्र पर भाष्यों की परम्परा भी विद्वान मंडलियों के भीतर चल रही थी। जिससे आगे चल कर परम्परागत भक्ति मार्ग के सिद्धांत पक्ष का कई रूपों में नूतन विकास हुआ। दूसरी ओर कविगण राज–दरबारों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वतंत्र हृदय से भक्ति के शुद्ध एवं उन्मुक्त प्रभाव को उजागर कर रहे थे।

ईसा की आठवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अवैदिक सम्प्रदायों का प्रचार होने से वैदिक धर्म की लोकप्रियता बराबर कम होती जा रही थी। इसके परिणामस्वरुप वैदिक संस्कृति और वेदानुकूल कर्म–मार्ग और ज्ञान–मार्ग की प्राचीन परम्पराएँ समाप्त सी हो गई। इस स्थिति में वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के भगीरथ प्रयत्न में जिन महान विद्वानों ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया था उनमें कुमारिल भट्टाचार्य और शंकराचार्य के नाम प्रसिद्ध हैं। इन दोनों प्रतिभाशाली विद्वानों ने प्राचीन वैदिक धर्म के ध्वंसावशेषों पर ही सुदृढ़ हिन्दु धर्म की नींव रखी। कुमारिल भट्टाचार्य ने वेदोक्त कर्म–मार्ग की और शंकराचार्य ने वेदोक्त ज्ञान–मार्ग की पुनः स्थापना की। तथापि इन दोनों के सिद्धान्तों में भेद था. किन्तु दोनों का उद्देश्य समान रूप से लुप्त हुए वैदिक हिन्दु धर्म की पुनः स्थापना करना था।

इस काल में भक्ति का प्रवाह ऐसा विस्तृत और प्रबल हुआ कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू ही नहीं, देश में रहनेवाले सहृदय मुसलमान भी आ गए। प्रेमस्वरुप ईश्वर को सामने रख कर भक्त कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए एक सामान्य व सरल भक्ति मार्ग की धारा का विकास किया। प्राचीन वैदिक और भागवत धर्मों का स्थान श्रुति–स्मृति पुराण प्रतिपादित वैष्णव धर्म ने ग्रहण किया था। शैव–शाक्तादि के अनुयायिओं की संख्या भी बढ़ रही थी। वैष्णव धर्म के अन्तर्गत राम और कृष्ण की उपासना व प्रचार–प्रसार का सूत्रपात हो रहा था। जिससे कालान्तर में कई नए धर्म सम्प्रदायों का उद्‌भव और विकास हुआ। ''वैष्णव धर्म का मूल तत्व भक्ति है, जिसे

विक्रम की ५ वीं शती से लेकर १२ वीं शती तक के काल में क्रमशः आलवारों और आचार्यों ने दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में बड़े विशद रुप में प्रचारित किया था।''[३] दक्षिण के आलवार भक्तों ने तमिल भाषा में ४००० गीत रचे जिन्हें 'दिव्य प्रबंधम्' अथवा 'नालारिय प्रबंधम्' के नाम से जाना जाता है। इन भक्तों में कई स्त्री प्रचारिकाएँ भी थीं। ''आलवार भक्तों के सिद्धान्त ही विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की पृष्ठभूमि रहे है।''[४]

यज्ञ पुराण के अनुसार भक्ति ने नारद जी को अपने जन्म और विकास की कथा बताते हुए कहा है –''मैं द्रविड़ प्रदेश में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में बड़ी हुई, महाराष्ट्र में कुछ काल तक स्थित रही, और फिर गुजरात में जाकर वृद्धा हुई हूँ।''[५] इसी प्रकार कबीरपंथी आदि अन्य संत सम्प्रदायों में यह प्रचलित है कि ''भक्ति मार्ग का जन्म दक्षिण के द्रविड़ प्रदेश में हुआ था, जहाँ से स्वामी रामानंद उसे उत्तर में लाये थे, फिर उनके कबीर आदि शिष्यों ने उसका विस्तृत प्रचार–प्रसार किया था।''[६] विद्वानों के अनुसार भक्ति के विकास का प्रथम चरण उत्तर भारत में वैदिक धर्म की पृष्ठभूमि से अंकुरित हुआ था जो नारायण अथवा वासुदेव की उपासना के रुप में हुआ था। भक्ति के विकास का दूसरा चरण दक्षिण से शुरु हुआ था जो वहाँ के आलवार भक्तों द्वारा अग्रसर किया गया था। उसी के बाद अन्य वैष्णव धर्माचार्यों ने अपने भक्ति सम्प्रदायों और दार्शनिक सिद्धान्तों को दक्षिण से उत्तर की ओर प्रचारित व प्रसारित किया। इस दूसरे चरण का प्रमुख ग्रंथ 'श्रीमद् भागवत महा पुराण' है, जो भक्ति का मूल स्त्रोत माना जाता है।

लगभग दसवीं शताब्दी तक आलवार भक्तों की परम्परा चलती रही थी उसके बाद वैष्णव आचार्यों का युग आरम्भ हुआ था। आलवारों और वैष्णव आचार्यों की भक्ति मार्ग सम्बन्धी जीवन धाराएँ कई बातों से अलग–अलग थीं। इन दोनों की तुलना करते हुए बलदेव उपाध्याय ने लिखा है ''आलवार तथा आचार्य दोनों ही विष्णु भक्ति के जीवंत प्रतिनिधि थे, परन्तु दोनों में एक पार्थक्य (भेद) है। आलवारों की भक्ति उस पावन सलिला सरिता की नैसर्गिक धारा के समान है, जो स्वयं उद्वेलित होकर प्रखर गति से बहती जाती है, और जो कुछ सामने आता है उसे तुरंत बहा कर अलग फेंक देती है।

आचार्यों की भक्ति उस तरंगिणी के समान है, जो अपनी सत्ता जमाये रखने के लिए रुकावट डालने वाले विरोधी पदार्थों से लड़ती–झगड़ती आगे बढ़ती है। आलवारों के जीवन का एक मात्र आधार था प्रपति–विशुद्ध भक्ति; परंतु आचार्यों के जीवन का एक मात्र सार था भक्ति तथा कर्म का मंजुल समन्वय। आलवार शास्त्र के निष्णात विद्वान न होकर भक्ति रस से सिक्त थे। आचार्य वेदांत के पारंगत विद्वान ही न थे, प्रत्युत् तर्क और युक्ति के सहारे प्रतिपक्षियों के मुखमुद्रण करने वाले पंडित थे। आलवारों में हृदयपक्ष की प्रबलता थी, तो आचार्यों में बुद्धिपक्ष की दृढ़ता थी।''[७]

आलवार भक्तों के अलावा दक्षिण भारत में कुछ ऐसे आचार्य हुए जो विष्णु भक्ति को उत्तरी भारत तक ले गए। इन्होंने आलवार भक्तों के प्रबन्धम् से प्रेरणा लेकर वेद, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र के आधार पर प्रमाण भी प्रस्ततु किए। इनमें प्रथम आचार्य नाथमुनि थे, विद्वानों ने जिनका समय सन् ८२४ ई. से सन् ९२४ ई. तक का बताया जाता है। इनके पूर्वज उत्तरी भारत में भागवत् धर्मावलम्बी वैष्णव थे। नाथमुनि के बाद पुण्डरीकाक्ष, राममिश्र तथा यमुनाचार्य हुए; जिन्होंने इस वैष्णव धर्म को आगे बढ़ाया। यमुनाचार्य नाथमुनि के पौत्र थे। इन्होंने ही रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद की नींव डाली थी। उत्तरी भारत में विष्णु भक्ति की अधिक प्रबलता ईसा की १५ वीं और १६ वीं शती में हुई थी। अब मैं वैदिक धर्म की पुनःस्थापना करनेवाले दो महान आचार्यों का संक्षिप्त परिचय देना चाहती हूँ –

**कुमारिल भट्टाचार्य :**

इनके वास्तविक समय तथा जीवन वृतांत के प्रमाण अप्राप्य हैं। विद्वानों के मतानुसार इनका समय ८ वीं शती का माना गया है। इन्होंने श्रीनिकेत नाम के बौद्ध विद्वान से शिक्षा ग्रहण की थी; और बाद में अपने वेदोक्त कर्म मार्ग की श्रेष्ठता प्रमाणित की थी। इनका सिद्धांत मीमांसादर्शन पर आधारित है, अतः इन्हें 'मीमांसक' भी कहा गया है। मीमांसादर्शन में वेद को प्रमाण माना गया है। कुमारिल भट्टाचार्य ने अपने समय में ही

अनेक बौद्धाचार्यों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया था तथा अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। इनके शिष्यों में मंड़न मिश्र का नाम उल्लेखनीय है, जिनका बाद में शंकराचार्य से शास्त्रार्थ हुआ था।

**शंकराचार्यः**

इनके यथार्थ काल के सम्बंध में अनेक मतभेद हैं, किन्तु अधिकतर विद्वान इनका समय ९ वीं शती मानते हैं। ये केरल प्रदेश के थे। अपनी बाल्यावस्था से ही शंकराचार्य काफी प्रतिभा सम्पन्न थे। विविध वेदोक्त की विद्या प्राप्त कर इन्होंने अपने ज्ञान मार्ग का प्रचार समस्त भारत भर में किया था। अपनी भारत देश की यात्राओं में इन्होंने अनेक धर्मावलम्बी विद्वानों को शास्त्रार्थ कर परास्त किया था। शंकराचार्य की ये यात्राएँ 'शंकर दिग्विजय' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भारत देश को धार्मिक एकता के सूत्र में बाँधने के लिए शंकराचार्य ने अनेक मठों का निर्माण करवाया था जिनके अध्यक्ष इनके प्रमुख शिष्य थे। शंकराचार्य ने मुख्य रुप से ब्रह्म सूत्र, उपनिषद और गीता पर भाष्यों की रचना की थी। इन तीनों ग्रंथों को 'प्रस्थानत्रयी' कहते हैं, जिस पर शंकर सिद्धान्त की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है।

शंकराचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त में केवल ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया है। शंकराचार्य के मतानुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है इसके अलावा यह जगत् आदि सब कुछ असत् अर्थात् माया है; इन्होंने ब्रह्म को निर्गुण कहा है, किन्तु माया के कारण सगुण–सा भाषित होने वाला माना है। इनके मत को 'केवलाद्वैतवाद' अथवा 'अद्वैतवाद' कहा जाता है। विद्वानों के मतानुसार वर्तमान वैदिक हिन्दु धर्म की सचोट नींव शंकराचार्य ने डाली थी; कुमारिल भट्टाचार्य द्वारा आरम्भ किए गए कार्य को शंकराचार्य ने बहुत कुछ आगे तक बढ़ाया था।

उपरोक्त परिस्थिति को देखें तो आलवारों और अन्य वैष्णवाचार्यों के भक्ति मार्ग के लिए शंकर सिद्धांत में कोई स्थान नहीं था। इसी कारण वैष्णवाचार्यों ने अपने भक्ति मार्ग

के प्रचार हेतु शंकर मत का खण्डन किया था। वैसे विद्वानों के मतानुसार शंकराचार्य के काल में ही भक्ति मार्ग की महत्ता को स्वीकार कर लिया गया था। इतना ही नहीं, शंकराचार्य ने श्रीकृष्ण की मूर्ति पूजा को भी स्वीकार किया था उन्हों ने कहा था कि – ''यदुनाथ श्रीकृष्ण को साकार मानने पर भी वे एकदेशीय नहीं हैं, बल्कि सर्वन्तर्यामी साक्षात् सच्चिदानंद स्वरुप परमात्मा हैं' –

''यद्यपि साकारोऽय तथैकदेशी विभाति यदुनाथः।
सर्वगतः सर्वात्मा तथाव्ययं सच्चिदानंदः।।''[6]

शंकराचार्य के केवलाद्वैतवाद के विरुद्ध दक्षिण के चार प्रमुख धर्माचार्यों ने अद्वैत के अन्य रुप विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैतवाद की स्थापना की। इन सभी आचार्यों ने शंकर के वेदान्तवाद और मायावाद का खण्डन कर प्रेमभक्ति मार्ग का सरल व सुलभ प्रचार–प्रसार किया। इन वैष्णवाचार्यों ने अपने अलग–अलग धर्म सम्प्रदायों की स्थापना भी की, जो उपासना के क्षेत्र में तो भक्ति मार्ग को ही सर्वोपरि मानते हैं; किन्तु ब्रह्म और जीव अर्थात् परमात्मा और आत्मा की सत्ता के सम्बन्ध में चारों में सैद्धान्तिक मतभेद हैं। इन चार मुख्य सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव तो दक्षिण भारत में हुआ था, किन्तु कालान्तर में वे उत्तर भारत में भी प्रचलित हो गए। इन चार सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

| **नाम** | **दार्शनिक सिद्धांत** | **प्रचलनकर्ता** |
|---|---|---|
| श्री सम्प्रदाय | विशिष्टाद्वैतवाद | रामानुजाचार्य |
| रुद्र सम्प्रदाय | शुद्धाद्वैतवाद | विष्णुस्वामी |
| सनकादि सम्प्रदाय | द्वैताद्वैतवाद | निम्बार्काचार्य |
| ब्रह्म सम्प्रदाय | द्वैतवाद | मध्वाचार्य |

## १. प्रमुख वैष्णवाचार्यों का संक्षिप्त परिचय :-

### १. रामानुजाजार्य ::

विद्वानों के मतानुसार वैष्णवाचार्य रामानुजाचार्य का जन्म वि. सं. १०७४ में दक्षिण भारत के पेरेम्बुपुरम् में हुआ था। रामानुजाचार्य बाल्य अवस्था से ही कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। इन्होंने यादवप्रकाश नामक किसी विद्वान से वेदांत की शिक्षा प्राप्त की थी। रामानुजाचार्य का देहवास वि. सं. ११९४ में हुआ था। वे १२० वर्षों तक जीवित रहे थे। रामानुजाचार्य का सिद्धान्त 'विशिष्टाद्वैतवाद' के नाम से जाना जाता है। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना की थी, जो 'श्री भाष्य' के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा रामानुजाचार्य ने गीताभाष्य, वेदान्त सार, वेदान्त दीप आदि कई अनेक ग्रंथों द्वारा अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

विशिष्ट का अभिप्राय चेतन–अचेतन विशिष्ट ब्रह्म से है, और अद्वैत का अभिप्राय अभेद अथवा एकत्व से। इस प्रकार चेतन–अचेतन विभाग विशिष्ट ब्रह्म के अभेद अथवा एकत्व के प्रतिपादन करने वाले दार्शनिक सिद्धांत को 'विशिष्टाद्वैत' कहा गया है।[१] रामानुजाचार्य शंकराचार्य की तरह जगत् को मिथ्या एवं माया द्वारा उत्पन्न नहीं मानते, बल्कि जगत् को ब्रह्म का ही अंश मानते हैं और ईश्वर को इस जगत् में अन्तर्हित मानते हैं; जैसे – जीव और जगत् ब्रह्म का शरीर है, किन्तु ईश्वर इस शरीर की आत्मा है। जहाँ ब्रह्म विभू है, पूर्ण है, ईश्वर है; और जीव अणु है, खण्डित है, दास है। नारायण विष्णु ही सबके अधिष्ठाता देव हैं, वे ही सृष्टि के जन्मदाता, पालनकर्ता और संहारक हैं। वे ही चतुर्भूज स्वरूप (शंख–चक्र–गदा–पद्म) में बिराजमान हैं। भगवान की भक्ति दास्यभाव से करना जीव का परम कर्तव्य है। भक्ति के द्वारा ही जीव ने भगवान् को प्रसन्न कर अपने आपको उनके श्री चरणों में आत्म समर्पित कर देना चाहिए; तभी उसे मुक्ति की प्राप्ति होगी।

भक्तों में मान्यता है कि भगवान नारायण ने अपनी स्वरूपा शक्ति श्री महालक्ष्मी को श्री नारायण मंत्र की सर्व प्रथम दीक्षा दी थी। इसी कारण इसे श्री सम्प्रदाय कहते हैं। इस

सम्प्रदाय के उपास्य देव 'लक्ष्मी नारायण' हैं। इस सम्प्रदाय के शिष्य विरक्त और गृहस्थ दोनों प्रकार के होते हैं। इस सम्प्रदाय में अनेक साधु-महात्मा बराबर होते रहे हैं, जिनमें रामानंद जी का नाम सबसे ऊपर आता है, जिनका विवरण आगे के पृष्ठों में दिया जाएगा।

## २. निम्बार्काचार्य ::

निम्बार्काचार्य का प्रामाणिक जीवन वृत्तांत अप्राप्य है। विद्वानों ने इनका समय लगभग ५ वीं से ११ वीं शती तक का माना है। निम्बार्काचार्य दक्षिण देश में गोदावरी नदी पर स्थित वैदुर्यपतन नामक स्थान के रहने वाले थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। डॉ. भण्डारकर ने इनका समय रामानुजाचार्य के बाद का माना है और इनका देहावसान काल सं. १२१९ के लगभग माना है। निम्बार्काचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे हैं, जिन्हें 'वेदांत पारिजात सौरभ' कहते हैं। इसके अलावा सिद्धांत रत्न (दश श्लोकी), श्री कृष्ण स्तवराज आदि कई ग्रंथों की रचनाएँ की हैं।

निम्बार्काचार्य के दार्शनिक सिद्धांत को 'द्वैताद्वैतवाद' अथवा 'भेदा-भेद वाद' भी कहते हैं। निम्बार्काचार्य के भेदाभेद वाद की पृष्ठ भूमि भास्कराचार्य ने की थी। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर महत्वशाली भाष्य लिखा था। इनका समय ९ वीं शती माना गया है। ये रामानुज के पूर्ववर्ति थे, क्योंकी रामानुचार्य के श्री भाष्य में इनके नाम का उल्लेख मिलता है। इस सिद्धांत का आधार जीव और ब्रह्म का स्वाभाविक भेदा-भेद है; इसमें जीव को ब्रह्म से भिन्न माना है और अभिन्न (अर्थात् एक ही) भी माना है। जीव, ब्रह्म का ही अंश है, अतः वह सत्य है किन्तु जीव सत्य होने पर भी अपने ज्ञान और भोग के लिए ब्रह्म पर आश्रित है। ब्रह्म और जीव के इस भेदा-भेद वाद को द्वैताद्वैत सिद्धांत का मूल तत्व माना जाता है। अर्थात् ब्रह्म, जीव और जगत एक ही हैं, और अलग-अलग भी । श्री कृष्ण ही परब्रह्म हैं और उनका श्रवण, मनन करना ही जीव का धर्म है, परम उद्देश्य है।

इस सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार स्वयं देवर्षि नारद ने निम्बार्काचार्य को गोपाल मंत्र की दीक्षा दी थी। इस सम्प्रदाय में निम्बार्काचार्य को भगवान के सुदर्शन चक्र का अवतार माना गया है। नारद जी को इस मंत्र की दीक्षा सनकादि ऋषियों से मिली थी।

इसी कारण इस सम्प्रदाय को 'सनकादि सम्प्रदाय' कहते हैं। इस सम्प्रदाय में 'राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप' की उपासना की जाती है। राधा की महत्ता को धार्मिक रूप से इसी सम्प्रदाय ने सर्व प्रथम स्वीकार किया था। इस सम्प्रदाय में राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप के रूप में शालीग्राम की सेवा–पूजा की जाती है। निम्बार्काचार्य की शिष्य परम्परा में श्री निवासाचार्य का नाम प्रमुख है। इनके अलावा देवाचार्य और श्री केशव काश्मीरी भट्ट के नाम उल्लेखनीय हैं।

### ३. विष्णुस्वामी ::

यह तो निश्चित किया गया है कि विष्णु स्वामी एक प्राचीन आचार्य थे, किन्तु इनके यथार्थ समय को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद हैं। कुछ विद्वानों, जैसे डॉ. भण्डारकर, आर्थर वेनिस आदि ने विष्णुस्वामी को १३ वीं शती के लगभग माना है। इन विद्वानों का अनुमान है कि विष्णु स्वामी का समय रामानुजाचार्य और निम्बार्काचार्य के पश्चात् और माधवाचार्य के पूर्व का हो सकता है। ऐसी किवदंती है कि विष्णुस्वामी एक ब्राह्मण–पुत्र थे और शास्त्रों में पारंगत थे तथा कठिन तपस्या द्वारा उन्हें भगवान विष्णु के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। विष्णु स्वामी के रचे कोई भी ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन विष्णु स्वामी ने किया, इस विषय में भी मतभेद हैं, किन्तु डॉ. भण्डारकर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ''विष्णु स्वामी का दार्शनिक सिद्धांत वही था जो वल्लभाचार्य का है।''[१०] क्योंकि शोध का विषय वल्लभाचार्य से सम्बन्धित है (पुष्टिमार्ग) शुद्धाद्वैत दर्शन का विस्तृत वर्णन मैं आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत करुंगी।

भक्तों में ऐसी मान्यता है कि विष्णुस्वामी के सम्प्रदाय के प्रर्वतक भगवान शंकर हैं इसी कारण इसे 'रुद्र सम्प्रदाय' के नाम से जाना जाता है। भक्तों में ऐसी मान्यता भी है कि शंकर भगवान ने इसका सर्व प्रथम उपदेश बालखिल्य ऋषियों को दिया था जो ज्ञान कालान्तर में विष्णु स्वामी को प्राप्त हुआ।

विष्णु स्वामी की शिष्य परम्परा में ज्ञानदेव, नामदेव और त्रिलोचन के नाम उल्लेखनीय हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के ग्रंथों में वल्लभाचार्य को विष्णु स्वामी का मतानुवर्ती

बताया गया है। इस सम्प्रदाय के उपास्य देव 'श्री नृसिंह' हैं, जो श्री कृष्ण के ही अवतार माने जाते हैं। विद्यानगर के शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त कर वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उसी समय विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की गद्दी पर बिराजमान बिल्वमंगल नामक आचार्य ने वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी का सुयोग उत्तराधिकारी मान कर उन्हें उस गद्दी पर प्रतिष्ठित किया था। कालान्तर में वल्लभाचार्य जी ने विष्णुस्वामी के दार्शनिक सिद्धांत और रुद्र सम्प्रदाय को विकसित कर नवीन रूप प्रदान किया था। हालाँकि वल्लभाचार्य जी का सम्प्रदाय विष्णुस्वामी से पृथक है, इसका वर्णन मैं वल्लभाचार्य जी के प्रसंग में प्रस्तुत करुंगी।

## ४. माधवाचार्य ::

माधवाचार्य का जन्म दक्षिण भारत में बेलिग्राम में हुआ था विद्वानों ने इनका समय वि. सं. १२९५ माना है। इन्हों ने छोटी–सी आयु में ही संन्यास ग्रहण कर, वेदांत का अध्ययन किसी अच्युतपक्षाचार्य नामक संन्यासी से प्राप्त किया था। माधवाचार्य ने भी अद्वैत के विरुद्ध अपने द्वैतवाद की स्थापना की थी । अपने सिद्धान्त का प्रचार–प्रसार करने के लिए इन्होंने भारतभर की यात्राएँ की थी। माधवाचार्य ने सुब्रह्माण्य, मध्यतल और उड़ीपि में तीन शालीग्राम की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी की थी। इन्होंने उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र पर भाष्यों की रचना की थी। इसके अलावा गीता तात्पर्य निर्णय, न्याय विवरण, तंत्र सार संग्रह आदि कई और भी उल्लेखनीय ग्रंथों की रचनाएँ की थीं।

माधवाचार्य के द्वैताद्वैत सिद्धांत के अनुसार समस्त पदार्थ परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाते हैं। परब्रह्म और जीव दोनों ही सत्य हैं, अनादि हैं, किन्तु दोनों में भेद है। परब्रह्म स्वतंत्र सत्ता है और जीव परतंत्र, परमात्मा के आधीन है। इस सिद्धांत में पाँच मुख्य भेद हैं–

१. ईश्वर का जीव से नित्य भेद है,

२. ईश्वर का जड़ पदार्थ से नित्य भेद है,

३. जीव का जड़ पदार्थ से नित्य भेद है,

४. एक जीव का दूसरे जीव से नित्य भेद है,

५. एक जड़ पदार्थ का दूसरे जड़ पदार्थ से नित्य भेद है।

इस सिद्धांत को पंच भेद सिद्धांत कहते हैं। श्री विष्णु ही जीव के सर्वस्व हैं, इनकी भक्ति कर जीव वैकुंठ को प्राप्त कर सकता है।

भक्तों में मान्यता है कि माधवाचार्य के सम्प्रदाय का आरम्भ ब्रह्मा जी ने किया था, अतः इसे 'ब्रह्म सम्प्रदाय' कहते हैं। इस सम्प्रदाय में दार्शनिक सिद्धांत की अपेक्षा श्रीमद् भागवत के भक्ति तत्व पर अधिक बल दिया गया है। इस सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र दक्षिण देश का उड़ीपि नामक स्थान है। विद्वानों के मतानुसार चैतन्य महाप्रभु को इसी सम्प्रदाय की शाखा का मतानुयायी माना जाता है।

उपरोक्त चारों सम्प्रदायों से प्रभावित होकर लगभग **१४** वीं से **१६** वीं शती के अन्त तक अन्य पृथक – पृथक वैष्णव सम्प्रदायों का निर्माण हुआ, जिनकी नींव तो उपरोक्त चारों वैष्णव सम्प्रदायों पर आधारित कहा जा सकता है, जिनमें मुख्य है –

## २. प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय :-

| | सम्प्रदाय | | दर्शन | | आचार्य |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | रामानंदी सम्प्रदाय | – | विशिष्टाद्वैतवाद | – | रामानंद |
| २. | वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग) | – | शुद्धाद्वैतवाद | – | वल्लभाचार्य |
| ३. | चैतन्य सम्प्रदाय | – | अचिन्त्य भेदा भेदवाद | – | चैतन्य महाप्रभु |
| ४. | सखी सम्प्रदाय | – | – – | – | स्वामी हरिदास |
| ५. | राधा वल्लभ सम्प्रदाय | – | – – | – | हित हरिवंश |

अब मैं इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती हूँ –

### १. रामानंद ::

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि रामानंद रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा के हैं, अपने ग्रंथ 'श्री रामार्चन पद्धति' में रामानंद ने अपनी पूरी गुरू परम्परा दी है जिसके अनुसार वे १४ वीं पीढ़ी में आते हैं। रामानंद का भी प्रामाणिक वृत्तांत उपलब्ध नहीं है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इनका समय वि.सं. १४६७ से १५६७ तक का माना है। दूसरी ओर इनके भक्तों ने इनका समय वि.सं. १३५६ से १४६७ तक का माना है।

मुख्यतः रामानंद का कोई भी यथार्थ वृत अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। वैष्णवचार्यों में केवल रामानंद जी ही उत्तर भारतीय धर्माचार्य थे। रामानंद जी ने अपने समय की परिस्थितियों के अनुरूप विष्णु के अवतार 'श्री राम' को अपना आराध्य देव मानकर उनकी उपासना का क्रम चलाया। रामानंद ने भी रामानुजाचार्य के दार्शनिक सिद्धांत को माना है, जिसके अनुसार दास्य भाव की भक्ति की महत्ता को स्वीकारा गया है; किन्तु इनकी उपासना विधि में अन्तर है, यहाँ भगवान राम के नाम का ही जाप किया जाता है। इसी कारण इसे 'रामावत' अथवा 'रामानंदी सम्प्रदाय' कहते हैं। रामानंद के रचे दो ग्रंथ मिलते हैं – वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। रामानंद ने जाति–पाँति, ऊँच–नीच आदि भेदों को भूल कर सभी प्राणियों के लिए अपने सगुण व सुलभ भक्ति मार्ग के द्वार खोल दिए थे। रामानंद की शिष्य परम्परा दो भागों में विभक्त है – वैरागी और संत, जो क्रमशः सगुण और निर्गुण भक्ति को माननेवाले हैं। वैरागी समुदाय वाले सगुण भक्ति के रूप श्री राम की सेवा करते हैं जिसके प्रमुख आचार्य अनंतानंद थे। जबकि संत समुदाय ने श्री राम की निर्गुण निराकार भक्ति को अपनाया है, जिनमें प्रमुख रूप से कबीर, रैदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

'जाति–पाँति पूछे नहि कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।'

भक्तों में मान्यता है कि उपरोक्त उक्ति रामानंद द्वारा प्रचलित की गई है।

## २. चैतन्य महाप्रभु ::

विद्वानों ने चैतन्य महाप्रभु का जन्म वि.सं. १५४२ में बंगाल के नवद्वीप नामक स्थान पर हुआ माना हैं। वे एक बंगाली ब्राह्मण थे। छोटी आयु में ही इन्होंने समस्त विद्या प्राप्त कर ली थी। इसके पश्चात् का पूरा जीवन चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचार–प्रसार में व्यतीत कर दिया था। चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णोपासना करना ही जीव का परम उद्देश्य माना है। इसी कारण इतने बड़े विद्वान होते हुए भी चैतन्य महाप्रभु ने न किसी विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, न ही कोई शास्त्रोक्त ग्रंथ की रचना

की। वे तो संर्कितन और नाम–जप द्वारा अपने प्रभु में लीन रहनेवालों में से थे। चैतन्य महाप्रभु ने माधव मतानुयायी होने के कारण माध्वाचार्य के ब्रह्म सूत्र भाष्य को अपने मत में स्वीकार किया था। इसके अलावा महाप्रभु चैतन्य श्रीमद् भागवत् को ही सर्वोपरि सिद्धांत ग्रंथ मानते थे।

कालान्तर में चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों ने उनकी शिक्षाओं के आधार पर स्वतंत्र दार्शनिक सिद्धांत की रचना की, जिसे 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' कहते हैं। परब्रह्म श्रीकृष्ण ही सर्वशक्तिमान हैं, उनकी शक्ति के रूप में ही जीव और जगत् विद्यमान है। ब्रह्म का जीव और जगत् से सम्बन्ध वैसा ही है जैसा अग्नि और दाहिका शक्ति का। इसी प्रकार ब्रह्म अस्तित्व की दृष्टि से जीव और जगत् से अभेद है और कार्य की दृष्टि से भेद है। यही भेदाभेद सम्बन्ध है, जो नित्य भी है और सत्य भी है, इसी कारण यह अचिन्त्य है अर्थात् मानवीय चिन्तन से ऊपर है। इसे ही 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' कहते हैं। सामान्य जन मानस के लिए इस प्रपंच को समझना बड़ा कठिन है।

चैतन्य महाप्रभु के मत को 'चैतन्य सम्प्रदाय' कहते हैं। इस सम्प्रदाय का जन्म तो बंगाल और उड़ीसा में हुआ था, किन्तु कालान्तर में यह बृज में, वृंदावन में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुका है। इस सम्प्रदाय के उपास्य देव भगवान 'श्री कृष्ण' हैं, वृंदावन उनका परम धाम है और ब्रज गोपिकाओं की विशुद्ध प्रेमोपासना ही इस सम्प्रदाय का आदर्श है। भावावेश में आकर प्रभु की लीला का स्मरण करते हुए, संकीर्तन के साथ, प्रभु में लीन हो जाना इस सम्प्रदाय की विशेषता है। चैतन्य सम्प्रदाय का विशाल साहित्य जो हमें प्राप्त होता है वह चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों द्वारा रचित है, जिनमें मुख्य रूप से रूप सनातन, जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज के नाम उल्लेखनीय हैं।

### ३. स्वामी हरिदास ::

हरिदास जी का भी प्रामाणिक जीवन वृत्तांत प्राप्त नहीं है। मोटे तौर पर विद्वानों ने इन्हें अकबर का समकालीन माना है। इसका मुख्य कारण उनके शिष्य तानसेन हैं जो अकबर दरबार के प्रमुख संगीतज्ञ थे। वैसे अकबर से भेंट और तानसेन का शिष्यत्व इन

दोनों किवदंती  का कोई प्रामाणिक वृत्त अभी तक नहीं मिला। स्वामी हरिदास वृदांवन में निधुबन नामक स्थान पर रहते थे और अपनी संगीत साधना और भक्ति में लीन रहा करते थे। स्वामी हरिदास ब्रज की सुप्रसिद्ध ध्रुपद–धमार शैली में अपने पद गाया करते थे। सिद्धांत के पद और केलिमाल में उनके पद संकलित मिलते हैं। स्वामी हरिदास सखी भाव से अपने 'श्री श्यामकुंज बिहारी' की भक्ति करते थे, इसी कारण उनका सम्प्रदाय 'सखी सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय में मुख्य रूप से प्रभु की सखी भाव से विशुद्ध प्रेमोपासना की जाती है। स्वामी जी एक विरक्त संत थे इसी कारण उनकी भक्ति में वैराग्य और रसिकता का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भक्तों में मान्यता है कि वृंदावन के बिहारी मंदिर का प्राकट्य स्वामी हरिदास ने किया था। स्वामी हरिदास को सम्प्रदाय में ललिता सखी के रूप में भी माना जाता है। स्वामी हरिदास जी ने किसी भी दर्शनिक सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया और ना ही किसी ग्रंथ की रचना की है। स्वामी जी के समस्त अनुयायी दो वर्गों में विभाजित हैं – प्रथम वर्ग वो जो वृंदावन के टट्टी संस्थान से सम्बंधित विरक्त संतों का है और दूसरा वर्ग वो जो बिहारी जी के मंदिर के पुजारी का गृहस्थ गोस्वामी गणों का है। स्वामी हरिदास के समकालीन आचार्यों में हित हरिवंश, हरिराम व्यास और प्रबोधानंद के नाम उल्लेखनीय हैं।

## ४. हित हरिवंश ::

विद्वानों के मतानुसार हित हरिवंश का जन्म सहारनपुर जिले के देबबन नामक गाँव में एक गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनका समय वि.सं. १५५९ का माना जाता है। हित हरिवंश ने संस्कृत भाषा में 'राधा सुधानिधि' और 'यमुनाष्टक' तथा ब्रज भाषा में 'हित चौरासी', 'स्फुट वाणी' और 'श्री मुखपत्री' नामक ग्रंथों की रचना की है। हित हरिवंश जी का सम्प्रदाय 'राधा–वल्लभ सम्प्रदाय' के नाम से जाना जाता है। इसमें राधा–कृष्ण की प्रेम भक्ति की उपासना की जाती है। हित हरिवंश ने अपने साम्प्रदायिक उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है – ''सृष्टि का रचयिता कौन है, कौन इसे धारण करता है और कौन इसका संहार करता है – इन निरर्थक बातों पर विचार करने के लिए हमें अवकाश नहीं

है। हमारा प्रयोजन तो श्री राधा कृष्ण की केलिक्रीड़ाओं वाली कुँज विथियों की उपासना करना है।''[११] हित हरिवंश जी ने अपने भक्ति सिद्धांत की रूप रेखा इस प्रकार बताई है–

''सबसो हित, निष्काम मति, वृंदावन विश्राम।
श्री राधा वल्लभलाल कौ हृदय ध्यान मुख नाम ।। १ ।।
तनहिं राखि सत्संग में, मनहिं प्रेमरस भेव।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतरु सेव ।। २ ।।''

हित हरिवंश के समकालीन आचार्यों में स्वामी हरिदास, हरिराम व्यास और प्रबोधानंद जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

## ५. महाप्रभु वल्लभाचार्य ::

**वंश :** वल्लभाचार्य के पूर्वज दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश के काँकरवाड़ नामक गाँव के निवासी थे। ये कृष्ण यजुर्वेद की तैतिरीय शाखा के तैलंग ब्राह्मण थे, इनका गोत्र भारद्वाज था। वल्लभाचार्य का वंश 'सोमयाझी' कहलाता था। वल्लभाचार्य के वंशज यज्ञ नारायण भट्ट ने ३२ सोमयज्ञ किए थे, इनके बाद गंगाधर भट्ट ने २८ सोमयज्ञ किए थे, इनके पश्चात् गणपति भट्ट ने ३० सोमयज्ञ किए थे, इनके बाद वल्लभ भट्ट तथा वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट ने ५–५ सोमयज्ञ किए थे। इस प्रकार वल्लभ के वंशजों ने सौ सोमयज्ञ पूर्ण किए थे, जिसके पश्चात् यह दैवी वाणी सुनाई पड़ी कि – 'वत्स लक्ष्मण भट्ट ! तुमने सौ यज्ञ करके अपने पिता के प्रपितामह का संकल्प पूर्ण कर दिया है इसलिये में तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ और तुम्हारें उन पूर्वजों को दिए हुए व्रत को सफल करने के लिए तथा अपने भक्त के कल्याण के लिए तुम्हारी पत्नी के पुण्य गर्भ से शीघ्र ही अवतार धारण करूँगा।'[१२] कुछ समय पश्चात् लक्ष्मण भट्ट जी तीर्थ यात्रा करते हुए काशी पहुँचे। वहाँ इन्होंने हनुमान घाट पर स्थायी निवास किया तथा अपना धार्मिक कार्य सम्पन्न किया। एक दिन वहाँ दिल्ली के तत्कालीन बादशाह बहलोल लोदी द्वारा आक्रमण के भय की चर्चा से लक्ष्मण भट्ट पुनः अपने देश दक्षिण की ओर चल पड़े। तभी रास्ते के मध्य, मध्यप्रदेश स्थित चम्पारण नामक निर्जन वन को पार करते समय पत्नी इल्लमागारु को

प्रसव–पीड़ा होने लगी। अतः रात्रि के समय माता इल्लमागारु ने उस निर्जन वन में एक विशाल शमी वृक्ष के नीचे एक बालक को जन्म दिया। माता–पिता ने देखा बालक सर्वथा संज्ञाहीन है, अतः उन्होंने उसे मृत समझा और वहीं छोड़कर आगे बढ़ गये। दूसरे दिन प्रातःकाल सहयात्रियों से सूचना मिली के काशी पर कोई आक्रमण नहीं होने वाला। अतः वे पुनः काशी की ओर चल पड़े। जब (माता–पिता) लक्ष्मण भट्ट जी पुनः उस स्थान पर पहुँचे तो नेत्र विस्मय से भर उठे, क्योंकि मृत बालक माँ धरती की गोद में आनन्दपूर्वक लेटा हुआ था और उसके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित थी। यह देखकर माता इल्लमागारु ने दौड़ कर अपने पुत्र कों हृदय से लगा लिया। विद्वानों का मत है कि यही बालक आगे चल कर जगतगुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

**जन्म व शिक्षा :** वल्लभाचार्य का जन्म विक्रम संवत १५३५ की वैशाख कृष्ण एकादशी, रविवार को हुआ था।[१३] वल्लभाचार्य का बाल्य काल काशी में ही व्यतीत हुआ था, जहाँ उनकी शिक्षा भी सम्पन्न हुई। वल्लभाचार्य ने छोटी सी आयु में ही वेद, वेदांत, उपनिषदों, पुराणों आदि कई धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था और काशी में ही वल्लभाचार्य ने कई विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उन पर विजय प्राप्त की थी।

**यात्राएँ :** वल्लभाचार्य ने पिता के गोलोकवास के पश्चात् माता को मामा के घर विद्यानगर में छोड़ कर अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु माता की आज्ञा से भारत भ्रमण का आरम्भ किया। वल्लभाचार्य ने तीन बार पूरे भारत की यात्राएँ की । इन यात्राओं को पुष्टि सम्प्रदाय में 'वल्लभ दिग्विजय' अथवा 'पृथ्वी परिक्रमा' के नाम से जाना जाता है। इन यात्राओं में वल्लभाचार्य ने मायावाद का खण्डन किया तथा अपने भक्तिमार्ग–पुष्टिमार्ग का प्रतिपादन किया। इन यात्राओं की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–[१४]

विद्यानगर के राजा कृष्णदेव की धर्मसभा में शास्त्रार्थ कर सभी मायावादियों और अन्य विद्वानों को निरूतर कर अपने दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैत का प्रतिष्ठान कर, भक्तिमार्ग – वैष्णव पक्ष का ऐसा समर्थन किया कि सभी को आपके सामने झुकना पड़ा। इस विजय पर राजा कृष्णदेव ने 'कनकाभिषेक' कर के, 'आचार्य अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगत् गुरु श्रीमदाचार्य महाप्रभु' की पदवी से सम्मानित भी किया।

एक बार की अपनी यात्रा में वल्लभाचार्य जगन्नथपुरी पहुँचे तो वहाँ विद्वानों में शास्त्रार्थ हो रहा था। विषय था – मुख्य शास्त्र कौन सा है? मुख्य देव कौन है? मुख्य मंत्र क्या है? मुख्य कर्म क्या है? वल्लभाचार्य ने भी अपना मत प्रस्तुत किया किन्तु कुछ विद्वानों को सन्तुष्टि नहीं हुई, अन्त में कागज–कलम–दवात मंदिर में रख कर मंदिर के पट बन्द कर दिए गए। जब थोड़ी देर बाद जगन्नाथ जी के पट खोले गए तब कागज पर निम्नलिखित श्लोक लिखा हुआ था–

'एकं शास्त्र देवकी पुत्र गींत, ऐको देवो देवकी पुत्र एव।
मंत्रोड़प्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माप्येक तस्य देवस्य सेव ।।'[१५]

अर्थात् देवकी पुत्र भगवान श्री कृष्ण द्वारा प्रणयित श्रीमद् भागवद गीता एक मात्र शास्त्र है, देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ही एकं मात्र देव हैं, उन प्रभु का नाम ही एक मात्र मंत्र है, और उनकी सेवा करना ही एक मात्र कर्म है।

इसके पश्चात् यात्रा करते हुए मथुरा आकर विश्राम घाट की यंत्रबाधा को भी दूर किया तथा वहाँ से गोकुल में आकर कई स्थलों को भागवत् पारायण कर समृद्ध किया, जहाँ भगवान श्री कृष्ण ने लीलाएँ की थी।

अपनी यात्रा के दौरान ही पंढरपुर में श्री विठ्ठलेश प्रभु के दर्शन कर उनकी आज्ञा मान कर वल्लभाचार्य ने विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए।

**श्रीनाथजी की सेवा :** अपनी ब्रज यात्रा में गिरिराज पर्वत पर प्रकट हुए श्री गोवर्धननाथ जी को 'श्रीनाथजी' के रूप में प्रकट कर, छोटे से मंदिर में प्रतिष्ठित किया तथा श्रीनाथजी की सेवा व्यवस्था का कार्य भी सम्पन्न किया। उसी समय एक सेठ पूरनमल खत्री ने वल्लभाचार्य की आज्ञानुसार श्रीनाथजी के लिए भव्य मंदिर का निर्माण कार्य शरू किया तथा श्रीनाथजी की सेवा के लिए बंगाली ब्राह्मणों की नियुक्ति की।

**गृहस्थाश्रम व संतति :** जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वल्लभाचार्य ने श्री विठ्ठलेश प्रभु की आज्ञा से विवाह करना स्वीकार किया तथा काशी आकर सजातीय ब्राह्मण कन्या महालक्ष्मी का पाणिग्रहण किया। वल्लभाचार्य के दो पुत्र थे – गोपीनाथ जी तथा विठ्ठलनाथ जी।

**तिरोधान :** वल्लभाचार्य ने विक्रम संवत १५८७ की आषाढ़ शुक्ल तीन के दिन, हनुमान घाट पर, गंगा जी के बीच धारा में जल समाधि ले ली। वल्लभाचार्य ५२ वर्ष तक पृथ्वी पर रहे तथा अपने भक्तिमार्ग का प्रचार कर जन साधारण की उन्नति करते रहे।

**शिष्य–सेवक :** वल्लभाचार्य के मुख्य ८४ सेवक हैं, जिनका वर्णन चौरासी वैष्णवन की वार्ता में मिलता है। इनके सेवक किसी भी जाति या वर्ण के थे अर्थात् किसी प्रकार के भेदभाव बिना वल्लभाचार्य ने सभी को भगवान की सेवा में प्रस्तुत कर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। स्त्री वर्ग तथा शूद्र जाति पर इनकी विशेष कृपा थी।

**बैठकें :** वल्लभाचार्य ने अपनी भारत यात्राओं के दौरान जहाँ–जहाँ पर श्रीमद् भागवत का पारायण किया उस जगह को पुष्टिमार्ग में 'महाप्रभु जी की बैठक' के नाम से जाना जाता है। वल्लभाचार्य की मुख्य ८४ बैठकें हैं।

**ग्रन्थ रचना :** वल्लभाचार्य ने कई ग्रन्थों की रचना की जिनमें अपने शुद्धाद्वैत दर्शन तथा पुष्टि भक्ति मार्ग का वर्णन प्रस्तुत किया। मुख्य ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है– [१६]

+ अणुभाष्य – यह श्री बादरायण व्यास के ब्राह्म सूत्रों पर लिखा भाष्य है। इस ग्रन्थ में वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत दर्शन की पुष्टि की है।
+ सुबोधिनी – यह ग्रन्थ श्रीमद् भागवत पर लिखी गई टीका है।
+ तत्वार्थदीप निबन्ध – इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं – शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्व निर्णय प्रकरण, भागवतार्थ प्रकरण।
+ पूर्व मीमांसा भाष्य अथवा जैमिनि सूत्र भाष्य।
+ पत्रावलम्बन
+ त्रिविध नामवली
+ शिक्षा श्लोकी
+ न्यासा देश
+ पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम
+ गायत्री भाष्य
+ भागवत सूक्ष्म टीका
+ भागवत पीठिका
+ भागवत दशम स्कन्ध अनुक्रमणिका
+ विविध अष्टक (मधुराष्टक, कृष्णाष्टक आदि)
+ प्रेमामृत
+ सेवा फल विवरण

+ षोडश ग्रन्थ – श्री यमुनाष्टकम्, बालबोध, सिद्धान्त मुक्तावली, पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद, सिद्धान्त रहस्यम्, नवरत्नम्, अन्तः करण प्रबोध, विवेक धैर्याश्रय, निरूपणम्, श्री कृष्णाश्रयः, चतुःश्लोकी, भक्तिवर्धिनी, जलभेद, पंचपद्य, संन्यासनिर्णय, निरोधलक्षणम्, सेवा फलम्।

पुष्टि सम्प्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य के सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। किन्तु वल्लभाचार्य ने अपने व्याख्यान और प्रचार कार्य में ब्रज भाषा का प्रयोग किया था। वल्लभाचार्य को ब्रज भाषा इसलिए भी प्रिय थी क्योंकि यह उनके इष्टदेव भगवान श्री कृष्ण की लीला भूमि से सम्बंधित थी। वे इसे 'पुरूषोत्तम भाषा' भी कहते थे। वल्लभाचार्य ने स्वयम् तो ब्रज भाषा में ग्रन्थ रचना नहीं की, परन्तु अपने सम्प्रदाय के सेवकों तथा समकालीन अनेक व्यक्तियों को श्री कृष्ण भगवान की ब्रज भाषा में रचना करने की प्रेरणा दी।[१७]

अतः हम कह सकते हैं कि वल्लभाचार्य जी ने ब्रज भाषा की उन्नति का कार्य अवश्य आरम्भ किया।

## वल्लभाचार्य की सामाजिक देन

वल्लभाचार्य ने अपने ५२ वर्ष के कार्य काल में समस्त भारत का आध्यात्मिक और सामाजिक मार्गदर्शन करने का कार्य किया। वल्लभाचार्य का युग राजनैतिक दृष्टि से धार्मिक भावनाओं के अनुकूल नहीं था, देश विदेशी आक्रान्ताओं से त्रस्त था। सर्वत्र अशान्ति थी। इसका वर्णन वल्लभाचार्य ने अपने 'कृष्णाश्रय ग्रन्थ' में किया है। यदि भक्तिकाल के भक्त साधकों, संतों और आचार्यों के जीवन कार्य को देखा जाए तो उनकी जीवन पद्धति व उपदेशों से सर्वत्र लोक मंगल के कार्य हुए प्रतीत होते हैं। इन महानुभावों के आचरण तथा उपदेश युगों–युगों तक जन साधरण व समाज को प्रभावित करते रहेंगे। वल्लभाचार्य ने भारत भ्रमण कर अपने उपदेशों का, भक्ति मार्ग का प्रचार कर अपार जनसमूह को सरल व सादा जीवन व्यतीत करने को कहा। वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग को समन्वयवादी मार्ग कहा है। पुष्टि मार्ग में सभी देवों, अवतारों की स्तुति श्रद्धाभाव से

की जाती है। अपने समय की कुरीतियों को देखते हुए वल्लभाचार्य ने व्यक्ति के आचरण की पवित्रता को ही भगवत् भक्ति का मार्ग बनाया।

वल्लभाचार्य ने परिवार और समाज को आध्यात्मिक उन्नति में बाधक नहीं माना। अतः उन्होंने पारिवारिक समाज सापेक्ष भगवत् सेवा का प्रचार–प्रसार किया। वल्लभाचार्य ने सद्गृहस्थ के रूप में सभी वर्ग, वर्ण, जाति, कुल आदि की मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए सबके कल्याण के लिए, सबकी सांसारिक पीड़ा को दूर करने के लिए तीन बार देशाटन किया तथा पारिवारिक भगवत् सेवा के रूप में साधारण जनता को गृहस्थ धर्म का स्वरूप समझाकर पाखण्ड़रहित, दम्भरहित साधारण जीवनयापन करना सिखाया। सभी मनुष्य को समभाव से देखना ही सर्वोच्च धर्म है जो मनुष्यों के बीच किसी प्रकार की ऊँच–नीच की भावना की दीवार खड़ी नहीं होने देता। मनुष्य मात्र को सांसारिक भोग्य पदार्थों का प्रभु प्रसाद के रुप में ग्रहण कर उपभोग करना चाहिए। इसके लिए वल्लभाचार्य ने त्रिसूत्री योजना बनाई–'प्रत्येक व्यक्ति को पूरी शक्ति से स्वधर्म का आचरण करना चाहिए, विधर्म से बचना चाहिए और संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए'–इन तीन सिद्धान्तों से समाज विनाश से बच सकता है, अतः इन तीनों को कदापि नहीं छोड़ना चाहिए।[१८]

वल्लभाचार्य ने समाज के दलित शोषित वर्ग की दुर्दशा देखी थी। स्त्रियों की दुर्दशा, शूद्रों का नरकीय जीवन और गरीबों की हताशा से उनका गहरा परिचय था। इन सभी के लिए वल्लभाचार्य ने कहा–'ये भक्ताः शास्त्ररहिता, स्त्री शूद्रों द्विज बन्धवः तेषामुद्धारकः कृष्णः।' अर्थात् जो शास्त्रज्ञान से शून्य और शास्त्रविधि से रहित हैं ऐसे स्त्री, शूद्र और पतित ब्राह्मणों के उद्धारक श्रीकृष्ण हैं। स्त्री जाति को सम्मान देने हेतु वल्लभ ने ब्रजांगनाओं को अपना गुरु पद दिया।

वल्लभाचार्य ने अपने सम्प्रदाय के द्वार सभी वर्ण, जाति, वर्ग के व्यक्तियों के लिए खोल दिए थे। उनके शिष्य सेवकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, भाट, कायस्थ, मुसलमान, नाई, कुंभार, लुहार, सुतार, मोची, नाई, भंगी, भिलाई, कुनबी, बढ़ई से लेकर गृह त्यागी संन्यासी, वेदपाठी ब्राह्मण सभी प्रकार के व्यक्ति थे। तभी तो 'श्रीनाथजी' की

सेवा का सर्व प्रथम अधिकार रामदास चौहान को सौंपा था। श्रीनाथजी के प्रथम कीर्तनकार कुम्भनदास थे तथा श्रीनाथजी मंदिर के प्रथम व्यवस्थापक कृष्णदास थे। पुष्टिमार्ग की भगवत् सेवा का विधान ही वल्लभाचार्य ने ऐसा बनाया है कि इसमें सभी को दीक्षित होने की छूट है। वर्ण, जाति–पाँति, आश्रम, वय, गुण, देशी–विदेशी का कोई भी बन्धन नहीं है। विश्व का कोई भी प्राणी इस भगवत् सेवा का लाभ लेकर अपना जीवन सन्तुष्ट कर सकता है।

तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों का और अन्ध–विश्वासों का भी वल्लभाचार्य ने विरोध किया। भूत–प्रेत आदि की पूजा, इनका भय, डाकोतियों की भविष्य वाणी आदि सब कुछ छलावा है। जीवन की सार्थकता भगवद् सेवा में है। जगन्नाथ जी के रथ के पहिये के नीचे आकर मर जाना, किसी तीर्थ स्थान में जाकर मरना जैसे अन्धविश्वासों का भी प्रबल विरोध किया। सती प्रथा के नाम पर स्त्री पर हो रहे भीषण अत्याचार के विरुद्ध भी वल्लभाचार्य ने आवाज़ उठाई। अपने शिष्य राणा व्यास के कहने पर एक स्त्री ने सती बनने से इन्कार कर दिया तथा बाद में वह पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गई। तात्पर्य समाज में व्याप्त असुरों [१९] का सामना कर आज से लगभग ५०० वर्ष पूर्व ही वल्लभाचार्य ने जीव–दया, अहिंसा, संयमपूर्ण जीवन, प्रेम, समभावना जैसे तत्वों का समाज में प्रचार कर उसे व्यक्ति के नित्य जीवन से जोड़ने का सफल प्रयोग किया।

वल्लभाचार्य ने घर में मंदिर बनाकर पारिवारिक सेवा पर बल दिया। वल्लभाचार्य ने व्यक्ति और समाज को अपना सर्वस्व परमात्मा श्री कृष्ण के चरणों में समर्पित करने को कहा तथा कहा कि वह परब्रह्म परमात्मा स्वयं तुम्हारी रक्षा करेंगे। वल्लभाचार्य दार्शनिक व धार्मिक गुरु थे, किन्तु आपने सामाजिक चेतना के साथ धर्म को जोड़कर समाज के लिए एक कल्याणकारी मार्ग उपस्थित किया, जिसके लिए समाज–व्यक्ति–देश हमेशा आपके ऋणी रहेंगें।

वल्लभाचार्य के कार्यों का तत्कालीन समाज पर प्रभाव हम '८४ वैष्णवन की वार्ता' में देख सकते हैं। अन्तः हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों और समालोचनाओं में

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत प्रायः स्वीकृत किया जाता रहा है कि भक्ति सम्प्रदाय के कवि और आचार्य लोक-रंजन का कार्य करते रहे हैं।[२०]

******

## :: संदर्भ सूची ::


१. जैसे-इन्द्र, वरुण, सुर्य आदि;
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल-४

२. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास-२, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

३. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास-१३८, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

४. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (५)- २२;२३, नागरी प्रचारिणी सभा

५. 'उत्पन्न द्रविडेचाहं, कर्णाटके वृद्धिंगता।
स्थिता किंचिन्महाराष्ट्रे,गुर्जरो जीर्णतांगता ।।'
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास- १३९, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

६. 'भक्ति द्राविडे ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट करी कबीर ने, सात द्वीप नौं खंड ।।'
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास - १३९, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

७. + भागवत सम्प्रदाय - १८६ लेखक : आचार्य बलदेव उपाध्याय
\+ ब्रज के धर्म सम्प्रदाय का इतिहास-१४२, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

८. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास-१४४, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

९. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास-१४८, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

१०. अष्टछाप - परिचय - ५०, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

११. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास - ३८२, लेखक : प्रभु दयाल मीतल

१२. + ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास - ३८२, लेखक : प्रभु दयाल मीतल
\+ महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग-१०, लेखक : सीताराम चतुर्वेदी

१३. + ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास - २१५, लेखक : प्रभु दयालु मीतल
\+ अष्टछाप परिचय - ४, लेखक : प्रभु दयाल मीतल
\+ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय - ७०, लेखक : डॉ. दीन दयाल गुप्त
\+ श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।)-२,
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

+ हीरक जयन्ती ग्रन्थ–४२, साहित्य मण्डल, नाथद्वारा

१४. महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता (विस्तृत विवरण हेतु)

१५. + हीरक जयन्ती ग्रन्थ – ४२, साहित्य मण्डल, नाथद्वारा

+ श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।)–५,

लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

१६. 'आचार्य वल्लभ ने षोडश ग्रंथों की रचना की जिनमें छह ग्रंथ ऐसे हैं जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक उपयोगिता के हैं। उनकी सार्वभौम प्रासंगिकता असंदिग्ध हैं। इनमें 'चतुःश्लोकी' तो अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन ग्रंथों में न तो कहीं संकीर्ण साम्प्रदायिकता है और न कही कर्मकांड आदि पर बल दिया गया है। ये ग्रंथ संसार के झंझटों से मुक्ति पाने और आत्मबल संचय करने के लिए देशकाल की सीमा में नही समाते। आत्म निर्भरता, कर्तव्य परायणता एवं सम्यक् प्रकार से जीवन साधना के लिए इनमें जो उपदेश और उद्बोधन अंकित हैं वे किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या देश से बाधित नहीं हैं। ये ग्रंथ वास्तव में लोकोपकारी एवं पथ प्रदर्शक ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों के आधार पर हम आचार्य जी को उस काल में एक महान विभूति के रूप में देख सकते हैं।'–

गोस्वामी अभिन्दन ग्रंथ (श्री वल्लभाचार्य की सामाजिक दृष्टि–२४२)

लेखक : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

१७. जैसे अष्टछाप के प्रथम चार कवि

१८.'स्व धर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निर्त्तनम्।

इन्द्रियाश्व विनिग्रहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयस्।'

श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।।)

(वल्लभाचार्य की सामाजिक चेतना–१६८) लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

१९. अन्ध विश्वास, कुरीतियाँ, सती प्रथा जैसें असुर।

२०. गोस्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ – (श्री वल्लभाचार्य की सामाजिक दृष्टि – २४८)

लेखक : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

* * * *

Chap-2

## द्वितीय अध्याय :
# पुष्टिमार्ग का प्रारम्भिक परिचय

पुष्टिमार्ग भावना का मार्ग है अर्थात् पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों का विवेचन भावनात्मक स्तर पर ही सम्भव है। इसीलिए इस सम्प्रदाय में सेवा भावना को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। यहाँ हर वस्तु और विधान की भावना निश्चित की गई है जैसे सेवा भावना, स्वरूप भावना, श्रृंगार की भावना, सामग्री की भावना, गुरु की भावना, मनोरथों की भावना तथा सम्पूर्ण भाव-भावना। इस तरह यह निश्चित किया जाता है कि भक्त की उदार संवेदनाओं पर इस मार्ग की आस्थाएँ सर्वलम्बित है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने प्रारम्भ में बाल कृष्ण की उपासना निश्चित करके वात्सल्य रस प्राधान्य भावात्मक परिवेश को भक्ति का मूल आधार माना है। वात्सल्य प्रेम निश्चल एवम् स्वाभाविक आत्मिक संलग्नता का प्रतीक है। श्रीकृष्ण की रसात्मक बाललीलाएँ इस संदर्भ में विशेष चित्ताकर्षक रही हैं और जिनके कारण आम आदमी की संलग्नता भी सहज हो पाई है।

## १. पुष्टिमार्ग की स्थापना व व्याख्या :-

### १. पुष्टिमार्ग की स्थापना ::

वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत् के आधार पर जिस नवीन भक्तिमार्ग का प्रचलन किया वह 'पुष्टिमार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। दार्शनिक जगत् में वल्लभाचार्य का मत शुद्धाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। शुद्धाद्वैतवाद के लिए आचार्य जी चाहे विष्णुस्वामी के ऋणी रहे हों, किन्तु पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक होने का श्रेय तो स्वयं आचार्य वल्लभाचार्य को ही जाता है। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ 'सिद्धांत रहस्य' में कुछ इस प्रकार लिखा है – ''श्रावण मास की शुक्ल एकादशी को रात्रि के समय साक्षात् भगवान ने उनसे कहा कि वे जीवों के देह गत पंच दोषों की निवृत्ति के लिए उन्हें ब्रह्म संबंध की दीक्षा दें।''[१]

भगवत् आदेश की पूर्ति के निमीत्त आचार्य जी ने उसी समय अपने प्रमुख सेवक दामोदरदास हरसानी को जगाया और समर्पण मंत्र द्वारा ब्रह्म सम्बन्ध की प्रथम दीक्षा दी। इस प्रकार दामोदरदास जी की दीक्षा द्वारा वल्लभाचार्य ने सं. १५५० की श्रावण शुक्ल एकादशी को ब्रज में गोकुल के गोविंदघाट पर 'पुष्टिमार्ग' की स्थापना की।[२] मंत्र दीक्षा के शुभारम्भ की पुनीत स्मृति के कारण गोकुल के गोविंदघाट की बैठक को आचार्य जी की ८४ बैठकों में प्रथम स्थान प्राप्त है।

कहते हैं कि पुष्टिमार्ग के लिए वल्लभाचार्य को निम्नलिखित आंतरिक प्रेरणा हुई थी ''अन्य संप्रदायों (रामानुज, माध्व, निम्बार्क आदि के सम्प्रदाय) में नारद पंचरात्र वैखानसादि शास्त्र प्रतिपादित दीक्षा–पूजा का प्रचार होने से यद्यपि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में आत्म निवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है, तथापि वह मर्यादामार्गीय है। अब आपके इस सम्प्रदाय में पुष्टि मार्गीय (अनुग्रह) आत्मनिवेदन द्वारा प्रेम स्वरूप निर्गुण भक्ति का प्रकाश करना है। संप्रति भक्ति मार्गानुयायी जन समाज शांकर सिद्धांत के प्रचार से पथभ्रष्ट हो रहा है, अतः उसके कर्तव्य तो आपके द्वारा ही सम्पन्न हो सकते हैं।''[३]

अतः वल्लभाचार्य ने पूर्व आचार्यों के मर्यादामार्गीय भक्ति सम्प्रदायों से अलग अपने पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की स्थापना की। वल्लभाचार्य के मतानुसार भगवान के अनुग्रह से ही जीव हृदय में भक्ति का संचार होता है और उसी भक्ति के द्वारा उसका कल्याण होता है।

## २. पुष्टि मार्ग की परिभांषायें ::

पुष्टि का अर्थ होता है भगवान् का अनुग्रह। भागवत् के द्वितीय स्कन्ध के दसवें अध्याय के प्रथम श्लोक में भागवत् का विषय निरूपण करते हुए श्री शुकदेव जी ने भगवान् की दस लीलाओं की चर्चा की है –

'अत्र सर्गोविसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ।।'[४]

प्रस्तुत श्लोक में दी गई दस लीलाओं में पोषण चौथी लीला है। पोषण का अर्थ है– भगवान् का अनुग्रह (पोषण तदनुग्रहः)।

अतः वल्लभ दर्शन के अनुसार भगवद् अनुग्रह ही मोक्ष का प्रधान कारण बताया गया है। पुष्टिमार्ग के अनुसार भगवत् प्राप्ति के लिए ज्ञानादि की अपेक्षा नहीं है। वास्तव में वल्लभाचार्य के सिद्धांत का व्यावहारिक रूप ही पुष्टिमार्ग है। पुष्टिमार्ग में दर्शन व भक्ति का एक अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। वल्लभाचार्य ने वर्ग, जाति और देश आदि के भेद से रहित जीवों के श्रेष्ठ साधन के रूप में, पुष्टि अथवा अनुग्रहमार्ग का प्रचलन किया, जो सर्वाधिक सरल तथा प्राप्य है; यही इस मार्ग की विशेषता है।

वल्लभाचार्य के मतानुसार पुष्टिमार्ग सर्वोत्तम विलक्षण भक्ति मार्ग है। इस भक्ति मार्ग में जीव को अपना सर्वस्व समर्पित करना होता है। इस भक्ति मार्ग में भक्त भगवान् के अनुग्रह के सामने मोक्ष को भी तुच्छ मानता है।[५] इस मार्ग के अन्तर्गत किसी भी प्रकार का कर्मकाण्ड करना आवश्यक नहीं है। इस मार्ग में आयु का भी कोई बन्धन नहीं होता – बाल, युवा, वृद्ध, स्त्रियाँ, शूद्र आदि सभी प्राणी इस मार्ग के साधक बन सकते हैं। इस मार्ग में भगवान् अपनी कृपा से ही मन, वाणी और कर्मों द्वारा आत्मसमर्पण करने वाले जीवों का प्रपंच से उद्धार कर देते हैं। अत्एव पुष्टिमार्ग वह विलक्षण मार्ग है जिसे भगवद्नुग्रह से ही प्राप्त किया जा सकता है।[६]

वल्लभाचार्य ने श्रुति के आधार पर वेदों में भी भगवान् के अनुग्रह पर प्रकाश डाला है।[७] उनका कथन है कि विवेक, धैर्य और भक्ति से रहित पाप कर्म में विशेष रूप से आसक्त भक्तदीन के तो भगवान श्रीकृष्ण ही रक्षक हैं। मुक्ति भगवत् रूप ही होती है, जहाँ भक्त और भगवान् में अभेद सम्बन्ध होता है।

कुछ लोगों ने पुष्टिमार्ग को खाओ, पिओ और पुष्ट रहो – सिद्धांत को माननेवाला विलासी मार्ग भी कहा है और इस मार्ग पर अनेक लांछन और आक्षेपों का आरोप भी लगाया है और यह भी कहा गया है कि इस मार्ग के अनुयायी विषय सुख की ओर ध्यान देते हुए शरीर और इन्द्रियों के पोषण को ही अपना ध्येय बनाते हैं। वल्लभाचार्य तथा उनके बाद के अनेक महान आचार्यों द्वारा लिखित ग्रंथों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि वास्तव में पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों में विषय सुख के पोषण का कभी भी आदेश नहीं दिया गया। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथों में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सांसारिक विषयों में

मनुष्य को कभी भी आसक्त नहीं होना चाहिए। आचार्य जी ने अपने 'संन्यास निर्णय' ग्रंथ में कहा है – "जिनका मन विषयों से आक्रान्त है उनमें प्रभु प्रेरणा का आवेश कभी नहीं होता है।"[८] आचार्य जी के 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रंथ में भी यही भाव देखने को मिलता है – "इन्द्रियों के विषयों को शरीर, वाणी तथा मन से त्याग दे। हर पुरुष को इन्द्रिय दमन करना चाहिए।"[९] 'श्री सुबोधिनी टीका' में आचार्य जी कहते हैं –"जब तक कामादिक दोष नष्ट नहीं होते तब तक भक्ति उत्पन्न नहीं होती।"[१०] आचार्य जी ने भगवान के प्रेम की प्राप्ति के लिए सबसे बड़ा बाधक – सांसारिक विषय का त्याग करना कहा है।

वल्लभाचार्य के बाद विट्ठलनाथ जी ने भी सांसारिक विषयों में अनासक्ति और अन्त में उनके त्याग का ही अपने ग्रंथों में उपदेश दिया है। इन आचार्यों के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों व अन्य भक्तों ने भी संसार की असारता दिखाते हुए लौकिक विषयों से अलग रहने का ही प्रबोधन दिया है और भगवद् कृपा को ही श्रेष्ठ साधन बताया है।

वल्लभ सम्प्रदाय के एक सुप्रसिद्ध व्याख्याता गोस्वामी हरिराय जी ने अपने ग्रंथ 'श्री पुष्टिमार्ग लक्षणानि' में पुष्टिमार्ग का परिचय कुछ इस प्रकार दिया है – "जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक, सकाम अथवा निष्काम सब साधनों का अभाव ही श्री कृष्ण के स्वरूप प्राप्ति में साधन है, अथवा जहाँ जो फल है वही साधन है, उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। जिस मार्ग में सर्व सिद्धियों का हेतु भगवान् का अनुग्रह ही है, जहाँ देह के अनेक सम्बन्ध ही साधन रूप बनकर भगवान की इच्छा के बल पर फल रूप सम्बन्ध बनते हैं, जिस मार्ग में भगवद्–विरह अवस्था में भगवान की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है, और जिस मार्ग में सब भावों के लौकिक विषय का त्याग है और उन भावों के सहित देहादि का भगवान् को समर्पण है, वह 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।[११]

## ३. वल्लभाचार्य प्रणीत तीन मार्ग ::

वल्लभाचार्य ने मुख्यतः तीन मार्ग बताए हैं – पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्ग। प्रभु के अनुग्रहात्मक मार्ग को 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं, जो भक्तिमार्ग भी है। केवल वेद

प्रतिपादित कर्म और ज्ञान के मार्ग को 'मर्यादा मार्ग' कहते हैं। संसार के प्रवाह में पड़कर लौकिक सुख और भोग के लिए प्रयत्न करना 'प्रवाहमार्ग' कहलाता है।

पुष्टिमार्ग में भी 'आचरण' और 'सिद्धांत' दो मुख्य पक्ष हैं जिन्हें हम 'भक्ति' और 'ज्ञान' के नाम से जानते हैं। पुष्टि सम्प्रदाय के आचरण पक्ष को हम भक्ति पक्ष अथवा स्वाधीन अर्थात् स्वतंत्र निर्गुण भक्ति कहते हैं। तो दूसरी ओर पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धांत पक्ष को हम ज्ञान पक्ष अथवा शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद कह सकते हैं। सम्पूर्ण रूप से देखें तो पुष्टिमार्ग की आचारसंहिता को पृथक्–पृथक् खण्डों में व्याख्यायित किया गया है। यहाँ मैं पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों की सामान्य तथा सहज विचारधारा को स्पष्ट कर रही हूँ।

## ४. पुष्टि मार्ग का भक्ति पक्ष ::

भक्ति शब्द में भज् धातु एवं क्तिन् प्रत्यय है, जिससे भक्ति शब्द सिद्ध होता है। भज् धातु सेवा के अर्थ का द्योतक है, क्तिन् प्रत्यय भाववाची है। अतः भाववाली भगवत्परिचर्यात्मक सेवा को 'भक्ति' कहते हैं।[१२]

भगवत् भक्ति को वैष्णव धर्म की आधार शिला माना गया है। संसार दुःख से छूटकर मुक्ति–लाभ को प्राप्त करने के लिए प्राचीनकाल से भक्ति मार्ग को अपनाया गया है। अगर हम इतिहास की ओर दृष्टि करके देखें तो पता चलता है कि कलियुग में भक्ति मार्ग का पुनः आरम्भ विष्णुस्वामी से हुआ है। उन्होंने श्रीमद् भागवत् पुराण एवं संहिता और वैष्णव तंत्रादि ग्रंथों का अध्ययन कर भगवद् आज्ञा से स्वामी सेवक भाववाली राजसी परिचर्यात्मक सेवा का प्रथम आरम्भ किया था। विष्णुस्वामी का समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। इनके कुछ समय बाद आठवीं शताब्दी में सम्राट अशोक ने नष्ट हुए बौद्ध मत को पुनः राज्य धर्म के रूप में स्वीकार कर उसका विस्तृत प्रचार किया। जिसके कारण विष्णुस्वामी का भक्ति मार्ग धीरे–धीरे संकुचन के साथ–साथ नगण्य–सा हो गया। तब ही शांकर मत ने जोर पकड़ा और पुनः वैदिक मत की स्थापना की। किन्तु इसमें भी वेद के वाक्यों का अन्यथा अर्थ किया गया, जिसके कारण वेद के वास्तविक रहस्यों पर अंधकार पट आ गया था। कुछ समय बाद विक्रम की दसवीं से लेकर चौदहवीं

शताब्दी तक के काल में भक्ति मार्ग के अनेक आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य एवं माध्वाचार्य प्रधान थे। इन आचार्यों ने पुनः भक्तिमार्ग की स्थापना की और मायावाद का खण्डन किया। इन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों के आधार पर पृथक्–पृथक् सम्प्रदायों की स्थापना की। इनके बाद विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय के देश काल की परिस्थितियों को जानकर और उस समय की पूजा उपासना की पद्धति में अशुद्धि को देखकर आचार्य चरण ने मनुष्य स्वभाव के सहज अनुकूल भक्ति के प्राचीन तत्वों की शोध करके विष्णुस्वामी मार्ग के साररूप सेवा तत्व का पुनः प्रारम्भ किया। अतः आपने विष्णुस्वामी के संपादित सेवा तत्व की आवश्यक स्नेहानुकूल परिचर्यात्मक क्रियाओं का स्वीकार करते हुए अपना एक अभूतपूर्व एवं विलक्षण सेवा मार्ग का आविर्भाव किया। 'जिसके प्रारम्भ में माहात्म्य ज्ञान के साथ ही स्नेहात्मक भक्ति सुदृढ़ एवं सर्वाधिक रूप में आवश्यक कही गई।'[१३]

अतः हम कह सकते हैं कि पुष्टिमार्ग वह भक्तिमार्ग है जिसमें सभी भक्ति के पूर्वाचार्यों की भक्ति मान्यता का सार अथवा निचोड़ है।

**५. पुष्टि मार्ग का ज्ञान पक्ष ::**

विद्वानों ने शंकराचार्य के सिद्धांत का सार आधे श्लोक में ही बतलाते हुए कहा गया है–'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्यां, जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, और जीव ही ब्रह्म है, वह ब्रह्म से अलग नहीं है। इसके विरुद्ध वल्लभाचार्य के सिद्धांत का सार तत्व भी आधे श्लोक में इस प्रकार बताया गया है–'ब्रह्म सत्यं जगत सत्यं, अंशो जीवों हि नापर' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् सत्य है और जीव भगवान का अंश है वह परब्रह्म नहीं है। इस प्रकार विविध आचार्यों के दार्शनिक सिद्धांतों में ब्रह्म, जीव और जगत् के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रकट किये गये हैं। वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग) के शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार इनके स्वरूप का जो विवेचन किया गया है, उसे संक्षिप्त रूप में मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ–

## १. परब्रह्म – अक्षरब्रह्म –

वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद में परमतत्व परब्रह्म श्री कृष्ण को ही माना है। शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार परब्रह्म के तीन स्वरूप हैं जो निम्न लिखित है –

| | | |
|---|---|---|
| आधिदैविक – | परब्रह्म | (या पुरुषोत्तम) |
| आध्यात्मिक – | अक्षर ब्रह्म | |
| आधिभौतिक – | जगत् | |

परब्रह्म अपनी अनंत शक्तियों के साथ निरन्तर अपने आप में आन्तर रमण करता रहता है, इसलिए उसे 'आत्माराम' भी कहते हैं। जब परब्रह्म को बाह्य रमण की इच्छा होती है तब वह अपनी शक्तियों के साथ बाह्य रूप में रमण करते हैं, जिसे हम 'श्रीकृष्ण भगवान' कहते हैं। इसी आनंद धर्मवाले दिव्य रूप को हम 'पुरुषोत्तम' के नाम से भी जानते हैं। प्रभु के इस रूप में आनंद की चरम अभिव्यक्ति के कारण वह 'आनंदमय', 'अगणितानन्द' तथा 'परमानंद' भी कहलाते हैं। वल्लभाचार्य ने इस परात्पर पुरुष का 'पुरुषोत्तम' नाम भगवद् गीता के आधार पर दिया है।[१४] परब्रह्म तो एक है किन्तु इनके अनेक नाम–रूप कहे गए हैं; इसी कारण ये निर्गुण भी हैं और सगुण भी। ये कर्ता–अकर्ता, सूक्ष्म–स्थूल, कार्य–कारण सब कुछ हैं। अर्थात् परब्रह्म माया से पर होने के कारण ये निर्गुण–निराकार हैं और आनंद के दिव्य गुणों से परिपूर्ण होने के कारण ये सगुण–साकार भी हैं। वल्लभाचार्य जी का कथन है कि परब्रह्म श्रीकृष्ण ही सत्, चित् और आनंद रूप में सर्वत्र विधिमान है जिस कारण इन्हें 'सच्चिदानंद' भी कहते हैं।[१५] अक्षर ब्रह्म से ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं। किन्तु इन कार्यों के होने पर अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप में कोई विकास (परिवर्तन) नहीं होता। इसलिए श्री कृष्ण ने गीत में 'अक्षरदपिचोतमः' कहा है। अक्षर ब्रह्म सर्व काल निर्विकार ही बना रहता है। अक्षर ब्रह्म में आनंद अंश का तिरोधान (अन्तरध्यान) रहता है किन्तु परब्रह्म तो आनन्द से सर्वथा परिपूर्ण रहता

है। इसीलिए कहते हैं कि ब्रह्म के इन स्वरूपों की प्राप्ति में भी अन्तर है। अक्षर ब्रह्म केवल विशुद्ध ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होते हैं, परन्तु परब्रह्म पुरुषोत्तम की प्राप्ति का एकमात्र साधन है अनन्य भक्ति। इस प्रकार विस्तृत अध्ययन द्वारा हम कह सकते हैं कि (पुष्टिमार्ग) वल्लभ सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत में वेद, वेदांत और पुराणादि धर्म ग्रंथों की एक वाक्यता प्रमाणित की गई है।

## २. जगत् – संसार –

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार जगत् परब्रह्म का आधि भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म से जगत् की उत्पति होने के कारण जगत् भी ब्रह्म की तरह सत्य है। इसमें 'सच्चिदानंद' का सत् भाव तो आविर्भूत (प्रकट) है परन्तु चित् और आनन्द भाव तिरोहित (छिपा हुआ) है। जगत् भगवान का कार्य रूप होने से यह भगवद् रूप भी है। जब भगवान को बाह्य रमण की एवं क्रीड़ा की इच्छा होती है तो भगवान् इस जगत् रूप में आविर्भूत (प्रकट) होते हैं।

वल्लभाचार्य की दृष्टि में जगत् और संसार दो भिन्न–भिन्न पदार्थ हैं। भगवान की दो शक्तियाँ हैं–माया और अविद्या। भगवान् की माया शक्ति का कार्य जगत् है और अविद्या शक्ति का कार्य संसार है। जगत् को प्रभु माया द्वारा चलाते हैं, किन्तु संसार में हमें अविद्या की कृति देखने को मिलती है जो 'मैं' और 'मेरा' के भाव में निहित है। इसलिए संसार असत्य है। जब तत्वज्ञान प्राप्त होता है तो सब कुछ ब्रह्म रूप है यह पता चलता है, जिससे संसार की अविद्या का नाश होता है किन्तु जगत् ज्यों का त्यों विद्यमान रहता है। अतः 'जगत्' और 'संसार' का यह भेद इस सिद्धांत व सम्प्रदाय की विशेषता है।

## ३. जीव –

वल्लभाचार्य ने जीव को ब्रह्म का अंश कहा है। ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव भी सत्य है। जिस प्रकार अग्नि से छोटी–छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी

प्रकार जीव भी ब्रह्म की छोटी–छोटी स्फुलिंग अग्नि का अंश है। अज्ञान का नाश होने पर जीव पुनः ब्रह्म हो जाता है। वल्लभाचार्य के अनुसार जीव अल्पज्ञ है, ब्रह्म सर्वज्ञ है। जीव और ब्रह्म में यह अंतर है कि जीव की शक्ति अपनी सत्ता के अनुसार सीमित है, जबकि ब्रह्म की शक्तियाँ असीम और अनन्त हैं। वल्लभाचार्य ने जीव की तीन अवस्थाएँ मानी हैं – शुद्ध, संसारी और मुक्त। जब जीव अविद्यादि धर्मों से पूर्णरूप से मुक्त रहता है तथा जीव में आनंदात्मक भगवदैश्यादि धर्मों की स्थिति रहती है उस अवस्था में जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। अतः इस जीव को 'शुद्ध जीव' कहते हैं। जब ईश्वर की इच्छा से जीव का माया से सम्बन्ध होता है तब जीव में आनंदात्मक भगवदैश्यादि धर्म का तिरोधान होता है। उस समय जीव 'मैं' और 'मेरा' की मिथ्या कल्पना करता हुआ संसार की मोह – माया में फँसकर अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है उसे 'संसारी जीव' कहते हैं। संसारी जीव भी दो प्रकार के होते हैं – दैवी और आसुरी। जब जीव संसारी कष्टों को भोग कर स्वयं को ईश्वर आधीन मान लेता है और पुनः भगवान की शरण में जाता है तब माया के भ्रम–जाल से मुक्त होकर वह अपने मूल स्वरूप को पाता है जिसे 'मुक्त जीव' कहते हैं। वल्लभाचार्य के मतानुसार जीव को अपनी तीनों अवस्थाओं में भगवान का भजन करना चाहिए।

**४. माया –**

वल्लभाचार्य ने भागवत् की सुबोधिनी टीका में माया के दो रूप बताए हैं – व्यामोहिका और करण। व्यामोहिका भगवान के चरणों की दासी है, अतः भगवद् इच्छा से कार्य करती है। करण मायारूप भगवान के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, उसका पालन और संहार का कार्य करती है।

**५. आविर्भाव–तिरोभाव शक्ति –**

आविर्भाव का अर्थ है उत्पति और तिरोभाव का अर्थ है नाश। भगवान अपनी इन शक्तियों का उपयोग जगत् की उत्पति व नाश के लिए करते हैं। जगत् का यह अविर्भाव और तिरोभाव एक मात्र भगवद् इच्छा पर आधारित रहता है।

## २. पुष्टि भक्ति का स्वरूप :-

### १. पुष्टि भक्ति ::

भक्ति वल्लभ दर्शन का प्रमुख अंग है। इसी कारण श्री वल्लभ ने अपने ग्रंथों में भगवान् 'श्री कृष्ण' की भक्ति को मुक्ति का एक मात्र साधन माना है। पुष्टिमार्गीय भक्ति में आरम्भ से अंत तक प्रेम की प्रधानता है अतः इसे 'प्रेमलक्षणा भक्ति' भी कहते हैं।

### २. शुद्ध पुष्टि ::

वल्लभाचार्य का मत है कि भक्ति मार्ग शुद्ध प्रेम द्वारा की गई सेवा का मार्ग है इसलिए उन्होंने जीव मात्र के कल्याण के लिए भक्ति और सेवा को एक दूसरे से सम्बद्ध कर दिया है। वल्लभाचार्य ने विशुद्ध प्रेम को 'शुद्ध पुष्टि' बतलाया है। गोपियाँ विशुद्ध प्रेम की प्रतीक मानी गई हैं। वल्लभाचार्य ने गोपियों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर उनकी भक्ति भावना को बताया है – ब्रजांगनाएँ, गोप कुमारिकाएँ और गोपांगनाएँ।

### ३. वात्सल्य भाव भक्ति ::

ब्रजांगनाओं ने श्री कृष्ण का बाल भाव से भजन किया, अतः उनकी भक्ति वात्सल्य भावना की है। पुष्टि सम्प्रदाय की नित्य सेवा–विधि में भी वात्सल्य भक्ति की प्रधानता है।

### ४. स्वकीया (पत्नि) भाव भक्ति ::

गोप कुमारिकाओं ने कात्यायनी व्रत से श्री कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए भक्ति की, जो स्वकीया (पत्नि) भाव की भक्ति है।

## ५. परकीया (प्रेयसी) भक्ति ::

जबकि गोपांगनाओं ने लोक, वेद आदि के भय से मुक्त होकर परकीया (प्रेयसी) भाव की भक्ति की है। वल्लभाचार्य ने श्री राधाजी का भी यथोचित महत्व स्वीकार किया है। विट्ठलनाथ जी ने सेवा का विस्तार कर राधा–कृष्ण की युगल जोड़ी की सेवा का प्राधान्य किया था।

विट्ठलनाथ जी ने श्रृंगार का महत्तम रूप प्रस्तुत कर 'श्रृंगार रस मण्डनम्' ग्रंथ लिखा है, जिसमें हमें स्वकीया और परकीया भक्ति रूप देखने को मिलता है। स्वकीया भक्ति रूप में श्री राधा का आधिपत्य है तो परकीया भक्ति रूप में अन्य गोप कुमारिकाओं का दर्शन होता है। हरिराय जी ने स्वकीया–परकीया भक्ति के दो रूप और माने हैं – संयोग और वियोग। इनमें वियोग के भाव को सर्वोपरि माना गया है। आत्मा और परमात्मा का मिलन आवश्यक है। आत्मा अपने परमात्मा की प्राप्ति के लिए अनेक रूपों में उनकी भक्ति करती है, जिनमें वियोग श्रृंगार रूप भक्ति का प्राधान्य है; इसे कान्ता प्रेमरूपा भक्ति भी कहते हैं। पुष्टिमार्ग के जो अष्टछाप कवि हैं उनकी भक्ति साख्य रूप की तथा दास्य रूप की है।

## ६. नवधा भक्ति ::

वल्लभ ने नवधा भक्ति को पुष्टिमार्ग में यथोचित स्थान दिया है।[१६] जैसे प्रभु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन; वन्दन करना आदि। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पुष्टि सम्प्रदाय में वात्सल्य भक्ति, नवधा भक्ति, स्वकीया और परकीया (कान्ता) भक्ति तथा ब्रह्म भाव की निर्गुण भक्ति भी की जाती है। वल्लभाचार्य का कथन है – 'श्री कृष्ण कृत गीता ही एक मात्र शास्त्र है, श्री कृष्ण ही एक मात्र

आराध्य देव हैं, श्री कृष्ण का नाम ही एक मात्र मंत्र है, और श्री कृष्ण की सेवा ही एक मात्र कर्तव्य कर्म है।'[१७]

७. **वल्लभाचार्य भक्ति के प्रकार ::**

वल्लभाचार्य ने भक्ति के दो प्रकार बताए हैं – मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति। जो भक्ति मनुष्य को अपने कर्म और साधनों से प्राप्त होती है वह 'मर्यादा भक्ति' कहलाती है और जिसमें भगवान जीवों पर स्वयं दया करके, स्वयं अनुग्रह की अभिव्यक्ति करते हैं वह 'पुष्टि भक्ति' कहलाती है। वल्लभ के अनुसार जीव को अपना सर्वस्व भक्ति–भाव से प्रभु के श्री चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। इसी कारण वल्लभ ने आत्मनिवेदन अथवा शरणागति को अत्यधिक महत्व दिया है।

## ३. पुष्टि सम्प्रदाय की शरण दीक्षाएँ :-

### १. समर्पण (आत्म निवेदन) अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध ::

पुष्टि मार्ग में समर्पण (आत्म निवेदन) अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध को बड़ा महत्व दिया गया है। संसार की विषय–वासना का त्याग कर जीव को अपना सर्वस्व परब्रह्म श्री कृष्ण के चरणों में आत्म निवेदन कर उनका अनुग्रह प्राप्त करना 'समर्पण' अर्थात् 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहलाता है। इस दीक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् साधक को एक विशिष्ट प्रकार का रहन–सहन और आचार–विचार का पालन करना पड़ता है। इस दीक्षा का अभिप्राय यह है कि जीव अविद्या के कारण ब्रह्म से अपना सम्बन्ध भूल गया है और इस जन्म मरण के चक्कर में फँसा हुआ है। गुरु उस विस्मृत सम्बन्ंध की पुनः याद दिलाते हैं और जीव का प्रभु के चरणों में आत्मनिवेदन कराते हैं। जीव भी भक्ति भाव से अपने दोषों की निवृत्ति के लिए श्री कृष्ण की शरण में जाता है। इस प्रकार आत्म–निवेदन, सम्बन्ध–स्थापन और शरण–गमन इन तीनों के एकीकरण को 'ब्रह्म समबन्ध' कहते हैं।

## २. समर्पण मंत्र ::

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

वल्लभाचार्य के प्रतिनिधि के रूप में उनका वंशज कोई भी गोस्वामी आचार्य जिस मंत्र से जीव का श्री कृष्ण के चरणों में आत्मनिवेदन अर्थात् समर्पण कराता है वह इस प्रकार है – ''श्री कृष्णः शरणं मम। सहस्त्र परिवत्सरमित काल, जात कृष्ण वियोग जनित ताप क्लेशानंद तिरोभावोहं, भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय प्राणान्तः करणानि तद्धर्माश्च दारागार पुत्रवितेहापरणि आत्मना सह समर्पयामि। दासोंह कृष्ण तवास्मि।'' इसका अभिप्राय इस प्रकार है – 'हे, कृष्ण मैं आपकी शरण में हूँ। सहस्त्रों वर्षों से मेरा श्री कृष्ण से वियोग हुआ है। वियोगजन्य ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है, अतः मैं भगवान् श्री कृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अन्तःकरण और उनको धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण, मैं आपका दास हूँ, मैं आपका ही हूँ।' यह चौरासी अक्षरों का गद्य मंत्र कहलाता है, जो ब्रह्म सम्बन्ध की विशिष्ट दीक्षा है। सामान्य दीक्षा अष्टाक्षर मंत्र 'श्री कृष्णः शरणं मम'से अथवा पंचाक्षर मंत्र 'कृष्ण तवास्मि' से ही दी जाती है। अष्टाक्षर मंत्र को नाममंत्र भी कहते हैं।

प्रसिद्ध है कि श्री नाथ जी (श्री कृष्ण) ने यह मंत्र वल्लभाचार्य को स्वयं बतलाया था। ''जा जीव को तुम ब्रह्म सम्बन्ध करावोंगे तिनसों हीं बोलूंगों, तिनही के अंग सों अपनो अंग स्पर्श करूंगों, तिनही के हाथ को आरोगूंगों। ये तीन वस्तु तिहारे सम्बन्ध बिना काहूको सिद्ध न होंगी।''[१८]

## ३. समर्पण मंत्र की विधि ::

नाममंत्र अर्थात् अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा जन्म के ४१वें दिन से लेकर कभी भी दी जा सकती है। यह दीक्षा मनुष्य के अलावा राक्षस, यवन, बलाई, हंस–हंसनी, कबूतर आदि को भी दी जा सकती है। २५२ वैष्णवन की वार्ता में इसका निश्चय भी होता है।

पुष्टि सम्प्रदायी साहित्य में समर्पण अर्थात् मंत्र दीक्षा की कई विधियों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है – १. पत्र द्वारा मंत्र लिख कर भेजना, २. किसी भी समय और किसी भी स्थान पर अधिकारी भक्त को मंत्र देना तथा ३. विशेष विधिपूर्वक श्री ठाकुरजी के सान्निध्य में मंत्र देना। उक्त विधियों में प्रथम विधि राजघरानों की अंतःपुरवासिनी महिलाओं के लिए थी।[१९] दूसरी विधि उन जीवों के लिए थी जिन्हें धार्मिक विधि–विधान की अधिक आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार की दीक्षा वल्लभ ने सूरदास को दी थी।[२०] तीसरी विधि आज भी प्रचलित है। इसमें दीक्षार्थी को पहले दिन व्रत करना पड़ता है और दूसरे दिन स्नान करके वह आचार्य की सेवा में उपस्थित होता है। उस समय आचार्य उसे ठाकुर जी के सम्मुख समर्पण मंत्र सुना कर दीक्षित करते हैं।

दीक्षा देने का अधिकार वल्लभाचार्य ने अपने वंशज आचार्यों को ही दिया है। आचार्य ने उच्च कुल के हिन्दुओं के साथ शूद्रों और मुसलमानों को भी पुष्टि सम्प्रदाय में सम्मिलित होने का अधिकार दिया है।[२१]

### ४. समर्पण एवं दान में अन्तर ::

समर्पण एवं दान में अन्तर होता है। दान की हुई वस्तु का पुनःग्रहण नहीं किया जाता है, किन्तु भक्ति मार्ग में समर्पित वस्तु का प्रसाद रूप में पुनःग्रहण किया जा सकता है। इसमें लोकप्रसिद्ध स्वामी–सेवक का सा व्यवहार रहता है।

## ४. पुष्टिमार्गीय सेवा :-

### १. सेवा व पूजा में अंतर ::

वल्लभ ने भगवान् श्री कृष्ण की सदैव सेवा करना जीव का आवश्यक कर्तव्य बतलाया है। साधारणतः सेवा और पूजा समानार्थक माने जाते हैं, किन्तु पुष्टिमार्ग में इनमें भेद माना गया है। उपास्य देव की स्नेहपूर्वक की गई परिचर्या

'सेवा' कहलाती है। किन्तु धार्मिक विधि विधान से की गई परिचर्या 'पूजा' कहलाती है। सेवा पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की विशेषता है, जबकि पूजा मर्यादा मार्गीय सम्प्रदायों में प्रचलित है।

**२. पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रकार ::**

वल्लभ ने सेवा के दो प्रकार बतलाए हैं–'क्रियात्मक सेवा और भावात्मक सेवा'। क्रियात्मक सेवा भी दो प्रकार की है–तनुजा और वित्तजा। अपने आप तथा स्त्री, पुत्र कुटुम्बादि द्वारा की गई शारीरिक सेवा 'तनुजा' कहलाती है। जबकि धन सम्पत्ति तथा उससे सम्बन्धित समस्त साधनों से की गई सेवा 'वित्तजा' कहलाती है। जो सेवा सर्वरूपेण भगवान् में चित्त को प्रवीण कर की जाती है अर्थात् मन से की जाती है उसे 'मानसी सेवा' कहते हैं।

**३. पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम ::**

पुष्टिमार्गीय सेवा के दो क्रम हैं– (१) प्रातः काल से सायंकाल पर्यंत की 'नित्योत्सव सेवा' तथा (२) बारह महिनों और छहों ऋतुओं की 'वर्षोत्सव सेवा'। नित्य सेवा विधि में वात्सल्य भाव की प्रधानता है। ब्रजांगनाओं ने श्रीकृष्ण के बाल रूप की सेवा प्रातःकाल के जागरण से सायंकालीन शयन पर्यंत तक की है। नित्योत्सव सेवा में आठ समय के उल्लेख है – मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती और शयन। इस सेवा के कारण मन निरन्तर कृष्ण में लगा रहता है। वर्षोत्सव सेवा विधि में द्वादश मास एंव षट् ऋतुओं के उत्सवों, अवतारों की जयंतियों, लोक–त्यौहारों और वैदिक पर्वों का समावेश किया गया है।

## ५. पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप :-

पुष्टि सम्प्रदाय के परम आराध्य देव 'श्रीनाथजी' हैं, जो परब्रह्म श्री कृष्ण के अवतार रूप में ब्रज में प्रकट हुए हैं। श्रीनाथजी का स्वरूप श्री कृष्ण की बाल्य व

किशोर अवस्था का है और जिन्होंने ब्रज में गिरिराज पर्वत को धारण किया था, अतः इन्हें गिरिराजधरण कहते हैं। इनकी उर्ध्व भुजा के कारण इन्हें 'गिरिधर' तथा 'गोवर्धननाथ' भी कहते हैं। गाय श्री नाथ जी को अति प्रिय थी, अतः इन्हें 'गोपाल' भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय में श्री नाथ जी के अलावा अन्य श्री जी स्वरूप भी विद्यमान हैं, जो इस प्रकार हैं –

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | श्री नाथ जी | – | जतीपुरा (श्री नाथद्वारा) |
| २. | श्री नवनीतप्रिय जी | – | श्री नाथद्वारा |
| ३. | श्री मथुरेश जी | – | जतीपुरा (ब्रज) |
| ४. | श्री विट्ठलनाथ जी | – | श्री नाथद्वारा |
| ५. | श्री द्वारकाधीश जी | – | काँकरोली |
| ६. | श्री गोकुलनाथ जी | – | गोकुल |
| ७. | श्री गोकुलचन्द्रमा जी | – | कामवन |
| ८. | श्री मदनमोहन जी | – | कामवन |
| ९. | श्री बालकृष्ण जी | – | सूरत |
| १०. | श्री कल्याण राय जी | – | बड़ौदा |
| ११. | श्री मुकुन्द राय जी | – | काशी |

श्रीनाथजी सहित ये स्वरूप श्री कृष्ण के नौ विशिष्ट रूपों के प्रतीक नव निधि रूप हैं। इस सम्प्रदाय में इन स्वरूपों के अतिरिक्त गिरिराज पहाड़ी और यमुना नदी की भी बड़ी महत्ता बतलाई है और इन्हें भी सेव्य स्वरूप माना गया है। श्री गिरिराज जी को श्री कृष्ण का सखा और श्री यमुना जी को उनकी पटरानी माना गया है। इस कारण पुष्टि सम्प्रदाय वालों को श्री गिरिराज जी की परिक्रमा करना आवश्यक माना गया है। इसलिए प्रति वर्ष ब्रज यात्रा के समय श्री गिरिराज जी में अनेक उत्सव और समारोह होते हैं।

**पुष्टि मार्गीय नव निधि प्रतिमा स्वरूपों की संक्षिप्त व्याख्या –**

१. श्रीनाथजी – ये अपना वाम हस्त उठा कर अपने भक्तों को निकुंज में आने को आमंत्रित करते हैं।

२. श्री नवनीतप्रिया जी – ये अपने हाथ में मक्खन लिये हुए हैं।

३. श्री मथुरेश जी – ये गायों को चरा रहे हैं।

४. श्री विट्ठलनाथ जी – गोपियों के गीत गाते समय कृष्ण की कटि पर भुजाओं का रखना।

५. श्री द्वारकाधीश जी – ये चतुर्हस्तरूप – तीन भुजाओं में शंख, चक्र और गदा लिये हुए हैं।

६. श्री गोकुलनाथ जी – ये एक भुजा से गोवर्धन पर्वत उठाये हुए, दूसरे में शंख लिये हुए और शेष दो से बाँसुरी बजाते हुए हैं।

७. श्री गोकुलचन्द्रमा जी – ये रास लीला के कृष्ण रूप हैं।

८. श्री मदनमोहन जी – ये बाँसुरी बजाकर गोपियों को आमंत्रित करते हुए हैं।

९. श्री बालकृष्ण जी – ये बाल कृष्णरूप में एक हाथ में मोदक लिए हुए हैं।

## ६. पुष्टिमार्ग के आचार्यों की बैठकें :-

वल्लभाचार्य ने अपनी यात्राओं में जहाँ श्रीमद् भागवत का प्रवचन किया था तथा जिन स्थानों का विशेष महात्म्य बतलाया है वहाँ उनकी बैठकें बनी हुई हैं जो 'महाप्रभु जी की बैठक' कहलाती हैं। इन बैठकों की संख्या ८४ है, जो पूरे भारत देश में फैली हुई हैं।

वल्लभाचार्य की बैठकों की भाँति विट्ठलनाथ जी गुसाँई जी की भी २८ बैठकें पूरे भारत देश में विद्यमान हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय में गिरिधरलाल जी की चार बैठकें, गोकुलनाथ जी की १३ बैठकें, हरिराय जी की ७ बैठकें, गोवर्धन नाथ की ३ बैठकें और दामोदरदास जी की ३ बैठकें हैं। इस तरह कुल १४८ बैठकें इस सम्प्रदाय में विद्यमान हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में ये बैंठकें मंदिर–देवालयों की भाँति ही पवित्र और दर्शनीय मानी जाती हैं।

इस कलियुग में श्रीमद् भागवत् को सर्वोपरि ग्रंथ माना गया है। इसके आराध्यदेव परब्रह्म श्री कृष्ण हैं, जिनके अनुग्रह मात्र से हम इस संसार के प्रपंचों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इस काल में धार्मिक विधि–विधान और ज्ञान कर्म की नितांत निरपेक्षता बनी रहती है। इसी कारण वल्लभ ने सरल भक्तिमार्ग की स्थापना की, जो 'पुष्टिमार्ग' के नाम से जाना जाता है। इस मार्ग में सब जीव–वर्ण, जाति, देश–काल आदि सभी प्रकार के भेद भावों के बिना सर्वदा तथा सर्वथा उपादेय है। यही इस मार्ग की विशेषता है।

## ७. पुष्टिमार्ग का ललित कलाओं में योगदान :-

### १. चित्रकला ::

**१. चित्रकला का संक्षिप्त परिचय** – मनुष्य ने अपने इस लोक और परलोक में सिद्धि प्राप्त करने के लिए सत्यम्, शिवम् और सुंदरम का सहारा लिया है। इस कारण वल्लभाचार्य ने भी अपने पुष्टिमार्ग में कला को उचित महत्व दिया है, जिससे पुष्टिमार्ग का मानव अपनी रागात्मक प्रवृत्ति और सौन्दर्यपरक दृष्टि का सहज विकास 'श्रीनाथजी' की सेवा के द्वारा कर सके। पुष्टिमार्ग में वैष्णवजन स्वच्छता, पवित्रता और तन्मयता से अपने आराध्य श्री नाथ जी की सेवा करते हैं उनका दर्शन करते हैं, और प्रभु को आरोगाया प्रसाद पाकर अपने आत्मा का कल्याण करते हैं। पुष्टिमार्ग के प्रचार–प्रसार में चित्रकला का बड़ा महत्व है। सिर्फ इतना ही नहीं, भारतीय प्राचीन ग्रंथ 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में भी उल्लेख किया गया है कि कला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदायनी है।[२२]

रंग और रेखाओं के योग से छाया लोकमय संसार की रचना करना ही चित्रकला है।[२३] पुष्टिमार्ग में हाथ कलम के बने चित्रों को ही सेवा के योग्य समझा जाता है। इन्हीं चित्रों को वैष्णव अपने गुरु के द्वार पुष्ट कराकर, भगवद् सेवा का आरम्भ करता है। वैष्णव प्रातःकाल उठकर और रात्रि सोने से पहले अपने इष्टदेव

और गुरु देव को वन्दन करता है। इसी कारण वैष्णवों के घरों में श्रीनाथजी, श्री यमुनाजी और श्री वल्लभाचार्य का संयुक्त चित्र अंकित होता है। इसके अलावा अपने दीक्षित गुरु का चित्र तथा गुरु के आराध्य स्वरूप का चित्र भी अंकित होता है।

पुष्टिमार्ग की चित्रकला का उद्गम स्थान ब्रज देश है, जहाँ श्री कृष्ण भगवान् की बाल लीलाओं का सजीव वर्णन मिलता है। पुष्टिमार्ग में ब्रजाधिपति भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा की जाती है। यह स्वरूप ग्यारह वर्ष बावन दिन तक का माना जाता है। अतः पुष्टिमार्ग की चित्र कला में ब्रज में बसे गिरिराज–गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी, ब्रज के पेड़–पौधों, वन–उपवन, कुँज–निकुँज, पशु–पक्षी, गोप–ग्वाल, ब्रजांगनाएँ–गोपियाँ आदि का जीवन्त वर्णन प्रस्तुत होता है।

मुसलमानी आक्रमण की गम्भीर परिस्थिति में भगवान् श्रीनाथ जी प्रभु को ब्रज से निकाल कर राजस्थान में मेवाड़ में ले जाकर प्रतिष्ठित किया गया था। इस कारण पुष्टिमार्ग की चित्रकला में ब्रज संस्कृति के साथ–साथ राजपूताना शैली और मेवाड़ की कला का भी सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

पुष्टिमार्ग की चित्रकला की प्रगति में गोस्वामी बालकों का भी समय–समय पर अपूर्व योगदान रहा है। इसका उत्तम उदाहरण है गुसाँई विट्ठलनाथ जी के हाथ का बना भगवान् बालकृष्ण का चित्र। पुष्टिमार्गीय चित्रों की विषयवस्तु सीमित है। इनके सभी चित्रों में श्रीनाथ जी की छबियों की प्रधानता रहती है। इसके अलावा ऋतुओं और पर्वों, उत्सवों के अनुरूप वस्त्राभूषण और शृंगार होते हैं। पुष्टिमार्ग में वर्षभर के अलग–अलग वस्त्राभूषण और शृंगार से सज्ज श्रीनाथ जी प्रभु के चित्र उपलब्ध होते हैं। पुष्टिमार्ग में श्री यमुना जी को श्री कृष्ण की चतुर्थ प्रिया माना गया है। श्री यमुना जी का आधि भौतिक स्वरूप नदी–जलप्रवाह के रूप में चित्रित किया जाता है और आधिदैविक रूप में निकुंज में दैवी स्वरूप में बिराजमान श्री यमुना जी का स्वरूप भी देखने को मिलता है जो मानुषी रूप में व्यक्ति चित्र होता है। इसके अलावा गिरिराज–गोवर्धन का भी बड़ा महत्व है। इसके साथ ही साथ

श्री कृष्ण की ब्रज लीलाओं के चित्र अंकित मिलते हैं जैसे–माखन चोरी, दही बिलावन, गोचारण, कालिया नाग दमन, चीरहरण, दान–लीला, गोवर्धन धारण, गोवर्धन पूजा, पूतना उद्धार, रास लीला, राधा कृष्ण सखियों के साथ आदि और कई लीलाओं के चित्र बनाए जाते हैं। इसमें महाप्रभु वल्लभ और श्रीनाथ जी प्रभु के मिलन का चित्र अत्यन्त लोकप्रिय है। इनके सिवाय उत्सवों–त्यौहारों के अन्नकूट, छप्पनभोग, कुंजवारा आदि के चित्र भी बनवाये जाते हैं। इन त्यौहारों में होली के चित्र विशेष लोकप्रिय हैं। इन सब चित्रों के साथ–साथ प्रकृति का सजीव चित्रण भी हमें देखने को मिलता है–वन–उपवन, हरित आभामय भूमि, पशु–पक्षी, गुच्छ–श्याम सलिल यमुना में खिले कमल, झूला, नाचता मयूर, गायें, कल्पवृक्ष, हाथी–घोड़े, नील गगन में चाँद–तारे आदि। व्यक्ति चित्र भी पुष्टिमार्ग में इतने ही बनाए जाते हैं जिनमें महाप्रभु वल्लभाचार्य, गुसाँई विट्ठलनाथजी, गोकुलनाथ जी, हरिराय जी तथा अष्टछाप के चित्र बनाए जाते हैं।

२. **पुष्टिमार्गीय चित्रकला के प्रकार –** पुष्टिमार्गीय चित्रकला मुख्य रूप से दो प्रकार की है–पिछवाई कला तथा भिति चित्रकला।

**पुष्टिमार्ग की पिछवाई कला –**

श्रीनाथ जी प्रभु की (मूर्ति) स्वरूप के पीछे टांगे जाने वाले कपड़े को पिछवाई कहते हैं। यह कपड़ा सादा, मखमल का तथा रेशम का होता है। इस कपड़े पर सुन्दर चित्रकाम किया जाता है तथा आज कल तो भरतकाम जैसे, सोने–चांदी की जरी का काम, बहुमूल्य रत्न जड़ित काम, सितारा–गोटा–किनारी का काम आदि देखने को मिलता है। इन पिछवाईयों में आगे वर्णित सभी चित्र मिलते हैं जो समय, ऋतु व उत्सव के अनुरूप होते हैं। नाथद्वारा की चित्रकला की पिछवाईयाँ आज भी विश्व विख्यात हैं।

**पुष्टिमार्गीय भिति चित्रावलियाँ–**

प्राचीन काल में विवाह के अवसर पर महिलाएँ घर की सजावट हेतु घर के अन्दर–बाहर भीत पर और आंगन में चित्र बनाया करती थीं। कालान्तर में इसका

विकसित रूप पुष्टिमार्ग में देखने को मिलता है। पुष्टिमार्ग की चित्रकला में मंदिर में बने भित्ति चित्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। मंदिर में दोनों ओर के दरवाजें पर द्वार रक्षक खड़े बनाए जाते हैं तथा हाथी, घोड़े और एक ओर शुभ आरती लिए ब्रज कन्या है तो दूसरी ओर हाथ में मंगल कलश लिए ब्रज कन्या का चित्र भी देखने को मिलता है। इसके अलावा नृत्य करता मयूर, सिंह, सात सुँढवाला ऐरावत हाथी, कमल, विमानों से पुष्प वृष्टि करते देवता, केलवृक्ष, नृत्य करती ब्रजांगनाएँ, सफेद कबूतरों का जोड़ा, स्वर किन्नरियाँ और वाद्य बजाते गंघर्व, माखन चोरी, दान लीला, कालिया नाग दमन, सुन्दर झाड़ व पेड़–पौंधें, बेल–बूँटें आदि कई चित्र देखने को मिलते हैं। इसका उत्तम उदाहरण नाथद्वारा का श्रीनाथ जी मंदिर हैं। इसके अलावा इस सम्प्रदाय के सभी मंदिरों में हमें भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं।

पिछवाई कला और भित्ति चित्रकला के अलावा रंगोली का भी आयोजन उत्सवों त्यौहारों पर किया जाता है। ये रंगोली आंगन में तथा मंदिर परिसर में बनाई जाती है। इसके अलावा आरती की थाली को भी रंगोली द्वारा सजाया जाता है। इसके सिवाय आजकल श्रीमद् भागवत् के श्लोकों तथा अष्टछाप के पदों के हस्त चित्र भी उपलब्ध हैं। पुष्टिमार्ग में चित्रकला का उपयोग एक दैनिक क्रम–सा हो गया है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। आजकल तो नाथद्वारा में पुष्टिमार्गीय कलम के केलैण्डर भी उपलब्ध हैं। इसके अलावा हाथी दाँत, लकड़ी–धातु, आरसपान की बनी चीजों पर भी बारीक चित्रकाम देखने को मिलता हैं। नाथद्वारा आज पुष्टिमार्गीय चित्रकला का प्रमुख केन्द्र है, जहाँ हमें सभी प्रकार का चित्रकाम देखने को मिलता हैं। इसीलिए सूरदास जी ने कहा है –

'चित्र सराहत मुर–मुर चित्तवत गोपी अधिक सयानी।
ग्लालिनी आप तन देख, मेरे लाल तन देखरी।
भीत जो होय तो, चित्र अवरेख री।'

भक्त जन चाहे स्थान पर न तो मंदिर बनवा सकता है और न मूर्ति ही स्थापित कर सकता है। अतः इस मत के नियमानुसार हाथ से बने अपने आराध्य देव के चित्र की स्थापना कर मन में शान्ति का अनुभव करता है। यही सोच कर के वल्लभाचार्य ने इस सम्प्रदाय में हाथ के बने चित्र की पुष्टि करके सेवा करने की स्वीकृति प्रदान कर चित्र कला के प्रति अनन्य प्रेम का परिचय दिया है। यही परम्परा दिन प्रतिदिन विकसित होती जा रही है। मुख्य रूप से पुष्टिमार्ग में बने चित्रों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है–

१. पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूपों के विविध शृंगार युक्त चित्र।
२. प्रमुख उत्सवों व त्यौहारों पर आधारित चित्र।
३. श्री कृष्ण जन्म से गोकुल आगमन तक की अनेक लीलाओं पर आधारित चित्र।
४. श्री कृष्ण की ११ वर्ष बावन दिन तक की ब्रज की बाल लीलाओं पर आधारित चित्र।
५. वल्लभ सम्प्रदाय के प्रधान भक्तों और गोस्वामी बालकों के व्यक्ति चित्र।
६. अनेक अन्य देवी–देवताओं की लीलाओं के चित्र।
७. सामाजिक घरेलू व लोक भावना पर आधारित चित्र जैसे–गोवर्धन पूजा, यशोदा मैया द्वारा माखन बिलोना, गोवर्धन धारण करना आदि के चित्र।
८. इनके अलावा चौवल पर जय श्री कृष्ण, श्री कृष्ण शरणं ममः आदि आदर्श भावना प्रधान वाक्य लिखना व चित्रित भी करना। पीपल के पत्तें पर चित्र बनाना, लड़की, हाथी दाँत, आरसपान आदि पर चित्र बनाना।

## ३. नाथद्वारा के प्रमुख चित्रकार–

नाथद्वारा में जन्में गोस्वामी तिलकायत गोवर्धनलालजी के काल को नाथद्वारा के कला क्षेत्र का स्वर्ण युग माना जाता है। इन्होंने अपनी सूझ–बूझ व सहयोग से नाथद्वारीय चित्रकला को एक नया आयाम दिया है। इनके कार्यकाल में बनी चित्र कृतियाँ देखनेवाले लोगों पर गहरी छाप छोड़ती है। नाथद्वारा की

चित्रकला को विश्व स्तर पर पहुँचानेवाले कुछ चित्रकारों के नाम इस प्रकार हैं– रामचन्द्र बाबा, श्री नारायण, उदयराम जी सीलक, एकलिंग दास, खेमराज पालेचा, हरदेव जी सीलक, देव कृष्ण, कासीराम शर्मा, हीरालाल सीलक, चिमनलाल, खूबीराम शर्मा, देवीलाल, प्रेमचन्द्र, प्रेम नरेन्द्र, तुलसीराम बुड़ेतिया, भूरालाल शर्मा, चुन्नीलाल, शंकरलाल गगेरिया, गंगाराम, लक्ष्मीलाल नंदलाल आदि अनेक कला तपस्वी कलाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त वर्तमान में पुरुषोत्तम रामलाल पालेचा, द्वारकालाल जाँगिड़, चिमनलाल हीरालाल सीलक, भंवरलाल गिरधारी लाल शर्मा, घनश्याम भूरालाल शर्मा, चिरंजीवलाल शर्मा, जमनादास, विट्ठलदास लक्ष्मीलाल, रेवाशंकर लक्ष्मीलाल सिलक, रघुनाथ अम्बालाल शर्मा, माँगीलाल शर्मा, यशवन्त एम. जाँगिड़, देवेन्द्र कुमार आदि कुछ ऐसे चित्रकार हैं जो वर्तमान में कला साधना को नये आयाम प्रदान कर रहे हैं।

**४. चित्रकारी के साधन–सामग्री –**

**ब्रश–तूलिका :** ये ब्रश या तूलिका घोड़े, बकरी, गिलहरी व सूअर के बालों से बनाई जाती है। पहले सभी चित्रकार स्वयं तूलिका बनाया करते थे, किन्तु अब ये ब्रश के रूप में बाज़ार से तैयार मिल जाती है।

**रंग :** पहले प्राकृतिक वस्तु से बने रंग काम में आते थे, जैसे–पीली मिट्टी से पीले रंग का बनना, लाल पत्थर को पीस कर लाल रंग तैयार करना आदि पर अब तो कई कम्पनियों के रंग तैयार मिल जाते हैं। पहले रंगों को सुरक्षित रखने के लिए नारियल के खोल से बनी कटोरियों से काम लिया जाता था जिसका स्थान आज प्लास्टीक डिश ने ले लिया है। वस्तुतः समय के साथ–साथ पुष्टिमार्गीय चित्रकला में भी कई बदलाव आए हैं किन्तु अभी भी कुछ विशेषताएँ यथावत हैं–

१. पुष्टिमार्गीय चित्रकला आध्यात्मिक आधार पर स्थित है। अतः आत्मा को शांति और आनन्द प्रदान करती है।

२. इन चित्रों का मुख्य विषय आज भी ब्रज संस्कृति और श्री कृष्णलीला है। इनके अलावा अष्टछाप के पद, श्रीमद् भागवत् पुराण और अन्य वैष्णव पुराण भी अब इनका हिस्सा बन गए हैं।

३. यह चित्रकला आज भी ब्रज, मेवाड़ और राजस्थान की समन्वित चित्र शैली पर आधारित है।

४. इनमें आज भी प्राकृतिक व देशी रंगों का प्रयोग होता है, साथ ही रासायनिक रंगों से भी काम किया जाता है।

५. इस चित्रकला में परम्परा तो यथावत् है, साथ ही नवीन प्रयोगों को भी स्थान दिया गया है– जैसे श्रीमद् भागवत् के श्लोक तथा अष्टछाप के पद।

६. वैसे तो पुष्टिमार्गीय चित्रकला भगवत सेवा के उद्देश्य से भावना के साथ की जाती है, किन्तु अब व्यावसायिक झलक भी देखने को मिलती है।

## २. सांझी कला ::

### १. सांझी कला का परिचय–

पुष्टिमार्ग के मंदिरों में दीपावली से पूर्व आश्विन मास में श्राद्ध पक्ष में पूरे सोलह श्राद्धों में प्रतिदिन सांझी मांड़ी जाती है, जो पूर्णिमा से लेकर अमावस्या तक प्रतिदिन संध्या के समय की जाती है। इन सांझीयों में हमें मुख्यतः ब्रज–संस्कृति की झलक मिलती है। इनमें ब्रज चौरासी कोस, राधा–कृष्ण की लीलाएँ आदि का मूर्त रूप में वर्णन होता है।

### २. सांझी बनाने की रीत–

सांझी बनाने के लिए पहले भूमि तैयार की जाती है जो गोबर से लीप कर तैयार की जाती है। फिर उस पर कोट तैयार किया जाता है। इस कोट को केले के पत्ते, केले के तने की अन्तर छाल, विभिन्न रंगों के कागज़, रंग–बिरंगें फूल आदि की सामग्री से तैयार किया जाता है। उपरोक्त सामग्री का उपयोग कर कुशल कारीगर इसे संपूर्ण रूप से तैयार करते हैं। इस सामग्री से कारीगर अलग–अलग

आकृतियाँ बनाते हैं; जो सफेद कपड़े पर या मोटे कागज पर सजाई जाती हैं। फिर उस पर पानी भी छिड़का जाता है ताकि हवा के झोंके से वे खराब ना हो जाएँ। इस कोट में गिरिराज पर्वत, यमुना नदी, नन्द–यशोदा, गोपी–ग्वाल, ब्रज के सरोवर–जलाशय, कुँज–उपवन, पशु–पक्षी, सिपाही, श्रृंगारित महिलाएँ, संतरी, छड़ीदार आदि आकृतियाँ बनाई जाती हैं। साथ ही किनारे पर बेल–बूटे, पेड़–पौधें भी इनकी शोभा में वृद्धि हेतु बनाए जाते हैं।

### ३. पुष्टिमार्ग में सांझी का महत्व–

हमारे शास्त्रों में पृथ्वी परिक्रमा का फल सविशेष कहा गया है। वल्लभाचार्य ने भी तीन बार पृथ्वी परिक्रमा की थी। पुष्टिमार्ग में सांझी की परिक्रमा का फल भी पृथ्वी परिक्रमा के जितना माना गया है जो मुख्यतः शारीरिक रूप से कमजोर वैष्णवों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। वे इस कोट (सांझी) की परिक्रमा द्वारा ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा का फल प्राप्त करते हैं।

इस कोट में बनी आकृतियों की वैष्णव भक्त माला पधराते, भोग आरोगाते, आरती भी उतारते हैं। जब सांझी मण्डती है, कोट सजते हैं तब कीर्तनकार कीर्तनगान करते हैं और ब्रज राज को प्रसन्न करते हैं।

मंदिरों में सांझी माण्डने का कार्य धार्मिक भावों के रूप में किया जाता है तो घरों में सांझी भावनात्मक सुख और लोक संस्कृति–परम्परा के रूप में बनाई जाती है। घरों में सांझी माण्डने का कार्य कुंवारिकाएँ करती हैं, इस कार्य में उनका सहयोग सधवा (सुहागन) नारियाँ देती हैं।

ये कुंवारिकाएँ गोबर से भूमि तैयार कर उस पर चाँद–सूरज, तारे, सास–बहू का बिछौना, चोपड़, राजा–रानी, पशु–पक्षी आदि आकृतियाँ बनाती है। सांझी संपूर्ण मण्ड जाने के पश्चात् ये कुंवारिकाएँ गीत गाती हैं, आरती उतारती हैं और भोग चढ़ाती हैं। फिर दूसरे दिन सुबह इस सांझी को पानी में विसर्जित किया जाता है। वर्तमान में सांझी माण्डने का कार्य भी आधुनिक होता जा रहा है। अब

चमकीले रंगीन कागज व प्लास्टीक तथा थर्मोकोल व फेविकोल का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार देखें तो आज भी यह सांझी कला मंदिरों और घरों में बसने के साथ हमारी धार्मिक आस्था और लोक संस्कृति को उजागर करने में अपना सम्पूर्ण योगदान दे रही है।

## ३. छठी अंकन ::

### १. छठी पूजा का परिचय–

हमारे यहाँ छठी पूजा की प्रथा बहुत पुरानी है। जब किसी बालक का जन्म होता है तो जन्म के छठे दिन, छठ पूजा की जाती है। ऐसी लोक मान्यता है कि छठ के दिन भाग्य विधाता आकर उस बालक का भाग्य लिखते हैं।

### २. पुष्टिमार्ग में छठी का उत्सव व विधि (या रीत)–

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में श्री कृष्ण के जन्म दिन के एक दिन पहले छठी का उत्सव मनाया जाता है। छठी के पूजन में कोरा कागज, कलम, कुमकुम और दिया रखा जाता है। ये पूजा मंदिर हो या घर, केवल महिलाओं द्वारा ही की जाती है।

इसमें पहले पंचकोणीय आकृति बनाई जाती है, उसे काले रंग से पोता जाता है फिर उस पर सफेद या पीले रंग से अन्य आकृतियाँ बनाई जाती हैं जैसे– नन्द यशोदा का पालना झुलाना, नन्द महोत्सव, रास आदि। अब इसमें भी काले, सफेद और पीले रंग के अलावा गुलाबी, आसमानी, हरा, नारंगी आदि रंगों का प्रयोग किया जाता है।

इस अवसर पर कीर्तनकार कीर्तन गान करते हैं।

## ४. पुष्प कला ::

### १. पुष्पकला का आरम्भिक परिचय–

हमारे यहाँ प्राचीन काल से अपने आराध्य अथवा इष्ट देव की पूजा व उपासना में हम पुष्पों का उपयोग अनिवार्य रूप से करते रहे हैं। इसके अलावा मंदिरों, देवालयों, महलों आदि को भी उत्सवों पर फूलों से सजाया जाता है। यहीं से हम पुष्प कला का विस्तार होता हुआ देखते हैं।

## २. पुष्टिमार्ग में पुष्पकला–

पुष्प कला के महत्व को स्वीकार करते हुए पुष्टिमर्गीय मंदिरों में 'फूलघर' नाम का विभाग बनाया गया है। फूलघर के प्रधान को 'फूलघरिया' कहा जाता है। वैष्णव जन प्रतिदिन फूलघर में अपनी सेवा देते हैं। फूलघरिया प्रतिदिन प्रातः मंगला के समय बड़े मुखिया जी से आज्ञा लेकर शृंगार के अनुकूल फूलों की मालाएँ व आभूषण तैयार करवाता हैं।

श्रीनाथ जी के सभी प्रकार के शृंगारों में फूलों की माला अनिवार्य रूप से पधराई जाती है। ये मालाएँ कई प्रकार की हैं–छेड़ा की माला, छोटी माला, मध्य की माला, भारी शृंगार की बड़ी माला (जो चरणारविन्द तक की होती हैं) इनके अलावा गोवर्धन माला व वनमाला भी होती है। मालाएँ एकहरी, दोहरी, तिहरी, चौहरी एवं गुच्छेदार बनाई जाती है। मालाएँ घारीदार, मनकादार आदि प्रकार की भी बनाई जाती है। मालाओं के साथ गजरे, वेणियाँ भी कलात्मक रूप से बनाए जाते हैं।

माला बनाने में मौसम के अनुकूल जो भी फूल अधिक प्राप्त होते हैं उनका विशेष उपयोग किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में चमेली, मोगरा, गुलाब, जूही, चम्पा, मोलश्री, कोयल, मोगरे की कली, जूही की कली, पत्ती की कली आदि अधिक मिलते हैं। शीत ऋतु में गुलाब (लाल, गुलाबी, पीले आदि), कमल, कदम्ब आदि फूल मिलते हैं। श्रावण मास में गैंदा, हजारा, केवड़ा, रायबेल, पारिजात आदि फूल मिलते हैं। श्रावण मास में होने वाले हिण्डोला उत्सव में फूलों का काफी अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है। इन मालाओं के बीच थाग बनाया जाता है जो माला को अधिक सुन्दर बना देता है। ग्रीष्म ऋतु में मुख्य रूप से फूलों से श्रीनाथ

जी के लिए आभूषण बनाये जाते हैं। मुख्यतः कुँज एकादशी के दिन श्रीजी मुकुट, टोपी, काछनी, आडबन्द, परदनी, नेपूर, डोडा, पाँची, बाजूबन्द, हस्तफूल, चरण फूल, कर्ण फूल, हांस, पाग, हुली, कटिमेखला आदि कई प्रकार के फूलों के आभूषण पधराएँ जाते हैं। जो सम्पूर्ण नख–शिख श्रृंगार होता है।

वस्त्राभूषणों व मालाओं के अलावा बंगला, सज्ज मण्डली, पलना आदि भी फूलों से बनाए जाते थे। श्राद्ध में, सांझी उत्सव में भी फूलों से सांझी बनाई जाती है तथा फूलों से चौक भी सजाया जाता है। कलियों और पत्तों से पशु–पक्षी, बेल–बूट्टें, महल–छतरी–झरोखा आदि भी बनाए जाते हैं।

५. **पाक कला ::**

**पुष्टिमार्गीय पाक कला का विस्तृत विवरण–**

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में श्रृंगार और राग के बाद भोग का स्थान आता है। पुष्टिमार्गीय मंदिरों में प्रतिदिन हजारों प्रकार की सामग्रियाँ श्रीनाथ जी के भोग के लिए बनाई जाती हैं। ये सारी सामग्री श्रीनाथ जी को भोग लगने के पश्चात् 'प्रसादी भण्डार' में पहुँचाई जाती है, जहाँ से ये सामग्री मंदिर के सेवकों में उनके पदानुसार वितरित कर दी जाती है। मंदिर के सेवक इस प्रसाद को अपने पालन पोषण के लिए यात्रिकों को कम व्यय में दे देते हैं।

ये सामग्रियाँ दो प्रकार की होती हैं – सखड़ी प्रसाद और अनसखड़ी प्रसाद। सखड़ी प्रसाद रोज प्रातः राजभोग तथा संध्या समय शयन के पश्चात् निकलता है। सखड़ी प्रसाद में चावल, रोटी, जीरापूरी, दालबाटी, पकौड़े, हरी सब्जियाँ, कई प्रकार की दालें, रायता, पापड़, बड़ी, अचार, मुरब्बे, सीरा, चूरमा आदि कई और सामंग्री का भोग श्रीनाथ जी को लगाया जाता है। संध्या के समय में चावल, दाल, कढ़ी, कुछ सब्जियाँ आदि का भोग श्री नाथ जी को लगाया जाता है।

अनसखड़ी प्रसाद का श्री नाथ जी को आठों दर्शनों में भोग लगाया जाता है जो हर दर्शन के बाद निकलता है। अनसखड़ी प्रसाद में दूध और घी से बनी सामग्रियाँ आती हैंजो कई दिनों तक ताजा रहती हैं जैसे–मिठाइयाँ –जलेबी, मोहनथाल, पेड़े, लड्डु, घेबर, ठौर, खाजा, आम्ररस, सीरा (हलवा), सूतरफेणी, बरफी, मेसूर, बूंदी आदि; घी में तल कर बनाई गई सब्जियाँ[२४] रतालु, आलू, सूरन, भिंडी आदि, घी में ही बनाए गए कठोर–मूँग, मठ, चने की दाल, वाल की दाल, चने (हरे) आदि; दूध से बनी चीजें–मावा, खीर, दूधपाक, श्रीखण्ड आदि।

इन सबके अलावा कई तरह के अचार–मुरब्बे, चटनियाँ, नमकीन, पापड़, बड़ियाँ आदि भी बनाएँ जाते हैं। अनसखड़ी का अधिक प्रसाद हमें अन्नकूट, छप्पन भोग में देखने को मिलता है।

इन सभी सामग्रियों को बनाने के लिए मैदा, बेसन, शक्कर, घी आदि पदार्थ तथा बादाम, पिस्ते, काजू, द्राक्ष, अंजीर, खसखस आदि मेवे साथ ही केसर, बरास, इलायची, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ का भी प्रचुर मात्रा में मंदिर में आयात किया जाता है। मुख्यतः निधि स्वरूप मंदिरों की अपनी गौ शालाएँ हैं तो दूध तो वहीं से मिल जाता है।

भोग के पश्चात् श्रीनाथ जी को पान आरोगाया जाता है। पान बनाने का काम 'पानघर' का प्रधान करता है। इस पान में गुलाब जल से सुगन्धित कत्था, चूना तथा सुगन्धित सुपारी, इलायची, लोग आदि डाली जाती है।

निधि मंदिरों में प्रतिदिन कुछ किलो सामग्री का भोग नियमित श्रीनाथ जी को आरोगाया जाता है। इतनी सामग्री तैयार करना भगवान श्रीनाथ जी की कृपा के बिना सम्भव नहीं हो सकता है।

इस प्रकार पुष्टिमार्ग में हमें कई कलाएँ देखने को मिलती हैं–चित्रकला, संगीत कला, सांझी कला, छठी अंकन, पुष्प कला, पाक कला, कढाई–बुनाई की कला आदि। अतः हम कह सकते हैं कि पुष्टिमार्ग अनेक कलाओं का प्रधान केन्द्र–सा प्रतीत होता है।

## ८. पुष्टिमार्ग के पर्वोत्सव :-

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित तथा गुसाँई विट्ठलनाथ जी द्वारा पल्लवित पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणाली का प्रारम्भ ब्रज के गिरिराज गोवर्धन पर्वत पर बिराजमान 'श्रीनाथ जी' के मंदिर से होता है, जो आज सदियों बाद भी एक समान रूप से पूरे भारत वर्ष में प्रचलित है।

आचार्य वल्लभ ने पुष्टिमार्ग में लोक–जीवन से संबंधित उत्सवों–त्यौहारों को शामिल किया है ताकि सामान्य मनुष्य भी इन उत्सवों–त्यौहारों का आनन्द लेने के साथ–साथ भगवत् लीला का रस–पान भी कर सकें।

### १. नित्योत्सव वर्षोत्सव ::

पुष्टिमार्ग में पर्वोत्सव व उत्सव दो प्रकार से मनाए जाते हैं– 'नित्योत्सव तथा वर्षोत्सव'। नित्योत्सव में वर्ष के तीन सौं पैसठ दिनों में होने वाले प्रतिदिन के उत्सवों को शामिल किया जाता है, जो ऋतु के अनुरूप होते हैं तथा उस (महीने) माह की तिथियों के अनुरूप भी होते हैं। वर्षोत्सव में पूरे वर्ष भर में होने वाले मुख्य त्यौहार होते हैं। जो लोक–जीवन से सम्बन्धित होते हैं, जैसे–होली, दीपावली, दशहरा आदि। वर्षोत्सव में श्री कृष्ण की बाल लीलाओं और लोक मेलों, लोक उत्सवों को मुख्य माना गया हैं। ये उत्सव भारत वर्ष के हर घर में मनाएँ जाते हैं।

संक्षेप में पुष्टिमार्ग के मुख्य उत्सवः

१. इनमें सबसे पहले पुष्टिमार्ग का स्थापना दिन आता है जो पवित्रा एकादशी को मनाया जाता है।

२. बाद में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का प्राकटोत्सव तथा गुसाँई विट्ठलनाथ जी का प्राकटोत्सव साथ ही इनके वंशज गोस्वामी बालकों के प्राकटोत्सव भी मनाये जाते हैं।

३. साथ ही वर्ष भर की चौबीस एकादशियाँ भी उत्सवों के रूप में मनायी जाती हैं।

२. **वर्षभर के मुख्य उत्सवों की सूची ::**

१. **पवित्रा एकादशी :** पुष्टिमार्ग प्राकट्य दिन (श्रावण सुदी एकादशी)

इस दिन श्री वल्लभाचार्य ने मध्यरात्रि को श्री ठाकोरजी श्रीनाथ जी के दर्शन कर उनकी आज्ञानुसार ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा दैवी जीवों के उद्धार का संकल्प किया था तथा श्री नाथ जी को पवित्रा अर्पण किया था।

२. **पवित्रा बारसः** (श्रावण सुदी द्वादशी)

इस दिन वैष्णव जन गुरु को पवित्रा पधराते हैं तथा साथ ही श्री नाथ जी को भी पवित्रा पधराते हैं।

३. **रक्षाबंधन :** (श्रावण सुदी पूर्णिमा)

इस दिन सुभद्रा जी ने श्री कृष्ण को और बलराम को रक्षा बाँधी थी इस कारण भी उत्सव मनाया जाता है।

४. **छट्ठी उत्सव :** (श्रावण/भादों वदी सप्तमी)

ये छठी पूजन बालक के जन्म के छठे दिन किया जाता है। इसमें कोरा कागज, लाल कपड़ा, कलम, सिंदूर तथा दीप बालक के पास रखा जाता है। श्री नाथ जी का छट्ठी पूजन भी मंदिरों में किया जाता है।

५. **जन्माष्टमी :** (श्रावण/भादों वदी अष्टमी)

श्री कृष्ण प्रभु के प्राकट्य का दिन बड़ी ही धूम–धाम से मनाया जाता है।

६. **नन्द महोत्सव :** (श्रावण/भादों वदी नवमी)

नन्द महोत्सव के दिन प्रभु श्री नाथ जी को पालना झुलाया जाता है।

७. **श्री चन्द्रावली जी का उत्सव :** (भादों सुदी पंचमी)

श्री चन्द्रावली जी मुख्य सखी हैं तथा श्री गुसाँई विट्ठलनाथ जी को चन्द्रावली जी का स्वरूप माना जाता है।

८. **श्री ललिता जी का उत्सव :** (भादों सुदी षष्ठी)

अष्ट सखा के कृष्णदास अधिकारी ललिता जी का स्वरूप है।

९. **राधाष्टमी :** (भादों सुदी अष्टमी)

आज का दिन श्री राधा जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। मंदिरों में श्री नाथ जी के पास केसरी रंग की साड़ी–चोली श्री राधा जी के भाव से पधराई जाती है।

१०. **दान एकादशी :** (भादों सुदी एकादशी)

आज के दिन से दानलीला का मनोरथ प्रारम्भ होता है जो बीस दिन चलता है। दानलीला में प्रभु ने ब्रज भक्तों से दही (गोरस) का दान मांगा था। आज से ही ब्रज यात्रा का आरम्भ होता है।

११. **वामन जयंती :** (भादों सुदी द्वादशी)

आज ही के दिन प्रभु श्री विष्णु ने बटुक (वामन) का वेष घर कर पृथ्वी पर राजा बलि के पास आए थे। ये स्वरूप श्री विष्णु के मुख्य अवतारों में से एक है। यद्यपि इस दिन को पुष्टिमार्गीय मंदिरों में उत्सव मनाया जाता है।

१२. **साँझी उत्सव :** (भादों सुदी पूर्णिमा से आश्विन की अमावस्या तक)

साँझी का उत्सव पन्द्रह दिन लगातार चलता है ओर कोट की विशेष आरती के साथ समाप्त होता है। साँझी श्राद्ध पक्ष के दिन में भरी जाती है। इसका विस्तृत वर्णन सांझी कला विभाग में देखिए।

१३. **नवरात्रि आरम्भ :** (आश्विन सुदी प्रतिपदा से नवमी तक)

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में भी आद्य–शक्ति नवदुर्गा की आराधना का पर्व नवरात्रि पूर्ण श्रद्धा से मनाया जाता है। इन नौ दिनों में ब्रज भक्त अपनी यथाशक्ति तन–मन–धन से प्रभु श्रीनाथ जी सेवा करते हैं और भोग पधराते हैं।

१४. **दशहराः** (आश्विन सुदी दशमी)

विजयादशमी के दिन श्री स्वामिनी जी ने प्रभु पर विजय प्राप्त की थी इस भावना से मंदिरों में जवारा पधराये जाते हैं। साथ ही नवरात्रि की नवधा भक्ति तथा दशमी प्रेम लक्षणा भक्ति के भाव से भी दशहरा का उत्सव मनाया जाता हैं तथा रामावतार के रूप में भी यह उत्सव मनाया जाता है।

**१५. शरद पूर्णिमा :** (आश्विन सुदी पूर्णिमा)

आज के पावन दिन ही श्री कृष्ण प्रभु ने गोपियों के साथ महारास किया था। इसी महारास के माध्यम से गोपियों के विशुद्ध प्रेम को देखा जाता है। इनमें श्री स्वामिनी जी का स्थान सबसे ऊँचा है वे प्रभु की अहलादिनी शक्ति हैं। श्रीमद् भागवत् में इस महारास का वर्णन पाँच सर्ग में किया गया है जिसे रास पंचाध्यायी कहा जाता है।

**१६. धनतेरस :** (आश्विन वदी तेरस–कार्तिक वदी तेरस)

इस दिन श्री राधा ने प्रभु को सर्वस्व मान कर धन रूप में प्राप्त किया था।

**१७. रूप चतुर्दशी** (आश्विन बदी चतुर्दशी – कार्तिक बदी चतुर्दशी)

**१८. दिपावली**–हटरी उत्सव (आश्विन वदी अमावस्या–कार्तिक वदी अमावस्या)

धन तेरस के दिन से हटरी के विशेष दर्शन होते हैं जो दिपावली तक चलते हैं। दीप प्रज्वलित किए जाते हैं। मंदिरों को भी असंख्य दिपों से सजाया जाता है।

**१९. गोवर्धन पूजा – अन्नकूटोत्सव :** (कार्तिक सुदी प्रतिपदा)

यह उत्सव श्री कृष्ण द्वारा की गई इन्द्र–यज्ञ–भंग पूजा तथा गोवर्धन धारण लीला से संबन्धित है। आज के दिन पुष्टिमार्गीय मंदिरों में प्रातः गोवर्धन पूजा होती है और शाम को अन्नकूट के दर्शन होते हैं।

**२०. भाई द्वीज–यम द्वितीया :** (कार्तिक सुदी द्विज)

आज के दिन जो भी वैष्णव यमुना जल में स्नान करते हैं उन्हें यमलोक के द्वार नहीं जाना पड़ता तथा आज के दिन भाई–बहन के घर जाते हैं और भोजन करते हैं तथा इस प्रकार यह दिन भाईद्वीज के रूप में मनाया जाता है।

**२१. गोपाष्टमी :** (कार्तिक सुदी अष्टमी)

आज का दिन गौ पूजा का दिन है। आज ही के दिन श्री कृष्ण भगवान पहली बार गौ–चारण हेतु वन में गए थे। आज के दिन गौ माता की विशेष सेवा की जाती है।

**२२. अक्षय नवमीं :** (कार्तिक सुदी नवमी)

आज के दिन ही सत्युग का जन्म हुआ था। इस कारण यह अक्षय है तथा आज ही के दिन इन्द्र अपनी हार स्वीकार कर प्रभु श्री कृष्ण के चरणार्विंद में आए थे।

२३. **देव प्रबोधिनी एकादशी : तुलसी विवाह :** (कार्तिक सुदी एकादशी)

आज के दिन चतुर्मास की समाप्ति होती है और देवों को जगाया जाता है। आज ही के दिन तुलसी का विवाह ठाकुर जी के साथ किया जाता है।

२४. **गोपमास आरम्भ :** (कार्तिक वदी प्रतिपदा से मार्गशीष वदी प्रतिपदा)

आज के दिन एक महीने तक मनवान्छित वर की प्राप्ति के लिए गोकुल की गोपियों ने कात्यायनी व्रत किया था।

२५. **श्री गुसाँई विट्ठलनाथ जी का उत्सवः**(मार्गशीष वदी नवमी–पोष वदी नवमी)

आज का दिन गुसाँई जी के जन्मोत्सव के रूप में बड़ी भव्यता से मंदिरों में मनाया जाता है। आज के उत्सव को जलेबी उत्सव भी कहते हैं।

२६. **धनुर्मास आरम्भ :** (मार्गशीष/पोष)

धन (अनाज) की सक्रान्ति का प्रारम्भ से पूर्ण होने तक का महीना धनुर्मास कहलाता है।

२७. **मकरसंक्राति :** (पोष वदी अथवा सुदी)

आज के दिन भगवान सूर्य उत्तरायण करते हैं तथा तिल व गुड़ का दान किया जाता है।

२८. **वसन्त पंचमी :** (माघ सुदी पंचमी)

आज से वसन्तोत्सव मनाया जाता है जो पूरे चालीस दिनों तक मंदिरों में उल्लासपूर्वक मनाया जाता है।

२९. **होली डंडा रोपण :** (माघ सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन भक्त जन मंदिरों से कीर्तन करते हुए जाते हैं और करीब ३० फीट ऊँचा होली डंडा निश्चित स्थान पर रोपा जाता है। आज से पूरे एक महीने तक ब्रज भक्त प्रभु श्री कृष्ण के साथ अबीर–गुलाल से होली खेलते हैं।

**३०. श्रीनाथ जी पाटोत्सव :** (माघ वदी सप्तमी – फागुन वदी सप्तमी)

आज के दिन श्री नाथ जी ब्रज से निकलकर मथुरा सतघरा में पधारे थे और सभी भक्तों ने इस अवसर पर मथुरा में पाटोत्सव मनाया था।

**३१. होली उत्सव :** (फागुन सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन होलिका दहन होता है और शाम को होली का पूजन होता है। मंदिरों में चल रहे चालीस दिन के वसन्तोत्सव का आज समापन होता है।

**३२. डोलोत्सव :** (फागुन वदी प्रतिपदा–चैत्र वदी प्रतिपदा)

आज सभी मंदिरों में डोलोत्सव मनाया जाता है। आज के दिन अबीर–गुलाल से मंदिर रंगा जाता है।

**३३. संवत्सरी उत्सव :** (चैत्र सुदी प्रतिपदा)

ऐसी मान्यता है कि आज के दिन ब्रह्मा जी ने इस दुनिया को बनाया था इसलिए आज से नए वर्ष का आरम्भ माना जाता है।

**३४. गण गौर :** (चैत्र सुदी तीज)

**३५. राम नवमी :** (चैत्र सुदी नवमी)

श्री विष्णु भगवान के एक ओर मुख्य अवतार श्री राम का जन्मोत्सव राम नवमी के रूप में मनाया जाता है।

**३६. महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्राकटोत्सव :** (चैत्र वदी एकादशी–वैशाख वदी एकादशी)

पुष्टिमार्ग के संस्थापक वैष्णवतार महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का प्राकट्योत्सव मंदिरों में बड़े भक्ति भाव से मनाया जाता है।

**३७. अक्षय तृतीया :** (वैशाख सुदी तृतीया)

आज के दिन त्रेता युग का आरम्भ होता है इस कारण इस तिथि का कभी क्षय नहीं होता यह अक्षय है। आज से ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ माना जाता है।

**३८. नृसिंह चतुर्दशी :** (वैशाख सुदी चतुर्दशी)

यह भी श्री विष्णु के मुख्य अवतार हैं अतः इस दिन भी मंदिरों में उत्सव मनाया जाता है।

**३९. श्री यमुना जी का उत्सव–गंगा दशहरा :** (जेठ सुदी दशमी)

आज के दिन श्री यमुना जी तथा श्री गंगा जी का मिलना हुआ था।

**४०. स्नान यात्रा :** (जेठ सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन श्री कृष्ण तथा श्री राधा–स्वामि जी ने युगल स्वरूप से श्री यमुना नदी में स्नान किया था।

**४१. रथयात्रा का उत्सव :** (अषाढ़ सुदी द्वितीया)

आज का उत्सव पुष्टिमार्ग में पुष्य नक्षत्र देखकर मनाया जाता है। आज के दिन ठाकुर जी रथ में बिराजमान होकर भक्तों को दर्शन देने मंदिरों से बाहर आते हैं।

**४२. कसुम्बा छठ :** (अषाढ़ सुदी छठ)

आज से वर्षा ऋतु का आरम्भ माना जाता है और आज ही के दिन गुसाँई जी का विरह समाप्त हुआ और वे पुनः श्री नाथ जी की सेवा में पधारे थे।

**४३. गुरु पूर्णिमा :** (अषाढ़ सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन वैष्णव अपने गुरु की पधरामणी अपने घर करते हैं तथा यथा शक्ति उनकी सेवा की जाती है।

**४४. हिंडोला आरम्भ :** (अषाढ़ वदी प्रतिपदा–श्रावण वदी प्रतिपदा)

आज से पूरे एक महीने तक श्री नाथ जी को हिंडोला में झुलाया जाता है और अलग–अलग मनोरथ सिद्ध किए जाते हैं।

**४५. हरियाली अमास :** (श्रावण वदी अमावस्या)

आज के दिन प्रभु को हरे रंग के वस्त्राभूषण पधराए जाते हैं।

**४६. ठकुरानी त्रीज :** (श्रावण सुदी तीज)

आज के दिन प्रभु श्री नाथ जी ने श्री यमुना जी के सभी मनोरथ अष्ट प्रहर में सिद्ध किए थे।

४७. **नाग पंचमी :** (श्रावम सुदी पंचमी)

आज के दिन श्री नाथ जी की उद्धव भूजा का प्राकट्य हुआ था।

४८. **बगीचा नोम :** (श्रावण सुदी नवमी)

## ९. पुष्टिमार्ग और ब्रज तथा ब्रजयात्रा :-

### १. ब्रज : पुष्टिमार्गीय परिचय ::

'ब्रजन्ति गावो यत्र ब्रजस्तदुच्यतै वुधैः।' अर्थात वह क्षेत्र जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने गो–चारण किया था वह 'ब्रज' कहलाता है। इसका माप (८४) चौरासी कोस का माना जाता है। यहाँ गिरिराज गोवर्धन और श्याम सुन्दर यमुना नदी बहती है, साथ ही कई देवालय, शिलाखण्ड, सरोवर, गुफाएँ भी हैं जहाँ श्री कृष्ण ने अनेक लीलाएँ की थी। यह वह स्थान है जहाँ भगवान श्री कृष्ण अपनी नित्य सहचरी राधा के साथ सदैव नित्य लीला में रमण करते हैं, वह ब्रज धाम कहलाता है। अष्टछाप शिरोमणि सूरदास जी ने ब्रज–वृन्दावन का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

'अविगत, आदि, अनन्त, अनुपम, अलख पुरुष अविनाशी।
पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी।
यहाँ वृन्दावन आदि अजर यहाँ, कुंज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ, निगम भृंग गुंजार।
रत्न जटित कालिन्दी के तट, अति पुनीत चहाँ नीर।
सारस हंस चकोर मोर खग, कूजत कोकिल कीर।
जहां गोवर्धन पर्वत मणिमय, सधन कंदरा सार।
गोपी मण्डल विराजत, निशिदिन करत विहार।'

हरिवंश पुराण में ब्रज का स्वरूप निम्नलिखित पद द्वारा व्यक्त किया गया है–

'मधुर ब्रज देश वसि मधुर कीनों।
मधुर गोकुल गाँव मधुर श्री वल्लभ नाम,
मधुर विट्ठल-भजन दान दीनों।
मधुर श्री गिरिधरन आदि सप्त तनु वेणुनाद,
सप्त रंध्रन मधुर रूप लीनों।
मधुर फल फलित अति ललित,
प्रज्ञनाभ प्रभु मधुर अति गावत सरस रंग भीनों।'

अर्थात् व्रज देश तो मधुर है ही परन्तु वल्लभाचार्य ने इसमें निवास किया इसलिए यह और भी मधुर हो गया है। गोकुल गाँव, महाप्रभु वल्लभाचार्य का नाम यह सभी माधुर्य रस से परिपूर्ण है। गुसाँई जी ने हमें कण्ठी ब्रह्म सम्बन्ध देकर भजनान्द का दान दिया है। सात लालजी मानो वेणु के सात छिद्र हैं और उनके मुखारविन्द से उसी सुधा की वर्षा हो रही है जो भगवान भी कृष्ण द्वारा वेणुनाद के समय होती थी। इस भावना से ब्रज यात्रा करेंगें तो मधुर फल फलित होगा।

प्रथम स्कन्ध 'सुबोधिनीजी' में महाप्रभु वल्लभाचार्य ब्रज का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं–'ब्रज गावाँ स्थानानि' अर्थात् गायों का स्थान ब्रज हैं। भगवान श्रीकृष्ण जब वेणुनाद करते हैं तो ब्रज के बैल, गाय, हिरनियों आदि के झुंड़ दौड़ आते थे और समीप में खड़े हो जाते थे।

हिन्दी साहित्य में मथुरा के आस पास के क्षेत्र के लिए 'ब्रज' शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्रज शब्द का एक अर्थ यह भी है की जहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम आनन्दकन्द भगवान श्री कृष्णचन्द की प्राप्ति के लिए जन समुदाय जाता है। जहाँ की रज (ब्रज–रज) के स्पर्श मात्र से मुक्ति मिल जाती है उस स्थान को 'ब्रज' कहते हैं।[२५]

विष्णु पुराण में तो ब्रज को भगवान श्रीकृष्ण का श्री अंग माना गया है। हृदय मथुरा, नासिका– मधुवन, स्तनद्वय–ताल वन और कुमुद वन, भाल–वृन्दावन,

बाहु–बहुलावन तथा महावन, पाद–कोकिला वन तथा भाण्डीर वन एवं दोनों स्कंधों को खिदर वन तथा भद्र वन कहा गया है।

भक्तों के हृदय को भी ब्रज कहा गया है जहाँ भगवान श्री कृष्ण सदैव वास करते हैं। इन्द्रियों को गो (गाय); आत्मा को गोपाल, जीव को गोप और जीव की वृत्तियों को ही गोपवधु कहा गया है इस प्रकार सब कुछ भगवत स्वरूपात्मक है। कवि नन्ददास अपनी 'रासपंचाध्यायी' में लिखते हैं–

'देवन में श्री रमा रमन नारायण प्रभु जस।
वनन में श्री वृन्दावन सुदेश सब दिन शोभित अस।
या वन की वर वानिक यो वन ही बनि आवें।
शेष महेश सुरेश गनेश हूं पार न पावै।
जहाँ जेतिक दुम जाति कल्प तरु सम सब लायक।
चिन्तामनी सम भूमि सकल चिंतितक्ष फल दायक।'

अर्थात् दिव्य ब्रज में सदा वसन्त ऋतु रहती है। देवों में जैसे नारायण हैं उसी प्रकार वनों में श्री वृन्दावन है। शेष, महेश, गणेश, इन्द्र आदि कोई भी इसका पार नहीं पा सकते हैं अर्थात् इसके ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यहाँ के सभी वृक्ष कल्पवृक्ष के समान हैं तथा यहाँ की यह ब्रज भूमि चिन्तामणि के समान है।

कवि परमानन्द दास जी भी ब्रज वासियों के प्रति अपने भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

'ये वेई हरि के ब्रज वासी।
कछुक गये संग कछुक रहे यहां।।
सो अब करत खवासी।।'

अर्थात् 'ब्रज वह स्थान है जहाँ गौ, गोपी, ग्वालबाल जैसे निःसाधन जीवों का पोषण भगवद् अनुग्रह द्वारा होता है। भगवान श्री कृष्ण जीवों को अपना कर उन पर अपनी कृपा करते हैं।'

कवि कृष्णदास भी ब्रज की अलौकिक महिमा जान कर ब्रज में वास करने की इच्छा करते हैं

'कोटि कल्प काशी बसे, अयोध्या बसे हजार।

एक निमिष ब्रज में बसें, बड़भागी कृष्णदास।'

इसीलिए छीतस्वामी भी विधाता से विनंती करते हैं कि मुझे अगर मनुष्य जन्म मिले तो ब्रज में ही मिले 'जनम–जनम दीजे मोहि याही ब्रज वसिवो।'

'ब्रज चौरासी कोस' का उल्लेख हमें निम्न दोहे में भी मिलता है–

'इस बरहद उत सोन हद, उस सूरसैन को गांव।

ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल धाम।।'

आचार्य वल्लभाचार्य ने ब्रज को ही केन्द्र बनाकर अपने मार्ग का विस्तार किया है। वल्लभ सम्प्रदाय–पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणाली के रग–रग में हमें ब्रज की, श्री कृष्ण की लीला देखने को मिलती है। अतः यह कहा जा सकता है कि पुष्टिमार्ग सदैव 'ब्रजराज कुँवर श्रीकृष्ण' के प्रेम में ओत–प्रोत रहता है। पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की मंजिल सदा–सर्वदा ब्रज धाम ही है।

'ब्रज सम और कोऊ नहीं धाम।

या ब्रज में परमेश्वर हूं के, सुधरे सुन्दर नाम।

ब्रज सम्बन्धी नाम लेत ये, ब्रज की लीला गावे।

नागरीदासहि मुरली वारों, ब्रज का ठाकुर भावें।'

* * *

'ललित ब्रजदेश श्री गिरिराज राजें,

घोष सीमन्तनी संग गिरिवरधरण,

करतं नित्य केलि तहां काम लाजें।

त्रिविध परन संचरे, सुखद झरना झरें

अमेत सौरभ तहां मधुप गाजें।

ललित तरु फूल–फल,

फलित षट ऋतुसदा,
चतुर्भुजदास गिरिधर समाजें।'

२. **ब्रज यात्रा ::**

१. **ब्रज यात्रा का परिचय–**

विद्वानो के मतानुसार ब्रज यात्रा का आरम्भ उद्धव जी द्वारा माना गया है। श्रीमद् भागवत में भी भगवान श्री कृष्ण के सखा उद्धव जी की ब्रज यात्रा का वर्णन मिलता है। भगवान श्री कृष्ण के विरह में तड़पती हुई गोपियों को ज्ञान का उपदेश देने उद्धव जी ब्रज में आए थे। उस समय गोपियों ने उद्धव जी को उन सभी स्थलों के बारे में बताया था जहाँ उनके उपास्य और आराध्य श्री कृष्ण ने उनके साथ अनेक लीलाएँ की थी और इस प्रकार उद्धव जी को कृष्णावतार के समय में ही ब्रज परिक्रमा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमद् भागवत में तथा महाभारत ग्रन्थ में विदुर जी का भी ब्रजयात्रा करने का प्रसंग मिलता है।[२६]

कालान्तर में भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र ब्रजनाथ जी ने ब्रज के तीर्थों का पुनरुद्धार किया था तथा ब्रज देश की परिक्रमा भी की थी।[२७] इसके बाद भी भक्तों ने ब्रजयात्रा की होगी, परन्तु इसका कोई प्रामाणिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

२. **पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा का परिचय –**

कालान्तर में जब वैष्णव धर्म का पुनरुद्धार हुआ तब फिर ब्रजयात्रा का क्रम शुरु हुआ होगा। किन्तु प्रथम किसने ब्रजयात्रा की इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विक्रम संवत १५४८ में महाप्रभु वल्लभाचार्य ब्रज में पधारे। उजागर चौबे को साथ लेकर महाप्रभु जी ने लुप्त हुए ब्रज के विभिन्न स्थानों को खोज कर वहाँ बस्तियाँ बसाईं[२८] तथा उस जगह का महत्व बताया और वहां श्रीमद् भागवत का पारायण किया। वल्लभाचार्य ने ब्रज की परिक्रमा में १२ वनों को प्रधानता दी थी। आपकी ब्रज परिक्रमा ७ दिन की होती थी। इसी दौरान

वल्लभाचार्य जी ने गिरिराज पर्वत पर श्रीनाथ जी को प्रकट पाकर उनकी सेवा का क्रम भी शुरू किया, जो आज भी चल रहा है।[२९]

वल्लभाचार्य के पश्चात् उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ जी ने ब्रज की यात्रा की। उन्होंने १२ वन के साथ १२ उपवन भी जोड़ दिए। अब ब्रजयात्रा ११ दिनों में पूर्ण की जाती थी। गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने सामूहिक ब्रजयात्रा का प्रारम्भ किया था तथा जनता को सार्वजनिक रूप से ब्रजयात्रा करने की प्रेरणा दी थी। इस प्रकार आपने कृष्ण भक्ति का भी प्रचार किया। जिस ब्रजयात्रा का रोपण वल्लभाचार्य ने किया, उसको वृक्ष रूप देने का श्रेय गुसाँई विट्ठलनाथ जी को जाता है। गुसाँई विट्ठलनाथ जी के बाद भी ब्रजयात्रा की परम्परा को उनके लालजी गोस्वामी बालकों ने आगे चलाया। बीच में कुछ समय के लिए औरंगज़ेब के अत्याचारों के कारण ब्रजयात्रा बन्द–सी हो गई थी। इसे पुनः शुरू करने का श्रेय गोस्वामी पुरुषोत्तम जी महाराज (मथुरा) ख्यालवालों को जाता है। आपने ब्रज परिक्रमा को नवीन क्रम से शरू किया। अब यह ब्रज परिक्रमा ४०–४५ दिनों में सम्पन्न की जाती है।

### ३. पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा की विधि –

महाप्रभु वल्लभाचार्य के वंश के गोस्वामी बालक सामूहिक ब्रजयात्रा के नियम का पालन आज भी करते हैं। गोस्वामी महाराज श्री ब्रजयात्रा का निश्चय कुछ समय पूर्व ही कर लेते हैं तथा कुमकुम पत्रिका छपवाते हैं। इन पत्रिकाओं को देश के सभी पुष्टिमार्गीय वैष्णवों तक पहुँचाने की व्यवस्था की जाती है। परिणामस्वरूप हजारों की संख्या में वैष्णव भक्त ब्रज परिक्रमा करने हेतु ब्रज में आते हैं। गोस्वामी महाराज भी गुसाँई विट्ठलनाथ जी की परम्परा का अनुकरण करते हैं। प्रथम वे गोकुल जाकर महाप्रभु जी की बैठक पर पधार कर आज्ञा लेते हैं तथा विश्राम घाट मथुरा आकर यमुना जी में दूध पधरा कर ब्रज यात्रा के नियम लेते हैं और अपने पुरोहित चौबे जी को साथ लेकर ब्रजयात्रा शुरू करते हैं।

वल्लभ सम्प्रदायनुवर्ती गोस्वामी बालकों ने ब्रजयात्रा के द्वारा ब्रज की रज तथा नवधा भक्ति के ज्ञान को जन–जन तक पहुँचाया है।

प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी द्वादशी को ब्रजयात्रा का प्रारम्भ होता है। ब्रजयात्रा गुरु के सानिध्य में, गुरु की आज्ञा प्राप्त कर करनी चाहिए।[३०] श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि ब्रजयात्रा करने से भगवान की लीलाओं का चिन्तन होता है; श्रवण, मनन और चिन्तन से भगवान श्री कृष्ण से प्रेम हो जाता है जो कि इस कलिकाल से हमें पार करवा देता है।[३१] चौरासी कोस ब्रज की परिक्रमा करने से चौरासी लाख योनियों के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। भक्त जन भी अपने पुरोहित चौबे के साथ विश्राम घाट जाकर यमुना जी में दूध पधरा कर तथा महाप्रभु जी की बैठक में दण्ड़वत कर ब्रज परिक्रमा का आरम्भ करते हैं। ब्रजयात्रा करने वाले प्रत्येक साधक को इन नियमों का पालन करना होता है।

१. यात्रिकों को ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच–स्नानादि से निवृत होकर स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर यात्रा करनी चाहिए।
२. यात्रा आनन्दपूर्वक करनी चाहिए तथा पैदल चलकर ही करनी चाहिए। जहाँ तक बन पड़े वाहनों का उपयोग नहीं करना चाहिए।
३. पैरों में किसी भी प्रकार का जूता–चप्पल नहीं पहना जाता है। खुले पैर चलने से ब्रज रज का सीधा स्पर्श होता है। आवश्यकता पड़ने पर कपड़े का जूता पहन सकते हैं।
४. यात्रा में पड़ने वाले सभी देवालयों के दर्शन करने चाहिए। जिस स्थान विशेष पर यात्रा पहुँचे वहाँ की लीला का स्मरण करना चाहिए।
५. यात्रा में आने वाले सभी कुण्ड़, कूप, वृक्ष सब भगवत्रूप हैं, उन्हें गन्दा नहीं करना चाहिए।
६. यात्रा में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा एक समय सात्विक भोजन करना चाहिए।

७. यात्रा के दौरान अष्टाक्षर महामंत्र (श्री कृष्णः शरणं ममः) का उच्चारण मन ही मन करते रहना चाहिए।

८. गोस्वामी आचार्य की आज्ञा का भी पूर्णतः पालन करना चाहिए।

हजारों की संख्या में आने वाले यात्रियों के लिए यात्रा में दोहरी टैन्ट व्यवस्था की जाती है। इस कारण यात्रा सरलता से बिना किसी रुकावट के चलती है। हर तरह के सामान जैसे–यात्रिकों के सामान, खाने–पीने की चीजें आदि के लिए वाहनों का उपयोग किया जाता है। इस यात्रा में पुलिस रक्षा दल, पोस्ट ऑफिस, बैंक, चिकित्सालय, बाजार, रास मण्डल का चौक आदि सभी प्रकार की सुविधाएँ जुटाई जाती हैं। रोशनी के लिए जनरेटर का उपयोग किया जाता है। टेंकरों द्वारा जल की व्यवस्था की जाती है। यात्रियों के एक स्थान से दूसरे स्थान जाने लिए टांगे, जीप जैसे वाहनों की व्यवस्था की जाती है। यात्रा के दौरान रास्ते में भजन–कीर्तन की कैसेट्स के द्वारा वातावरण को संगीतमय व भक्ति से सराबोर बनाया जाता है। स्थानविशेष के महत्व के अनुसार दैनिक रास लीला का आयोजन रास–मण्डल चौक में किया जाता है। साथ ही गोस्वामी बालकों द्वारा धार्मिक प्रवचनों का आयोजन भी किया जाता है। यात्रा के दौरान स्थान विशेष पर विविध मनोरथ, छप्पनभोग, कुंजवारा जैसे कार्यक्रम भी किये जाते हैं। ब्रजयात्रा का स्वरूप चलते–फिरते शहर के जैसा लगता है जहाँ–जहाँ से ब्रजयात्रा निकलती है मानो जंगल में मंगल–सा हो जाता है। वल्लभ सम्प्रदाय–पुष्टिमार्ग के आचार्य वल्लभाचार्य और गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने ब्रज के लुप्त हुए तीर्थों को जीवन्त कर सामान्य जन समुदाय पर बड़ा उपकार किया है। ब्रजयात्रा द्वारा इन आचार्यों ने ब्रज की गरिमा की महिमा बढ़ाई है। वल्लभ सम्प्रदाय–पुष्टिमार्ग का यह योगदान निश्चित ही वन्दनीय है।[३२]

## ४. पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा के स्थान–

पहले दिन यात्री गण मथुरा के अन्तर्गत दर्शनीय स्थानों की परिक्रमा व देवालयों–बैठकों के दर्शन करते हैं। इसमें मुख्य रूप से विश्राम घाट, महाप्रभु जी

की बैठक, श्री द्वारिकाधीश का मंदिर, वल्लभ सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग के अन्य मंदिर, श्री कृष्ण जन्म भूमि, कंस किला आदि कई महत्वपूर्ण स्थानों के दर्शन करते हैं। दूसरे दिन यात्रा मथुरा से मधुवन की ओर चल देती है। मधुवन ब्रज के १२ वनों में सर्वप्रथम है। मधुवन को माहोली नाम से भी जाना जाता है। यहाँ चतुर्भुजराय जी का अति प्राचीन मंदिर है, महाप्रभु जी की बैठक है, ध्रुव टीला है जहाँ ध्रुव जी ने तपस्या की थी। यहाँ कृष्ण कुण्ड तथा लवणासुर की गुफा भी है। मधुवन भगवान श्री कृष्ण के गौचारण का स्थान है।

'मैया मेरी में नही माखन खायो। भोर भयो गैयन के पाछे मधुवन मोहि पठायो।'

मधुवन से यात्रा कुमुद वन जाती है। यहाँ कपिल मुनि का मंदिर है। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक भी है। कुमुद वन से यात्रा तालवन की ओर बढ़ती है। ताल के वृक्षों का वन–तालवन कहा जाता है। इसे आजकल तारसी गाँव भी कहते हैं। यहाँ बलदेव जी ने धेनुकासुर दैत्य का वध किया था। यहाँ बलदेव जी का मंदिर तथा बलभद्र कुण्ड है।

तालवन से यात्रा शान्तनु कुण्ड पहुँचती है। यहाँ राजा शान्तनु ने संतान की कामना हेतु सूर्य देव की उपासना की और संतान प्राप्त की। यहाँ आज भी लोग दूर–दूर से सन्तान प्राप्ति की मनौती मानने आते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य शान्तनु कुण्ड में स्नान कर बहुला वन में पधारे थे। यहाँ बहुला गाय का मंदिर है, महाप्रभु जी की बैठक है। आगे भगवान के प्रिय सखा तोष का स्थान है, यहाँ तोष कुण्ड है। तोष सखा भगवान को नृत्य सिखाया करते थे। इसके आगे जिखिन गाँव है। यहाँ रेवती जी बलभद्र जी का कुण्ड है तथा बलदेव जी का मंदिर है। आगे चल कर यात्रा अड़ींग पहुँचती है। यहाँ भगवान श्री कृष्ण ने अड़–अड़ कर गोपियों से दान मांगा था तथा गोपियों के साथ जल विहार आदि किलोल कीए थे अतः यहाँ पर किलोल बिहारी जी का मंदिर है तथा किलोल कुण्ड है। यहाँ पास ही में भगवान श्री कृष्ण ने अरिष्टासुर दैत्य का वध किया था। आगे बढ़ने पर मुखराई गाँव आता है। यहाँ मुखरा देवी का मंदिर है और मुखराई कुण्ड है। यहाँ ग्वाल

पोखरा, रत्न सिंहासन आदि है। आगे राधा कुण्ड पर यात्रा पहुँचती है। यहाँ स्वामिनी जी का महल है, पास में महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ आगे आठों दिशाओं में आठ सखियों के कुण्ड है–चन्द्रभागा कुण्ड, चम्पकलता कुण्ड, सुदेवीजी कुण्ड, विशाखा कुण्ड, वृन्दाजी कुण्ड, ललिता कुण्ड, रंगदेवी कुण्ड तथा चित्रा कुण्ड। राधाकुण्ड के पास कृष्ण कुण्ड भी है। राधा कुण्ड को स्वामिनी जी ने अपने नख से खोदा था तथा कृष्ण कुण्ड को भगवान ने अपनी वेणु से खोदा था इस कारण इन दोनों कुण्डों में सदैव जल भरा रहता है। इनके अन्दर स्वामिनी जी का रत्नज़ड़ित महल है जहाँ ठाकुर जी और स्वामिनी जी सदैव रमण करते हैं। आगे जाने पर रास्ते में एक अति रमणीय स्थान आता है जिसे कुसुम सरोवर कहते हैं। यहाँ कुसुमा सखी की निकुंज है। यहाँ पर भगवान श्री कृष्ण ने राधा जी की वेणी गुँथी थी। कुसुम सरोवर के पास उद्धव कुण्ड है, और नारद कुण्ड है।

आगे कलोल कुण्ड होते हुए यात्रा गोवर्धन पहुँचती है। यहाँ पर मानसी गंगा है, महाप्रभुजी की बैठक है। पास में ब्रह्म कुण्ड है जहाँ ब्रह्मा जी को ज्ञान हुआ कि उन्होंने बछड़े चुराने का कार्य उचित नहीं किया। आगे दान घाटी है यहाँ श्री कृष्ण भगवान ने गोपियों से दान मांग कर छाक आरोगी थी। आगे पापमोचन कुण्ड है। थोड़ा और आगे ऋण मोचन कुण्ड है यहाँ श्री कृष्ण ने गोपिकाओं से कहा कि 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।' आगे जाने पर यात्रा जमुनावतो गाँव पहुँचती है यह कुम्भन्दास जी और चतुर्भुचदास जी का गाँव है।

आगे जाने पर यात्रा परासौली, चन्द सरोवर पहुँचती है। यहाँ का सरोवर चन्द्रमा के समान गोल आकार का है। इसीलिए इसे चन्द्र सरोवर कहते हैं। यहाँ रास चोतरा है जहाँ भगवान श्री कृष्ण ने रास–क्रीडा की थी। यहाँ महाप्रभु जी तथा गुसाँई जी की बैठकें है। परासौली से ३ कि.मी. दूर पैठा गाँव है, यहाँ पर नारायण सरोवर है, क्षीर सागर तथा बलभद्र कुण्ड भी हैं, साथ में लक्ष्मी कूप, साक्षी गोपाल, सहस्त्र कुण्ड आदि कई दर्शनीय स्थान हैं।

चन्द सरोवर से यात्री आन्यौर पहुँचते हैं। यहाँ सदू पाण्डे के घर में महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ पास में गौरी कुण्ड है, गोविन्द कुण्ड है, सुरभि कुण्ड है। गोविन्द कुण्ड पर भगवान श्री कृष्ण ने इन्द्र का मान भंग किया था। यहाँ महाप्रभु जी की गुप्त बैठक है साथ ही गुसाँई जी की भी बैठक है। गोविन्द कुण्ड से आगे अप्सरा कुण्ड आता है। यहाँ पर नवल कुण्ड है। यहाँ पर गोपांगनाओं को नृत्य और गान की कला का ज्ञान प्राप्त हुआ था। अप्सरा कुण्ड से आगे पूंछरी गाँव है। यहाँ श्री नाथ जी की गायों की खिरक (गौशाला) थी। यहीं पर गोपाल सागर कुण्ड भी है। पूछरी से आगे श्याम ढाक नामक स्थान है यहाँ भगवान श्री कृष्ण गायें चराते थे व खेलते थे यहाँ पर छाक लीला होती थी।

आगे चल कर यात्रा जतीपुरा पहुँचती है। यह पुष्टिमार्ग का प्रमुख केन्द्र है। यहीं पर गिरिराज गोवर्धन में श्रीनाथ जी का मुखारविन्द है। सामने महाप्रभु जी की बैठक है। यह स्थान पुष्टिमार्ग में बड़ा पूजनीय व वन्दनीय माना जाता है। आगे हरजी कुण्ड है, गोविन्द स्वामी की कदम खण्डी है, बिलछू कुण्ड है। गुलाल कुण्ड है, जान-अजान वृक्ष है, रुद्र कुण्ड है, टोड को धनों है यहाँ श्रीनाथ जी को छुपाया गया था। सभी यात्रीगण एक दिन पूरे गिरिराज पर्वत की परिक्रमा करते हैं। यहीं पर मुखारविन्द के पास कुन्जवारा होता है।

जतीपूरा में सात दिन रुक कर यात्रा आगे ड़ीग की ओर बढ़ती है। यहाँ भवन स्थापत्य के सुन्दर नमूने देखने को मिलते हैं। ड़ीग से आगे यात्रा परमदरा गाँव पहुँचती है। यह गाँव श्रीदामा का है। इससे आगे यात्रा आदि बद्रीनाथ पहुँचती है यहाँ पर आदि बद्री नारायण के दर्शन होते हैं। यहाँ तप्त कुण्ड हैं, अलक गंगा भी है। आगे आनन्द्राद्रि घाटी है, पास ही में इन्दरौली गाँव है जो इन्द्रलेखा सखी का गाँव है। यहाँ इन्द्र कूप तथा इन्द्र कुण्ड हैं।

आगे यात्रा कामवन में पहुँचती है। यह भी पुष्टिमार्ग का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ चौरासी तीर्थ प्रसिद्ध हैं। कामवन यशोदा जी का मायका (पीहर) है। यहाँ मधुसूदन कुण्ड, यशोदा कुण्ड, मोहिनी कुण्ड, चक्रतीर्थ, सेतुबन्धरामेश्वर (लंका कुण्ड),

लुक–लुक कुण्ड, श्याम कुण्ड आदि प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ से आगे चरण पहाड़ी है, यहाँ राधा जी के तथा भगवान के चरण चिन्ह के दर्शन होते हैं साथ ही छटकी पंसेरी, रत्नाकर सागर, ललिता जी की बावड़ि, नन्द कूप, नन्द बैठक, देवी कुण्ड, मोती कुण्ड, गया कुण्ड, गरुड़ कुण्ड, गदाधर भगवान के दर्शन, प्रयाग कुण्ड, काशी कुण्ड, गोमती कुण्ड, गोपीनाथ जी का मंदिर, चौरासी खम्भा, राधावल्लभ जी का मंदिर, सूर्य कुण्ड, राधा कुण्ड, शीतला कुण्ड, श्री कुण्ड, व्योमासुर की गुफा आदि दर्शनीय स्थानों से होती हुई यात्रा 'भोजन थाली' नामक स्थान पर पहुँचती हैं। यहाँ चट्टानों–शिलाओं पर स्वतःसिद्ध थालियाँ बनी हुई हैं। यहीं आगे कृष्ण कुण्ड, चरण कुण्ड, राम कुण्ड, राम मंदिर, अघासुर की गुफा, कामेश्वर महादेव का मंदिर, वराह कुण्ड, पांडवों का मंदिर, धर्म कुण्ड, धर्म कूप, पंचतीर्थ, मनोकामना कुण्ड, इन्द्र मंदिर, सुनहरी कदम्बखण्डी, रास मण्डल का चबूतरा आदि के दर्शन कर यात्री वापस अपने पड़ाव पर पहुँचते हैं। कामवन में यात्रा तीन–चार दिन रुकती है। कामवन में पुष्टिमार्ग के दो सेव्य स्वरूप बिराजमान हैं–पंचम गृह श्री गोकुलचन्द्रमा जी और सप्तम गृह–श्री मदनमोहन लाल जी।

कामवन से यात्रा बरसाना पहुँचती है। यहाँ राधा–स्वामिनी जी का लाडली जी का मंदिर है। दानगढ़, मानगढ़, विलासगढ़ यहाँ के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ वृषभानु सरोवर है तथा पीरी पोखर है। रावडी कुण्ड, पावडी कुण्ड, मोर कुण्ड, तिलक कुण्ड, जल विहार कुण्ड, दोहनि कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, आदि अनेक स्थान हैं। साथ ही गैदोखर, चित्र–विचित्र शिला, मणिक शिला, ललिता कुण्ड, विशाखा कुण्ड, मोहिनी कुण्ड, नौवारी व रत्नकुण्ड आदि स्थान भी देखने योग्य हैं। बरसाना की होली अपनी अप्रतिम विशिष्टता रखती है। इस दिन यहाँ मेला भी लगता है। बरसाना गाँव के पीछे चिकसौली गाँव के समीप सांकरी पोल है। यहाँ भादों सुदी एकादशी को दान लीला होती है। बरसाना के पास गहरव वन है। यहाँ से कुछ आगे प्रेम सरोवर नामक सुन्दर स्थान है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है। यहाँ पर रास चोतरा तथा प्रेम बिहारी जी का मंदिर है। यही संकेत वन है, यहाँ

भगवान श्री कृष्ण ने राधा जी के साथ विवाह खेल किया था। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। बरसाना में यात्रा दो दिन रुकती है।

बरसाना से नंदगाँव जाते बीच में रीठौरा गाँव आता है जो चन्द्रावली जी का गाँव है। यहीं श्री कृष्ण भगवान ने पनघट लीला की थी। यहाँ गुसाँई जी की और चन्द्रावली जी की बैठकें है। बेल कुण्ड, पनिहारीकुण्ड, रोहिणी कुण्ड, चाँदोखर नामक दर्शनीय स्थान है।

नन्दगाँव भगवान श्री कृष्ण तथा नन्दबाबा का घर है। यहाँ चरण पहाड़ी है। यहाँ नन्दराय जी का मंदिर है, रत्न सिंहासन, मोती कुण्ड, फूलवारी कुण्ड, टेर कदम्ब, नन्देश्वर महादेव है, देवकी नन्दन जी का मंदिर है। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। उद्धव जी छ मास तक यहाँ ब्रज में रहे थे तो यहाँ उद्धव क्यारी है। साथ ही यहाँ और कई कुण्ड तथा चिह्नस्त शिलाएँ हैं। नन्दगाँव में यात्रा दो दिन रुकती है।

नन्दगाँव से आगे करहला नामक स्थान आता है जो ललिता जी का जन्म स्थान है। यहाँ महाप्रभु जी तथा गुसाँई जी की बैठकें हैं। यहाँ के रासधारी प्रसिद्ध हैं। करहला से आगे पियासौं गाँव आता है। यहाँ से आगे यात्री खिरकवन पहुँचते हैं, जहाँ गायों के खिरक (गौशालाएँ) हैं। यहाँ व्यास कुण्ड है, विशाखा जी की निकुंज, कृष्ण कुण्ड आदि स्थान से होती हुई यात्रा कोकिला वन पहुँचती है। यहाँ यात्रा एक दिन रुकती है। यहाँ कृष्ण कुण्ड है, महाप्रभु जी की बैठक है, पाण्डव गंगा है, बलभद्र कुण्ड है, श्याम कुण्ड है, चरण गंगा है जो श्री कृष्ण के श्री चरणों से प्रकट हुई है। आगे यात्रा कामर गाँव होती हुई कोट वन पहुँचती है। कोटवन उपवन है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है, ग्वाल पोखर कुण्ड है, दधि कुण्ड, गोमती कुण्ड, ब्रजभूषण कुण्ड, जोहरा कुण्ड आदि है। आगे चमेली वन पड़ता है। इससे आगे गोपी वन है। आगे चीर घाट है यहाँ टेर कदम्ब, चीर कदम्ब और ऐंठा कदम्ब प्रमुख हैं। आगे जाने पर कात्यायनी देवी का मंदिर है यहाँ कुमारिकाओं ने एक मास तक व्रत कर श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त किया था। चमेली वन से आगे

यात्रा शेषसायी पहुँचती है। यहाँ शेषसायी का मंदिर है तथा क्षीर सागर है। आगे नन्दन और चन्दन वन हैं। आगे यात्रा कोसी पहुँचती है। कोसी गाँव में भगवान श्री कृष्ण ने द्वारिका लीला के दर्शन कराए थे। यहाँ रत्न सागर है। यहाँ लक्ष्मीनारायण जी का मंदिर है, गोमती कुण्ड है। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ से आगे यात्रा शेरगढ़ की ओर बढ़ती है बीच में अक्षयवट, उजानी गाँव पड़ता है। इससे आगे लालवन और खेलनवन आता है। शेरगढ़ में दाउजी रेवती जी का मंदिर है। धर्मराय जी और गोपीनाथ जी के मंदिर हैं। आगे राधारमण जी और मदन मोहन जी, राधा कृष्ण जी और साक्षी गोपाल जी के भी मंदिर हैं। आगे भूषण वन, गुंजा वन और निवारन वन हैं। आगे यात्रा चीरघाट की ओर जाती है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है। आगे नंदघाट है। यहाँ आगे चतुर्मुखी ब्रह्माजी का मंदिर है, ब्रह्म कुण्ड है। यहाँ से भयगाँव होते हुए यात्रा बच्छवन की ओर बढ़ती है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है। यहाँ से आगे यमुना नदी पार कर भांडीरवन, श्यामवन, भाटवन और बेलवन जाया जाता है। भांडीरवन में बलदेव जी ने प्रलम्बासुर नामक राक्षस को मारा था। यहाँ भांडीर कूप है, आगे श्याम वन है, श्याम कुण्ड है, श्यामबिहारी ठाकुर जी का मंदिर है। आगे माटवन है, माटगाँव, यहाँ माट (मटका) बनते थे आज भी यहाँ माट बनाए जाते हैं। आगे बेलवन है यहाँ गुसाँई जी की बैठक है लक्ष्मी जी का मंदिर है।

यहाँ से आगे ब्रजयात्रा वृन्दावन जाती हैं। यहाँ महाप्रभु जी की और गुसाँई जी की बैठकें है। यहाँ गोपेश्वर महादेव जी का मंदिर है, ब्रह्म कुण्ड है आगे अक्रूर घाट है। आगे राजपुर, राजघाट, दावानल कुण्ड हैं। गोपाल घाट, पुष्नन्दन घाट, सूर्य घाट, जगन्नाथ घाट, भीम घाट, आनन्द घाट, शृंगार घाट, गोविन्द घाट आदि हैं, रास चबूतरा है। आगे चीर घाट, भंवर घाट पर भगवान ने भमरा–चकरी का खेल खेला था। आगे धीर–समीर घाट पर बंसीवट है. रास–चबूतरा है। यहाँ स्वामिनी जी की निकुंज है। वृन्दावन शहर में गोपीनाथ जी, लक्ष्मीनारायण जी, गोविंदराय जी, बाँके बिहारी जी, मदनमोहन जी आदि कई प्रमुख मंदिर हैं। यहाँ

श्यामतमाल वृक्ष में शालिग्राम जी के दर्शन होते हैं। वृन्दावन भगवान श्रीकृष्ण का प्रमुख लीला स्थान रहा है। यहाँ राधारमण जी का मंदिर है, सेवा कुन्ज है, जहाँ नित्य रात्रि को रास लीला होती है ऐसी स्थानीय लोगों की धारणा है। आगे यात्रा मान सरोवर जाती है यह स्वामिनी जी के मान करने का स्थान है यहाँ मान कुण्ड, कृष्ण कुण्ड है यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। वृन्दावन में यात्रा तीन दिन रूकती है।

आगे यात्रा लोहवन की ओर जाती है। यह बलदेव जी का स्थान है यहाँ ब्रलभद्र कुण्ड है। यहाँ बलदेव जी–रेवती जी का मंदिर है। आगे यात्रा चिंताहरण घाट तथा ब्रह्माण्ड घाट पहुँचती है। यहाँ भगवान श्री कृष्ण ने माटी खाई थी और माता यशोदा जी को अपने मुँह में सारे ब्रह्माण्ड के दर्शन करवाए थे। थोड़ा आगे अष्ट सखाओं का चोतरा है। आगे महावन है, यहाँ छठी के दर्शन होते हैं। पास में ८४ खम्भ हैं। यहाँ से आगे यात्रा गोकुल पहुँचती है। यह पुष्टिमार्ग का प्रमुख केन्द्र है। यह योगमाया की जन्म भूमि है। यहाँ खेलन वन और रमण रेती है। आगे गोप कुआँ है। इसे भगवान श्री कृष्ण ने अपनी बन्सी से खोदा था। आगे नारद टीला है। आगे गांधेश्वर गाँव है, वहाँ गोप तलैया है। आगे वल्लभ घाट है, गोपाल घाट है, यशोदा घाट, ठकुरानी घाट, नन्दघाट आदि कई घाट हैं। गोकुल गाँव यमुना नदी के किनारे बसा हुआ है इस कारण यहाँ कई घाट हैं। ठकुरानी घाट इनमें प्रमुख है। यहाँ पर महाप्रभु जी ने अर्ध रात्रि को श्रीनाथ जी के दर्शन किए थे और जीवों को ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा श्री नाथ जी के चरणों में लाने का कार्य आरम्भ किया था। यहाँ पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के कई मंदिर हैं। यहाँ महाप्रभु जी की और गुसाँई जी की बैठकें है। आगे महावन है जहाँ भगवान श्री कृष्ण ने पूतना राक्षसी का वध किया था। आगे यात्रा रावल गाँव होती हुई मथुरा के ब्राह्य स्थलों की परिक्रमा करती हुई पुनः मथुरा विश्राम घाट पहुँचती हैं। रावल गाँव में राधा जी का मंदिर है तथा राधा घाट है। विश्राम घाट मथुरा पहुँच कर यात्री गण अपने चौबे के साथ नियम छोड़ते हैं तथा चौबे जी को यथा शक्ति दान दक्षिणा देते हैं।

श्रीमद् भागवत् में कहा गया है कि ब्रज यात्रा करने से भगवान की लीलाओं का चिन्तन होता है। श्रवण, मनन और चिन्तन से भगवान श्री कृष्ण से प्रेम हो जाता है जो इस घोर कलिकाल के भव सागर से हमें पार ले जाता है। भक्तों में श्रद्धा है कि ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा चौरासी लाख योनियों के आवागमन से हमें मुक्ति प्रदान करती है–

'श्रीमुख वाणी कहत, विलम्ब अब नेक न लावहु।
ब्रज परिक्रमा करहु, देह को पाप नसावहु।'

**नोट :** ब्रज यात्रा का विस्तृत वर्णन हमें महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गुसाँई विठ्ठलनाथ जी के बैठक चरित्र ग्रन्थ में मिलता है। इसमें ब्रज के महत्वपूर्ण स्थानों का विस्तृत **विवरण** मिलता है।

## १०. पुष्टिमार्ग में राधा जी का महत्व :-

### १. राधा का परिचय व महत्व ::

'राधा' शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं भक्ति, समृद्धि, साकल्य और ध्रुति (प्रकाश)। राधा शब्द का एक ओर अर्थ है कार्य साधिका।

भगवान श्री कृष्ण के साथ राधा का नाम अनन्तकाल से लिया जाता है। लौकिक–सांसारिक रूप में राधा को ब्रज की भोली–भाली कन्या के रूप में बताया गया है, जो बरसाना के गोप वृषभान की पुत्री हैं। राधा श्री कृष्ण की बाल सहचरी हैं, श्री कृष्ण के साथ खेलती हैं। राधा का अद्वितीय सौन्दर्य और शील स्वभाव श्री कृष्ण को आकर्षित करता है। कुछ समय पश्चात् श्री कृष्ण ब्रज देश छोड़ कर चले जाते हैं और राजनैतिक व सामाजिक कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं, किन्तु वे अपनी बाल सहचरी राधा को नहीं भूल पाते हैं।

अलौकिक–आध्यात्मिक रूप में श्री राधा को श्री कृष्ण भगवान की पूर्ण सिद्ध शक्ति के रूप में माना गया हैं।[३३]

श्री राधा भगवान श्री कृष्ण के साथ नित्य उनके गोलोक धाम में निवास करती हैं। जब भगवान श्री कृष्ण को रमण (लीला) करने की इच्छा होती है तो वे अपनी इस पूर्ण सिद्ध शक्ति श्री राधा के साथ भू–लोक (पृथ्वी) के ब्रज मण्डल में अवतरित होते हैं। साथ ही उनका समस्त लीलाधाम अर्थात् गो, गोप–ग्वाल, गोपियाँ, यमुना, गोवर्धन आदि भी अवतरित होते हैं।

## २. पुष्टिमार्ग में राधा का स्थान ::

वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग में गुरू के रूप में ब्रज की गोपियों का स्वीकार किया है[३४] जिनकी मुख्या राधा जी हैं। पुष्टिमार्ग गोपिकाओं की सेवा रीति–प्रीति का मार्ग है।[३५] पुष्टिमार्ग में सभी ब्रजांगनाओं के चार यूथ माने गए हैं

पहला यूथ–नित्य सिद्धाओं का हैं जिनकी यूथपति स्वयं स्वामिनी श्री राधा जी हैं।

दूसरा यूथ–श्रुति रूपा (अन्यपूर्वा) गोपिकाओं का हैं जिनकी यूथपति चन्द्रावली जी हैं।

तीसरा यूथ–ऋषि रूपा (अनन्यपूर्वा) गोपिकाओं का है। इनकी यूथपति राधासहचरी हैं।

चतुर्थ यूथ–प्रकीर्ण गोपिकाओं का है। इनकी यूथपति श्री यमुना जी हैं।

इन चारों यूथों में राधा जी और यमुना जी स्वामिनी स्वरूप हैं। इन सभी ब्रजांगनाओं पर भगवान श्री कृष्ण की अपार कृपा रहती है। इन ब्रजांगनाओं को श्री कृष्ण के नित्य सहचर्य का जो सुख मिला है और वियोग का जो ताप इन ब्रजांगनाओं ने अनुभव किया है, वही सुख और ताप का अनुभव पुष्टिमार्गीय वैष्णव चाहते हैं। पुष्टिमार्ग में भी स्वामिनी श्री राधा को श्री कृष्ण की अभिन्न मुख्य शक्ति माना गया है। जिनका सहज निवास श्री कृष्ण के समान (श्री कृष्ण के साथ) सर्वत्र रहता है।

पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' में एक स्थान पर 'राधा विशय सम्भोग प्राप्त दोष निवारकः' कह कर श्री कृष्ण का स्मरण किया है। 'परिवृढाष्टकम्' नामक रचना में 'कलिंदोद् भूतायास्तटमनुचरन्ती पशुपजाँ ' आदि श्लोकों द्वारा राधा जी का साक्षात् दर्शन कराया है। आचार्य जी ने अपने ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण प्रेमामृत' में 'राधावरन्धनरत', 'राधा सर्वस्व सम्पुट','राधिका रति लम्पट' आदि विशेषणों द्वारा (राधा के नाम के द्वारा) श्री कृष्ण का उल्लेख किया है। 'त्रिविध नामावली' नामक रचना में प्रमोदलीला नामों में आचार्य जी ने 'राधा सहचराय नमः' कहकर भगवान श्री कृष्ण को सम्बोधित किया है।

गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने भी अपनी रचनाओं में राधा को भगवान श्री कृष्ण की अनन्य सहचरी माना है–'भुजंगप्रयाताष्टक' नामक स्तोत्र में गुसाँई जी ने 'राधिका–राधिका साधकार्थ प्रसाद प्रभो कृष्ण देव!' द्वारा भक्ति प्राप्ति की कामना की है तो दूसरी और 'राधा प्रार्थना चतुः श्लोकी'[३६] में गुसाँई जी स्वामिनी श्री राधा की कृपा द्वारा भगवद् भक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। इसके अलावा स्वामिनी प्रार्थना, दान लीलाष्टक, रस सर्वस्व, शृंगार रस, स्वप्न दर्शन आदि लघु ग्रन्थों में तथा शृंगार रास मण्डन आदि वृहद् ग्रन्थों द्वारा स्वामिनी श्री राधा का स्वरूप निरूपण किया है।

इस प्रकार स्वामिनी श्री राधा जी का परोक्ष व प्रत्यक्ष दोनों स्वरूप हमें पुष्टिमार्ग में गम्भीर रूप से देखने को मिलते हैं।

'भावनीया नित्यमेवं भूता मत्स्वामिनी हरेः।
तदेक हृदय–स्थायी तद्भावः कृष्ण एवहि।। १०।।
लीला सहस्त्रवलितः सामग्री सहितस्तथा।
भावनीयः सदानन्दः सदा नन्दादिलालितः।। ११।।'[३७]

## ११. पुष्टिमार्ग में श्री यमुना जी का महत्व :–

पुष्टिमार्ग में आराध्य श्री कृष्ण (श्री नाथ जी) के साथ स्वामिनी रूप में श्री यमुना महाराणी का नित्य निवास है।

यमुना जी के दो स्वरूप हैं : आधिदैविक रूपः चतुर्थ यूथ की स्वामिनी

आधि भौतिक रूपः जलप्रवाह रूप (नदी)

गोलोक धाम में यमुना जी का नाम विरजा सखी है। यमुना जी का प्राकट्य श्री ठाकुर जी (भगवान श्री कृष्ण) एवम् श्री स्वामिनी जी (श्री राधा) के श्री अंग से हुआ है–

'श्री राधा माधव अंग में प्रगट भई इक वाम।

नख ते कटि तौ राधिका कटि ते शिख लौं श्याम।'

यमुना जी के पिता सूर्यनारायण हैं, माता संज्ञादेवी हैं तथा यमराज बड़े भाई हैं। भक्तों में मान्यता है कि जो भक्त यमुना नदी में स्नान करते हैं तथा यमद्वितीया को जो भाई–बहिन यमुना नदी में स्नान करते है, वे मंगलमय जीवन तथा प्रभु की कृपा प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं। पुष्टिमार्ग में यमुना जी का जन्म चैत्र शुक्ल षष्ठी (छठी) को मनाया जाता है। इस दिन मथुरा के विश्राम घाट पर भव्य समारोह होता है। पहले शास्त्रानुसार विधिवत् रूप से यमुना जी की पूजा–अर्चना की जाती है, फिर आरती की जाती है तथा अनेक मनोरथ भी किए जाते हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जब पहली बार गोकुल पधारे तब वहाँ केवल घना वन था तथा आप यमुना नदी के तट पर आए। किन्तु वल्लभाचार्य यह निश्चित नहीं कर पाए की कौन–सा ठकुरानी घाट है और कौन–सा गोविन्द घाट है। तभी यमुना नदी के जलप्रवाह के मध्य से एक सुन्दर स्त्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के पास आकर कहती है कि आप जिस छोंकर के वृक्ष के नीचे खड़े हैं, यही गोविन्द घाट है तथा आपके दक्षिण ओर ठकुरानी घाट है। उस नव यौवना स्त्री को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पहचान लिया कि यही यमुना महाराणी हैं। तभी महाप्रभु जी ने श्री यमुना जी को दण्डवत् (प्रणाम) कर उनकी स्तुति की, जिसे पुष्टिमार्ग में 'श्री

यमुनाष्टक' कहते हैं। यमुनाष्टक में महाप्रभु जी ने श्री यमुना महाराणी के स्वरूप और महात्म्य का दिग्दर्शन किया है–

**श्री यमुनाष्टक**

१. **नमामि यमुनामहं सकलसिद्धि हेतुं मुदा।**
**मुरारि पद्पंकज स्फुरदमन्द रेणूत्कटाम्।**
**तटस्थ नवकानन प्रकटमोद पुष्पाम्बुना।**
**सुरासुरसुपूजित स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम्।। १ ।।**

(समस्त अलौकिक सिद्धियों को देने वाली, मुरादैत्य के शत्रु भगवान श्री कृष्णचन्द्र कें चरण कमल की तेजस्वी और अधिक अर्थात् जल में विशेष रेणु को धारण करने वाली, अपने तट पर स्थित नवीन वन के विकसित सुगन्धित पुष्प मिश्रित जल द्वारा सुर अर्थात् दैव्यभाव वाले ब्रज भक्तों के द्वारा और असुर अर्थात् मानभाव वाले ब्रजभक्तों के द्वारा अच्छी प्रकार से पूजित, तथा श्री कृष्णचन्द्र की शोभा को धारण करने वाली, श्री यमुना महाराणी जी को मैं (वल्लभाचार्य) सहर्ष नमस्कार करता हूँ।)

२. **कलिन्द गिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला।**
**विलास गमनोल्लसत्–प्रकटगण्डशैलोन्नता।**
**सुधोष गति दन्तुरा समधि रुढदोलोत्तमा।**
**मुकुन्दरतिवर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता।। २ ।।**

(सूर्य मण्डल में स्थित प्रभु के हृदय से रस रूप में प्रकट होकर फिर कलिन्द पर्वत के शिखर पर गिरते हुए अनन्त प्रवाहों से उज्जवल, विलास सहित चलने से सुन्दर और उत्तम शिलाओं से उन्नत तथा ध्वनि सहित गमन से ऊँची–नीची होती अर्थात् उत्तम झूले में विराजित हुई–सी दिखर्ती एवं श्री कृष्णचन्द्र में प्रीति बढ़ाने वाली सूर्यपुत्री श्री यमुना महाराणी जी श्रेष्ठता से विराजमान हैं, श्री यमुना महाराणी जी की जय हो।)

३. **भुवं भुवनपावनी मधिगतामनेकस्वनैः।**

**प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः।**

**तरंग भुज कंकण प्रकटमुक्तिकावालुका।**

**नितम्बतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्॥ ३॥**

(सम्पूर्ण लोगों को पवित्र करने वाली, भूमण्डल में पधारने पर जैसे प्रिय सखियों द्वारा सेवित होती हो वैसे ही अनेक शब्द बोलते हुए तोता, मोर और हंसादि से मधुर शब्द बोलनेवाले पक्षियों के द्वारा सुसेवित हुई और तरंग रूपी भुजाओं के कंकणों में स्पष्ट दिखनेवाली, मोतियों के समान चमकनेवाली वालुकायुक्त एवं नितम्ब भाग रूप उभय तटों से सुन्दर लगने वाली श्री कृष्ण की चतुर्थ प्रिया श्री यमुना जी को तुम नमन करो।)

४. **अनन्तगुण भूषिते शिव विरंचिदेवस्तुते।**

**धनाधन निभे सदा ध्रुव पराशराभीष्ट दे।**

**विशुद्ध मथुरातटे सकलगोपगोपी वृत्ते।**

**कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय॥ ४॥**

(अनन्तगुणों से सुशोभित, शिव ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तवित, निरन्तर गम्भीर मेघ के समूह के समान देदीप्यवती, ध्रुव और पराशर को मनोवान्छित फल दान करनेवाली, अत्यन्त शुद्ध मथुरा नगरी जिसके तट पर बसी हुई है तथा सम्पूर्ण गोप–गोपीजनों से आवृत कृपासागर श्री ब्रजाधीश्वर के आश्रय में रहने वाली हे श्री यमुना जी! हमारे मंन को सुख अर्थात् आनन्दानुभव प्राप्त कराइये।)

५. **यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियंभावुका।**

**समागमनतोऽभवत् सकलसिद्धिदा सेवताम्।**

**तया सदृशतामियात् कमलजासपत्नी व यत्।**

**हरि प्रिय कलिन्दया मनसिमे सदा स्थायताम्॥ ५॥**

(जिन यमुना जी के संगम से भगवद्च्चरण से प्रकट हुई श्री गंगाजी भी भगवान् को प्रिय हुई, उन श्री यमुना जी की समानता भला कौन प्राप्त कर सकता है ? हाँ! यदि कुछ समानता कर सकती हैं तो वह कुछ न्यूनता के साथ श्री लक्ष्मी जी ही !

ऐसी सर्वोपरि तथा भगवद् भक्तों के क्लेश नाश करने वाली श्री यमुना जी मेरे मन में निरन्तर वास करें।)

६. **नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं।**
**न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः।**
**यमोऽपि भगिनी सुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि।**
**प्रियोभवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥ ६ ॥**

(हे श्री यमुना जी ! आपको निरन्तर नमस्कार हो। आपका चरित्र अत्यन्त विलक्षण है। आपके जल का पान करने से किसी भी समय यम की यातना (नरकवास) नहीं होती। क्योंकि यमराज भी अपनी बहिन के दुष्ट पुत्रों को कैसे मार सकते हैं ? आपका सेवन करने से जैसे गोपीजन भगवान् ब्रजेश्वर श्री कृष्ण को प्रिय बने, उसी प्रकार जीव भी आपके सेवन से भगवद् प्रिय बनता है।)

७. **ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्व मेतावता।**
**न दुर्लभतमा रतिः मुररिपौ मुकुन्दप्रिये।**
**अतोस्तु तव लालना सुरधुनी परंसंगमात्।**
**तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टि स्थितैः ॥ ७ ॥**

(मुक्ति देनेवाले श्री कृष्ण की प्रिया हे यमुना जी, आपके सान्निध्य में हमारा नवीन शरीर हो, केवल इतने से अर्थात् शरीर परिवर्तन से ही मुरारि श्री कृष्ण में अत्यन्त प्रीति होती है। इसलिए आजीवन आपकी स्तुति करना ही श्रेयस्कर है। श्री गंगा जी ने भी आपके ही सतसंग से पृथ्वी पर प्रशंसा प्राप्त की है, परन्तु आपके संगम बिना पुष्टिस्थ जीवों ने अकेली गंगा जी की भी स्तुति नहीं की।)

८. **स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि प्रिये।**
**हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः।**
**इयं तव कथाधिका सकल गोपिका संगमः।**
**स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः ॥ ८ ॥**

(हे हरिप्रिये यमुने ! आप लक्ष्मी जी के समान सौभाग्यवती हैं, आपकी स्तुति कौन कर सकता है ? क्योंकि श्री हरि के पश्चात् जिसकी (लक्ष्मी) सेवा से मुक्ति पर्यन्त समस्त सुख प्राप्त हो जाते है, पर आपकी गाथा उससे भी श्रेष्ठ है, जिसमें श्री कृष्ण के साथ समस्त गोपियों के संगम के द्वारा उनके समस्त अंगों से उत्पन्न श्रम के स्वेदजल (जलबिन्दु) बिन्दुओं का भी परम रसमय संगम हो जाता है।)

९. **तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा।**
**समस्त दुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः।**
**तया सकल सिद्धियो मुररिपुश्च सन्तुष्यति।**
**स्वभावविजयो भवेद् वदति वल्लभः श्री हरेः ।। ९ ।।**

(हे सूर्य पुत्री यमुने ! जो आपके इस अष्टक का आनन्दमय चित्त से पाठ करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, निश्चित ही उसकी मुकुन्द भगवान् में प्रीति होती है जिसके कारण उसे सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और मुरारी भगवान श्री कृष्ण सन्तुष्ट होते हैं, स्वभाव पर विजय प्राप्त होती है। इस प्रकार श्री हरि के परम प्रिय श्रीमद् वल्लभाचार्य कहते हैं।)

पुष्टिमार्गीय जीव सदैव ब्रजलीला को प्राप्त करना चाहते हैं और ब्रजलीला की अधिष्ठात्री श्री यमुना महाराणी है, जिनके स्मरण, जलपानादी से भक्तों के सभी मनोरथ (इच्छा) पूर्ण होते हैं। श्री यमुना की कृपा से ब्रजवास मिलता है तथा भगवान श्री कृष्ण की ब्रजलीला का आनन्द प्राप्त होता है। अष्टछाप के कवियों ने, गोस्वामी हरिराय जी और भक्त गंगाबाई ने मिल कर यमुना जी के ४१ पदों की रचना की है जिनमें यमुना महाराणी का स्वरूप, महात्म्य आदि का वर्णन है। इसके अलावा गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने भी यमुना जी पर कई रचनाएँ की हैं–यमुनाष्टपदी, यमुनाविज्ञप्ति आदि। अन्य पुष्टिमार्ग भक्तों ने भी यमुना जी पर अपनी रचनाएँ की हैं।

'जमुना जल को नमन करि,
जमुना जल कौं पान।
जमुना जल पुनि ध्यान धरि,

जमुना जल उस गान ॥'

## १२. पुष्टिमार्ग में गिरिराज गोवर्धन का स्वरूप :-

पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव 'गिरिराजधरण गोवर्धननाथ श्री नाथ जी' हैं। श्रीनाथ जी का प्राकट्य मथुरा के समीप गिरिराज गोवर्धन पर्वत में स्वतः हुआ है। इस कारण गिरिराज गोवर्धन पर्वत पुष्टिमार्ग में भगवद् रूप के समान पूजनीय व वन्दनीय माना जाता है। सर्वप्रथम वि. सं. १४६६ के श्रावण कृष्ण तीन रविवार के दिन श्री नाथ ज़ी की ऊर्ध्व भुजा का प्राकट्य हुआ था सम्पूर्ण स्वरूप का प्राकट्य लगभग ६९ वर्ष पश्चात् वि.सं. १५३५ के वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन हुआ था।[३८] ब्रजवासियों ने इस स्वरूप का दर्शन किया तथा पूजन–अर्चन किया। इस अवसर पर पूरे ब्रज में सर्वत्र अलौकिक आनन्द छा गया था–

'नंद महरि के पूत भयो।
बड़ी बेस जायो है ढोढा।
निरखत सब संताप गयो।
घर–घर ते सब चली जुवति जन
अंग अंग सुभंग सिंगार किये।
कुम्भनदास गिरिधर के प्रकटे,
नाचत सब मिल मुदित हिये॥'

अपने कृष्णावतार में भगवान श्री कृष्ण ने एक रूप में गिरिराज गोवर्धन की पूजा (प्रकृति पूजा) करवाई थी और दूसरी ओर खुद (गिरिराज गोवर्धन पर्वत के रूप में) समर्पित समस्त सामग्री व पूजा को ग्रहण किया था।[३९] 'श्याम की शोभा गिरि भयो, गिरि की शोभा श्याम'। गिरिराज गोवर्धननाथ श्रीनाथ जी का स्वरूप श्याम है। श्रीनाथ जी एक भुजा पर गिरिराज पर्वत को धारण किए हुए हैं तथा दूसरी भुजा कटि पर रखे हुए हैं। श्रीनाथ जी की पीठिका चौरस है इस पीठिका में तीनों ओर पर्वत हैं और एक ओर उनका मुखारविन्द है–

'देख्यो री मैं श्याम स्वरूप।
वामभुजा ऊँचें कर गिरिधर
दक्षिण कर कटि धरत अनूप।। १ ।।
मुष्टिका बाँध अंगुष्ठ दिखावत
सम्मुख दृष्टि सुहाई।
चरण कमल युगल समधर के
कुंज द्वार मन लाई।। २ ।।
अति रहस्य निकुंज की लीला
हृदय स्मरण कीजैं।
द्वारिकेश मन वचन अगोचर
चरण कमल चित दीजै।
वैश्वानरो वल्लभाख्यः समुद्रोहित कृत्सताम्'

गिरिराज गोवर्धननाथ श्रीनाथ जी अपनी समस्त लीला सामग्री के साथ ब्रज में प्रकट हुए है, इसका प्रमाण गर्ग संहिता के गिरिराज खण्ड में मिलता हैं–

'येन रूपेण कृष्णेन, घृतो गोवर्द्धनो गिरिः।
तद्रुपं विधते तत्र राजन् श्रृंड़गारमण्डले ।। १ ।।
अब्दाश्चतुः सहस्त्राणि तथा पन्च शतानि च।
गतास्तत्र कलेरा दौं क्षेत्रे श्रृंगारमण्डले।। २ ।।
गिरिराजगुहामध्यात्सर्वेषां पश्यतां नृप।
स्वतः सिद्ध च तद्रुप हरेः प्रादुर्भविष्यति ।। ३ ।।
श्रीनाथ देवदमनं त वदिष्यन्ति सज्जनाः।
गिरिराज गिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः ।। ४ ।।
ये करिष्यन्ति नेत्राभ्यां तस्य रूपस्य दर्शनम्।
ते कृतार्थ भविष्यति श्री शेलेन्द्रे कलौ जनाः ।। ५ ।।
जगन्नाथो रड़गनाथो द्वारकानाथ एव च।

बदरीनाथश्चतुष्कोणे भारतस्यापि वर्तते।। ६ ।।

मध्ये गोवर्द्धन स्यापि नाथोऽयं वर्तते नृप।

पवित्रे भारते वर्षे पन्चनाथः सुरेश्वराः ।। ७ ।।

सद्धर्ममण्डपस्तम्भा आर्तत्राणपरायणाः।

तेषां तु दर्शन कृत्वा नरो नारायणो भवेत्।। ८ ।।

चतुर्णां भुवि नाथानां कृत्वा यात्रा नरः सुधीः ।

न पश्चेदेवदमनं सा यात्रा निष्फला भवेत्।। ९ ।।

श्री नाथ देवदमन पश्चेद्गोवर्द्धने गिरौं।

चतुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाश्च फलं लभेत् ।। १० ।। इत्यादि [४०]

श्रीनाथ जी की रक्षा के लिए चार व्यूहों का प्राकट्य भी गिरिराज गोवर्धन पर स्वतः हुआ है– [४१] पहले व्यूह में संकर्षण कुण्ड में से संकर्षण देव का प्राकट्य हुआ है। दूसरे व्यूह में गोविन्द कुण्ड में से गोविन्द देव जी का प्राकट्य हुआ है। तीसरे व्यूह में दानघाटी के ऊपर दानीराय जी का प्राकट्य हुआ है। और चौथे व्यूह में श्री कृण्ड (राधा कुण्ड) में से हरिदेव जी का प्राकट्य हुआ है। ये चारों श्रीनाथ जी की सेवा में सदा तत्पर रहते हैं।

जिस समय गिरिराज गोवर्धन में श्री नाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ, उसी समय अर्थात् वि.सं. १५३५ के वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म भी हुआ।[४२]

पुष्टिमार्ग में गिरिराज गोवर्धन को हरिदासवर्य कहा जाता है क्योंकि गोवर्धन की देह, कंदराएँ (गुफाएँ), तृण, लता–पेड़–पौधै सब कुछ नित्य–सदैव भगवान श्रीनाथ जी की सेवा में समर्पित रहते हैं। गिरिराज गोवर्धन दास्यभक्ति के उत्कृष्ट प्रतीक हैं।[४३]

षट्ऋतु की वार्ता में गिरिराज गोवर्धन के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

'सौ श्री गिरिराज जी कौ स्वरूप कैसो हैं ? जो–बारह बरस के बालक को सो, और लाल वस्त्र पहेरे हैं। और लाल छरी श्री हस्त में लिये हैं। और श्याम स्वरूप हैं। सो मन्द–मन्द मुसिकाय के छेओं सखीन सौं पूछें जो कहा आज्ञा है ?' गिरिराज गोवर्धन पर्वत के स्वरूप की महिमा ८४ वैष्णवन की वार्ता में 'अच्युत दास गोड की वार्ता' (संख्या–५४) तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता में 'ब्राह्मण विरक्त वैष्णव गुजरात कों' की वार्ता (संख्या–१६१) में से भी प्राप्त होता है। इन दोनों वार्ताओं में महाप्रभु जी ने तथा गुसाँई जी ने गिरिराज गोवर्धन पर्वत की अलौकिक महिमा का दर्शन भक्तों को करवाया है। षट् ऋतु की वार्तानुसार भगवान श्री कृष्ण तथा स्वामिनी राधा जी नित्य गिरिराज जी की कन्दरा में बिराजमान रहते हैं। गिरिराज की कन्दरा में छः ऋतुओं का निवास नित्य रहता हैं–

१. चरण घाटी से दंडौती शिला तक पहली निकुंज में बसन्त ऋतु रहती है जो सूर्योदय से दस घड़ी दिन तक (सुबह दस बजे तक) रहती है। ये ऋतु चैत्र–वैसाख मास में होती हैं।
२. दंडौती शिला से मानसी गंगा तक दूसरी निकुंज में ग्रीष्म ऋतु रहती है जो सुबह दस बजे से बारह बजे तक रहती है। ये ऋतु ज्येष्ठ–अषाढ मास में होती है।
३. मानसी गंगा से श्री कुण्ड तक तीसरी निकुंज में वर्षा ऋतु रहती है जो दोपहर दो बजे से शाम तक रहती है। ये ऋतु श्रावण–भादों मास में होती है।
४. श्री कुण्ड से चन्दसरोवर तक शरद ऋतु रहती है। जो (सायंकाल) शाम से रात दस बजे तक रहती है। ये ऋतु आश्विन–कार्तिक मास में होती है।
५. चन्द्र सरोवर से आन्यौर तक हेमन्त ऋतु रहती है जो रात दस बजे से दो बजे तक रहती है। ये ऋतु मार्गशिष–पौष माह में होती है।
६. आन्यौर से गोविन्द कुण्ड तक शिषीर ऋतु रहती हैं। जो रात दो बजे से सूर्योदय तक रहती है। ये ऋतु माघ–फाल्गुन मास में होती है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

इस तरह बारह मास में छः ऋतु–नित्य गिरिराज पर्वत पर निवास करती हैं। इन छः निकुंजों में हर ऋतु की एक निकुंज है, सोने, हीरे, पन्ने, माणिक, पोखराज आदि से जड़ित है और दूसरी निकुंज फुल–पत्तियों (पुष्पलतामय) से बनी हैं। साथ ही यमुना जी भी अपने दोनों स्वरूपों में गिरिराज में बिराजमान हैं। इनके साथ ३६ राग–रागिनियाँ भी अपने ३६ बाजेन के साथ छः छः के यूथ में हर निकुंज में बिराजमान हैं।[४४]

इस प्रकार गिरिराज गोवर्धन पुष्टिमार्ग में भागवद्रूप माना जाता है। ब्रज यात्रा के समय तथा वर्षभर भी भक्तों की भीड़ इनके दर्शन को आती रहती है। भक्तजन सविशेष दूध से गिरिराज गोवर्धन की पूजा–अर्चना करते हैं तथा इनकी परिक्रमा अपनी यथाशक्ति से करते हैं। जैसे पैदल परिक्रमा, दूध की धारा के साथ की हुई परिक्रमा, दण्डौती (दण्डवत्) परिक्रमा आदि। ब्रज यात्रा के दौरान यात्रा लगभग सात दिन गिरिराज गोवर्धन पर रुकती हैं। इस समय में अनेक मनोरथ गिरिराज में श्रीनाथ जी के मुखारविन्द के पास किए जाते हैं। इसके अलावा नाग पंचमी के दिन यहाँ बड़ा मेला लगता है।

''धनि–धनि श्री हरिदास राई।
सानुग सेवा करत सकल विधि,
ताते बल मोहन जिय भाई।
कन्द, मूल, फल, फूल पत्र लै,
सिला सिंहासन रुचिर बनाई।
कोमल तृम गायन चरिबे को,
सीतल जल के झरना बहाँई।
विविध केलि क्रीडत जो सखन संग,
छिन उतरत छिन चड़त हैं धाई।
रामकृष्ण के चरण परस ते,

पुलकित पौहपित रहत सदाँई।
इनकौ भाग कहाँ लगि वरनों,
कोमल कर पर लियो उठाई
प्रेम मुदित यों कहत गोपिका,
इन पर गोविन्द बलि–बलि जाई।''

## १३. पुष्टिमार्ग में रासलीला का स्वरूप :-

### १. रासलीला का परिचय ::

'रसानां समूहो रास' द्वारा रास को समस्त रसों का समूह कहा गया है। रासलीला पूर्णपुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण की सबसे मधुर लीला है, जहाँ भक्त (गोपियाँ) और भगवान (परब्रह्म श्री कृष्ण) एक हो जाते हैं। भगवत् प्रेम भक्त को निष्काम बना देता है। भक्त का यह एक निष्ठ भगवत् प्रेम भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता है। रास–लीला में यही रसात्मक दिव्य प्रेम प्रकट हुआ है। रासलीला में एक ही रस है श्री कृष्ण, जो गोपियों में रससमूह बनकर उमड़ पड़ता है। श्रीमद् भागवत के व्याख्याकारों ने रास लीला को मोक्ष से भी ऊपर अनन्त, उत्तम, परमानन्दमय फलरूपा माना है। वास्तव में रास आत्माराम का आत्मरमण है। इस रासलीला की इच्छा–कामना तो परम ज्ञानी और महान योगी भी करते हैं। आज भी रासलीला के सम्बन्ध में संदेह, शंका, आक्षेप, जिज्ञासा देखने को मिलती है। इसका मुख्य कारण है रासलीला को सामान्य मानव की कामलीला मानना।

### २. रासलीला की व्याख्या ::

श्रीमद् भागवत् के आधार पर अनेक विचारकों ने अपने–अपने ढंग से रासलीला की व्याख्या की है–[४५]

१. जीवात्मा परमात्मा के साथ प्रेम सम्बन्ध के द्वारा कैसे मोक्ष प्राप्त कर सकती है, यही दर्शाने के लिए रासलीला की कथा है।

२. गोपियाँ अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं, जिनका भगवान् की ओर उन्मुख होने से मोक्ष मिलता है, इसकी प्रतीकात्मक कथा ही रास प्रसंग है।

३. भगवत्–शक्ति–रूपा गोपियों को भगवत्संलग्न करके परमानन्द प्राप्ति की कथा ही रासलीला है।

४. विश्वरूप वृत के केन्द्र श्री कृष्ण हैं, प्रकृति परिधि है, जीवात्मारूपी सरल रेखाएँ इस प्राकृत चक्र में पड़कर अपने केन्द्र को भूल गयी हैं। ज्ञानोदय से आत्मविस्मृति दूर होकर जीवात्मा रूप सरल रेखाओं का परिधि को त्याग कर अपने केन्द्र की ओर आकृष्ट होकर गतिशील होना ही रासलीला है, जो नित्य होती रहती है।

५. जीवात्मारूप गोपियों का अपने कारण रूप परमात्मा श्री कृष्ण से मिलन ही रासलीला है। यह स्थूल शरीरों का मिलन नहीं है।

६. गो अर्थात् इन्द्रियाँ, गोप–गोपी अर्थात् इन्द्रियों की रक्षा करने वाले, कृष्ण अर्थात् आत्मा, आत्मा रूपी कृष्ण वंशीध्वनि से गोपियों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इन्द्रियाँ–वृत्तियाँ एक मन एक प्राण होकर अन्तरात्मा में मग्न होने के लिए तत्पर होती हैं। अहंकार के नष्ट होते ही पार्थक्य के समस्त बन्धन छिन्न–भिन्न हो जाते हैं और मनोवृत्तियाँ आत्मा में लीन हो जाती हैं तब महारास होने लगता है। आत्मा का पूर्णानन्द में लीन होना ही महारास है, जो कि भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य है।

७. योग की दृष्टि से भी रास की व्याख्या करने का प्रयास हुआ है। तद्नुसार नाड़ियाँ गोपिका हैं और कुल कुण्डलिनी राधा है। वंशीध्वनि अनाहत नाद है, सहस्त्र दल कमल वृन्दावन है, जहाँ आत्मा और परमात्मा का सुखमय मिलन होता है। यहीं जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य रास किया करती हैं, ईश्वरीय विभूति के साथ।

८. रास की वैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। इसके अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मुख्य केन्द्र के चारों ओर गतिमान रास सतत होता ही रहता है। सौरमण्डल में सूर्य केन्द्र के आकर्षण के कारण ग्रहों और उपग्रहों का मण्डल अपनी विशेष गति से गतिमान रहता है। यह गतिमान परिक्रमा ही रासलीला है।

भक्तों को अपने में तत्पर करने के लिए भगवान ने उनके अनुरूप लीलाएँ की हैं। जब भक्त सम्पूर्ण रूप से भगवतमय हो जाता है, तब ही वह रासलीला का अधिकारी बनता है। 'नित्य हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतांहितो'[४६] वल्लभाचार्य का मत है कि रासलीला में भक्त, भगवान् और उनकी लीला सबकुछ निर्गुण, अप्राकृत, दिव्य और अलौकिक है, जो लौकिक वैदिक के सम्बन्ध से रहित रस से पूर्ण पदार्थ हैं। 'रासो नाम रसेनपूर्णः पदार्थोऽन्य सम्बन्ध रहितः।' रासलीला के द्वारा भगवान ने अपने समर्पित भक्तों में अपने पुर्णानन्द की स्थापना की है। रासलीला में यही गूढ़ रसात्मक काम प्रकट होता है। 'रसात्मक स्तुयः कामः सोत्यन्त गूढ एव हि।' यह लीला वैसी ही निर्मल और निर्दोष है जैसे कोई नन्हा शिशु निर्विकार भाव से अपनी परछाई के साथ खेलता है–

'क्रिया सर्वापि सैवात्र पर कामो न विधते।
तासां कामस्य सम्पूर्ति र्निष्कामेनेति तास्तथा ।।
कामेन पूरित कामः संसार जनयेद् स्फुटः।
कामाभावेत पूर्णस्तु निष्कामः स्यात् न संशयः।
अतो न कापि मर्यादा भग्ना मोक्ष फलापि च।
भगवच्चरितं सर्व यतो निष्काममीर्यते।
अतः कामस्य नोद्बोधः ततः शुकवंच स्फुटम्।।'[४७]
'स्वानन्द्र स्थापनार्थाय लीला भगवता कृता।।'[४८]
'रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरी भिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः।।'[४९]

वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत् के दशम स्कंध के २६ से ३० तक के पाँचों अध्याय को 'रास पंचाध्यायी' कहा है।[५०] 'भारतीय दर्शन के इतिहास में इस रास

पंचाध्यायी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। भगवान् श्री कृष्ण और गोपियों के प्रसंग का वर्णन इन पाँच अध्यायों में आया है जो तत्वज्ञान की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। भगवान् के वेणुनाद से गोपियों का आकर्षण, गोपीजनों का त्याग और सर्वात्मभाव, उनका गर्व और भगवान् का तिरोधान, गोपीओं का विलाप और दैन्य, भगवान् का प्रादुर्भाव और गोपीजनों के ऊपर अनुग्रह, रासलीला का आरम्भ और भजनानंद का दिव्य अनुभव–ये सब प्रसंग काव्य और तत्वज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त मर्मस्पर्शी है।'[५१]

वल्लभाचार्य ने अपनी 'सुबोधिनी' में 'रसात्मकस्तु य काम' कहकर व्याख्यायित किया है कि यह काम लौकिक नहीं अलौकिक है। भगवान श्री कृष्ण अन्तर्यामी हैं, सर्व समर्थ हैं, उन्हें लौकिक संसार का कोई बन्धन नहीं होता है। प्रभु अपनी लीला की इच्छा के कारण मानव देह धारण करते हैं। रास केवल एक नृत्य ही नहीं है, वह एक उत्सव है।[५२]

उत्सव मन का वह आहलाद है जो अपनी मस्ती में सब कुछ भुला देता है।[५३] जो भक्त श्रद्धा–भक्ति से भगवत् लीला का गुणगान करेगा वह परा भक्ति को प्राप्त करेगा। श्रीमद् भागवत् में जिस रास लीला का वर्णन है वह 'सारस्वत कल्प' की रास लीला है– ऐसा वल्लभाचार्य का मत है।

भगवान श्री कृष्ण का प्राकट्य निःस्साधन जीवों के उद्धार के लिए हुआ था।[५४] गोपियाँ जो कि वेद की ऋचाएँ कही गई हैं, उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति को देख कर उद्धव जैसे ज्ञानी भी इनके चरणों में गिर कर कहते हैं–

'वंदे नंदब्रजस्त्रीणां पादरेणुमभी क्ष्णशः।
यासां हरि कथोद्गीतां पुनाति भुवन त्रयम्।।'[५५]

भगवान श्री कृष्ण परमात्मा हैं और गोपियाँ जीवात्मा हैं। यह सम्बन्ध काम, क्रोध, स्नेह, भय, एकता और भक्ति का है। इसी का सुन्दर वर्णन रासलीला में देखने को मिलता है।

इस प्रकार प्राचीन तथा अर्वाचीन तत्व–चिंतकों ने रासलीला की उदात्त भावना का विचार किया है। रासलीला की भावना काव्य की दृष्टि से और तत्व ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त भव्य और सुन्दर है। अतएव इसका स्थान साहित्य और तत्वज्ञान के इतिहास में चिरंतन है।

## ३. रासलीला का आरम्भ और विकास ::

रासलीला के आरम्भ और विकास की गाथा कई पुराणों, ग्रन्थों तथा विद्वानों द्वारा अलग–अलग रूप से की गई है। रास शब्द रस से बना है–'रसौवैसः' अर्थात् भगवान स्वयं रसरूप हैं आनंद रूप हैं। भगवत् गीता में 'रसोऽमप्सु' कहकर रसमय ब्रह्म का साक्षात्कार कराया गया है। हरिवंश पुराण में शरद ऋतु की चाँदनी रात में श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ हल्लीसक नामक नृत्य किया था–ऐसा उल्लेख मिलता है। हल्लीसक गोप समाज का सामाजिक नाच है। श्रीकृष्ण और बलराम जब द्वारिका में थे तब राज दरबार में इन दोनों की लीलाओं को नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया गया था जो 'रास' के नाम से सर्वत्र लोक प्रिय हो गया था।[५६] विष्णु पुराण, ब्रह्मपुराण, यज्ञपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और गर्ग संहिता में भी रास लीला से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[५७] श्रीमद्भागवत पुराण में रासलीला का सविस्तार विवेचन किया गया है। नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने रास के तीन भेद बताए हैं – ताल रासक, दण्ड रासक और मण्डल रासक।[५८]

'ताल रासक नामस्यात् तत्रेधा रास कंस्मृतम्।
दंड रास मे क़ंतु तथा मंडल रासकम्।।'

मध्यकाल में १३ वीं सदी में महाकवि जयदेव ने गीत गोविन्द द्वारा श्री कृष्ण की मधुर भक्ति को जन–जन तक पहुँचाया। गीत गोविन्द में जयदेव ने रास का सुन्दर वर्णन किया है –

'रासे हरिरिह सरस विलासम् तथा विहरति हरिरिह सरस वसंते।
नृत्यति पुवति जनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते।।'[५९]

मध्यकाल में रास के पुनःजन्म का श्रेय मुख्यतः दो विद्वानों को प्राप्त है – महाप्रभु वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास।[60] इन दोनों विद्वानों ने मथुरा के चतुर्वेदी से आठ ब्राह्मण बालक मांगकर विश्राम घाट, मथुरा में रास का आयोजन किया था। रास करवाने का अधिकार इन विद्वानों ने करहला गाँव ब्राह्मण घमंड देव जी को दिया था। घमंड देव जी ने अपने ही गाँव के दो ब्राह्मण उदयकरण और खेमकरण की सहायता से रास की वर्तमान परम्परा का पुनः आरम्भ किया था। इस बात का उल्लेख राधाकृष्ण रासधारी ने अपनी पुस्तक 'रास–सर्वस्व' में किया है।[61] आगे चलकर गोड़ीय सम्प्रदाय के नारायण भट्ट जी ने रास के उत्थान और विकास में बड़ा योगदान दिया।[62] भट्ट जी ने रास का सम्पूर्ण स्वरूप ही बदल डाला। भट्ट जी ने रास को केवल संगीत मात्र ही न रख कर अभिनय का रूप भी प्रदान किया। भट्ट जी ने भी करहला गाँव के दो ब्राह्मण रामराय और कल्याणराय के सहयोग से रास को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। इनके साथ नृतक वल्लभ का भी रास की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भट्ट जी ने स्थान–स्थान पर रास मण्डलियाँ स्थापित करवाई। साथ ही रास में श्री कृष्ण की जीवन–लीलाओं को अभिनय रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय भी नारायण भट्ट जी को जाता है। इसका वर्णन रास सर्वस्व नामक पुस्तक में इस प्रकार मिलता है–

'कुछ दिन पीछें भए विचार।
प्रकट्यौ भाव जदपि संसार।।
रास बिलास स्वाँमिनी व्यारी।
सखी भाव बिन नहिं अधिकारी।।
प्राकृत दंपति लीला माँही।
परिचारक कोउ प्रबसति नाँहि।।
रहै पास तिहि अवसर दासी।
जो स्वाँमिनी की कृपा निवासी।।

प्रभु के भक्त अनेक बिधाना।
उज्ज्ल सख्य, दास्य रस–नाना।।
तिनकहँ सुख उपजैं जिहि भाँति।
प्रभु पद में मन रह दिन राती।।'
'अस बिचारी हरि की ललित, लीलँन की अनुहाँरि।
रसिक नाराइन भट्ट नें, ग्रथित कियौ संसार।।
जिहि प्रकार रहि प्रेम दृढ, निखिल भक्ति जिय होइ।
निज–निज रुचि हरिभाव कर, सुख पावें सबकोई।।'[६३]

१५ वीं शती में गुज़रात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता द्वारा रचित रास सहस्त्र पदी में भी रासलीला का सुन्दर वर्णन मिलता हैं। १७ वीं सदी में 'आनन्द कन्द चम्पू' में रास का सुन्दर वर्णन मिलता है।[६४]

## ४. रासलीला के तीन रूप ::

वैष्णव कृष्णोपासक आचार्य गण और भक्तरसिक तथा विद्वानों ने रास के तीन मुख्य रूप बताए हैं–नित्य रास, नैमित्तिक रास और अनुकरणात्मक रास।[६५] 'नित्य रास' परब्रह्म श्री कृष्ण अपनी शक्ति स्वरूपा के साथ अपने गोलोक स्थित वृन्दावन में नित्य निरन्तर करते रहते हैं। 'नैमितिक रास' भगवान् श्री कृष्ण का अवतार रास है जो श्री कृष्ण ने ब्रजांगनाओं के साथ वृन्दावन में किया था। ये दोनों रास (नित्य और नैमितक) अलौकिक हैं इस कारण सामान्य संसारी लोग इसे सहज रूप में नहीं देख सकते। 'अनुकरणात्मक रास' वह रास है जो श्री कृष्ण की लीलाओं पर आधारित है और जिसे सामान्य पात्रों द्वारा किया जाता हैं। इसके भी दो रूप हैं – नित्य रास और लीला रूप में। नित्य रास शरद पूर्णिमा की रात में श्री कृष्ण तथा गोपियों द्वारा किया गया रास है, जिसमें गायन–वादन तथा नृत्य होता है। लीला रुप में श्री कृष्ण की जीवन लीलाओं को अभिनय और संवादों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। जैसे–माखन चोरी, चीर हरण, गो चारण,

कालीया नाग दमन लीला, पूतना वध, महादेव लीला, कंस वध लीला, गोवर्धन धारण लीला आदि।

श्रीमद् भागवत के आधार पर अनेक भक्तों, कवियों ने रास लीला पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। नंददास और सोमनाथ ने 'रासपंचाध्यायी' नामक ग्रंथ की अलग रचना की है।

## ५. रास लीला का वर्तमान रूप ::

ब्रज के कलाकारों ने भागवत से प्रेरणा, अष्टछाप से गायन और अनुभवी कलाकारों से अभिनय सीखकर ब्रजाधिपति भगवान श्रीकृष्ण के जीवन से संबन्धित लीलाओं का सजीव चित्रण रासलीला के रूप में जन-जन तक पहुँचाया है। रास लीला में श्रीकृष्ण, बलराम, सखा, कंस, राधा, सखियाँ आदि का अभिनय करनेवाले पात्र स्वरूप कहलाते हैं। ये बालक मुख्यतः ब्राह्मण होते हैं। ये किशोर बालक कलाकार १२ से २० वर्ष तक की आयु के होते हैं। इन स्वरूपों को सजाने का कार्य शृंगारी करता है। शृंगारी ही मण्डली के वस्त्रों (वेष भूषा) और आभूषणों की देखरेख करता है। रास मण्डली को चलाने वाल संचालक स्वामी कहलाता है। रास मण्डलियों में श्रीकृष्ण का मुकुट बहुत ही पूजनीय माना जाता है। श्रीकृष्ण स्वरूप बना बालक इस मुकुट को प्रणाम करने के पश्चात् ही इसे पहनता है। सामान्यतः यह मुकुट सलमा-सितारा की एक टोपी पर टिका होता है। इसकी कलगी पर मोर पंख अवश्य लगाया जाता है। कुछ समृद्ध रास मण्डलियाँ सोने-चाँदी का पानी चढ़ा कर भी मुकुट बनवाती हैं। ये मुकुट मथुरा वृन्दावन में विशेष रूप से बनाए जाते हैं। इसके अलावा जब रास मण्डली राज दरबार में रास लीला के लिए जाती है तो उन्हें सभी वस्त्राभूषण राजकोश से दिए जाते हैं, जो कीमती होते हैं। आजकल ऐसा नहीं होता हैं। वल्लभ सम्प्रदायी रासधारियों में श्रीकृष्ण स्वरूप का मुकुट दाँई तरफ झुका रहता है, क्योंकि श्रीनाथ जी का मुकुट भी इसी तरफ झुका हुआ है। ये रास मण्डलियाँ मुख्यतः करहला गाँव की होती

हैं।[६६] रासलीला के मंच पर पीछे एक पर्दा टंगा हुआ रहता है। मंच के मध्य में एक छोटा सिंहासन होता है, जिस पर श्री कृष्ण और राधा बैठे होते हैं। पास ही में गोपिकाओं के लिए चौकियाँ या आजकल कुर्सियाँ रख दी जाती हैं। मंच के आगे नृत्य के लिए स्थान छोड़ दिया जाता है। नृत्य के स्थान के सामने रास मण्डली का संगीत–समाज बैठता है और इनके चारों ओर भक्त दर्शक बैठते हैं।

जब पर्दा खुलता है तो भगवान ब्रजराज की ब्रजांगनाओं से घिरी झाँकी दिखाई देती है। रास मण्डली का संगीत–समाज सबसे पहले मंगलाचरण गाता है। फिर सखियों द्वारा ब्रजाधिपति और राधा की आरती उतारी जाती है। आरती के बाद प्रशस्तियाँ गाई जाती हैं। फिर सखियाँ युगल स्वरूप को रास मण्डल में पधारने की प्रार्थना करते हैं और आगे रास का शुभारम्भ होता है। रास का नृत्य द्वापर में भगवान द्वारा नाचे गए पवित्र नृत्य का अनुकरण है।[६७] रासलीला का प्रमुख तत्व उसका संगीत पक्ष है।[६८] रासलीला शिल्प में प्राचीन भारत की ताण्डव, लास्य, हल्लीसक, छालिक्य जैसी काल के गर्त में समा चुकी नृत्य विधाएँ आज भी रासलीला में विद्यमान हैं। मध्यकाल में रास लीला में मृदंग, वीणा, बंशी, मुरव्चंग, झाँझ, करताल जैसे वाद्यों का प्रयोग होता था। आज इसका स्थान ढोलक, तबला, हारमोनियम, खंजरी जैसे वाद्यों ने ले लिया है। नित्य रासानुकरण में भारतीय संगीत शास्त्र की सार्थक उक्ति 'गीत, वाजों तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते' को साकार मंचित किया जाता है।[६९] रासलीला जिसमें किशोर बालक श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं को गायन, वादन, नृत्य, अभिनय और संवादों के साथ मंच पर इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि जिसे देख कर दर्शक दिव्य अलौकिक भाव समाधि में जा पहुँचता हैं और मंत्रमुग्ध हो जाता है। इसी भाव को उपनिषदों में 'रसौ वै सः' कहा गया है। आज कल ब्रज की रास मण्डलियाँ पूरे देश में रासलीला की प्रस्तुति करने जाती हैं। प्रत्येक दिन वे श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाएँ दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं और इस प्रकार के ब्रजाधिपति श्री कृष्ण की मधुर भक्ति को जन–जन तक पहुँचाती हैं।

'नित्य धाम वृंदावन श्यॉम।
नित्य रूप राधा ब्रजबॉम ।।
नित्य रास, जल नित्य बिहार।
नित्य मॉन खंडिताभिसार ।।
ब्रह्म रूप एही करतार।
करनहार त्रिभुवन संसार ।।
नित्य कुंज सुख, नित्य हिंडोर।
नित्यहिं त्रिबिंध सँमीर झकोर ।।
– सूरदास.

## १४. पुष्टिमार्ग में तिलक व तुलसी कण्ठी का महत्व :-

### १. तिलक – परिचय व महत्व ::

पुष्टिमार्ग में विधान है कि स्नानादि के पश्चात् चरणामृत लेकर सर्वप्रथम तिलक लगाना चाहिए। हमारी भारतीय संस्कृति में कुंकुम को बहुत पवित्र व मंगलकारी माना गया है। हर शुभ प्रसंगों पर कुंकुम का प्रयोग किया जाता है – जैसे देव पूजन में, यज्ञादि में, शादी आदि कई प्रसंगों में कुंकुम का स्थान ऐतिहासिक व भव्य रहा है। नारद जी के पूछने पर भगवान् श्री वासुदेव ने उर्ध्वपुण्ड्र कुंकुम के बारे में बताया है– [७०]

'श्वेतं पीतं तथा रक्त द्रव्यं तु त्रिविधं स्मृतम् ।।
पुण्ड्राणां धारणे विप्रे मयैव प्रकटी कृतम् ।।
तेषु रक्त श्रिया देव्या मत्स्नेहात्प्रकटीकृतम् ।।
श्री कुंकुमेति विख्यातं सदा मांगलिकं मुने ।।
केवलं मुक्तिदं पुंसाममंगल विनाशनम् ।।
हरिद्राति परप्रेम्णा निजार्थोत्र विचार्यताम् ।।

प्राणणाच हरेः साक्षात् हरिद्रेयं प्रकीर्तिता ।।
विवाहव्रतबंधादि जन्मयात्रासु युज्यते ।।
द्रव्यं मांगलिकं साक्षात् हारिद्र प्रेमभाजनम् ।।
हरिद्रासंभवं चूर्ण टंकणेन समन्वितम् ।।
भावितं चाम्ल द्रव्येण रक्तत्वमुपयाति हि ।।'

अर्थात् सफेद, पीला और लाल तीन रंग के द्रव्य आते हैं जो ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करने के प्रयोग में आते हैं। इन तीनों में जो लाल रंग का द्रव्य है उसका प्राकट्य श्रीदेवी (लक्ष्मी) ने किया है। इसे श्री कुंकुम कहा गया है। हे नारद ये श्री कुंकुम सदा-सर्वदा मांगलिक है, मोक्ष देनेवाला है तथा अमंगल का नाश करनेवाला है। इस कुंकुम का एक नाम हारिद्र भी है अर्थात् श्री हरि को प्रिय लगनेवाला, श्री हरि में प्रीति करवाने वाला है। हर तरह के मांगलिक कार्यों में श्री हरि प्रेम के रूप में इस हारिद्र कुंकुम का प्रयोग होता है। जैसे-विवाह, व्रत, जन्म इत्यादि प्रसंगों में इस हारिद्र कुंकुम का उपयोग किया जाता हैं। हल्दी के चूर्ण में, टंकणखार मिलाकर और उसमे खट्टे द्रव्य का पुट देकर लाल रंग लाया जाता है। हारिद्र कुंकुम का स्वीकार सभी वैष्णव सम्प्रदाय करते हैं। तत्वदीप निबन्ध में कहा गया है कि-[७१]

'दण्डकारं ललाटेस्यात् पत्राकारंतु वक्षसि।
वेणुपत्रनिभं वाह् वोरन्यदीपाकृतिः स्मृतम् ।।'

अर्थात् ललाट में दण्डाकृति अर्थात् भगवान के चरण के आकार का वक्ष स्थल अर्थात् हृदय में बन्द कमल के आकार का, दोनों भुजाओं पर बाँस के पत्ते के आकार का तिलक करें तथा अन्य सब स्थानों पर दीपक के आकार का तिलक करें-आदि निर्देश हैं। अतः भगवान प्रसादी केशर, कुंकुम, चन्दन आदि में गोपी चन्दन मिला कर निम्न स्थानों पर द्वादश तिलक करना चाहिए।[७२]

१. ललाट पर तिलक धारण करने का मंत्र-'केशवायनमः केशवं ध्यायामि।'
२. नाभि पर तिलक धारण करने का मंत्र-'नारायणयनमः नारायणंध्यायामि।'

३. हृदय में तिलक धारण करने का मंत्र – 'माधवाय नमः माधवं ध्यायामि।'

४. कण्ठ पर तिलक धारण करने का मंत्र 'गोविन्दाय नमः गोविन्द ध्यायामि।'

५. कमर में सीधे भाग में तिलक धारण करने का मंत्र– 'विष्णवेनमः विष्णुँ ध्यायामि।'

६. सीधे (दाहिने) हाथ पर तिलक धारण करने का मंत्र– 'मधुसूदनायनमः मधुसूदनं ध्यायामि।'

७. सीधे (दाहिने) कान के मूल में तिलक धारण करने का मंत्र– 'त्रिविक्रमायनमः त्रिविक्रमं ध्यायामि।'

८. कमर के बायें भाग में तिलक धारण करने का मंत्र– 'वामनायनमः वामनं ध्यायामि।'

९. बायें हाथ पर तिलक धारण करने का मंत्र– 'श्री धरायनमः श्री धरं ध्यायामि।'

१०. बायें कान के मूल में तिलक धारण करने का मंत्र– 'हर्षीकेशायनमः हषीकेशं ध्यायामि।'

११. पीठ पर तिलक धारण करने का मंत्र– 'पद्मनाभायनमः पद्मनाभं ध्यायामि।'

१२. ग्रीवा के मूल भाग में तिलक धारण करने का मंत्र– 'दामोदरायनमः दामोदरं ध्यायामि।'

इन द्वादश तिलकों के लिए स्कन्ध पुराण में कहा गया है –[७३]

'ब्रह्मन् द्वादश पुण्ड्रानि वैष्णवः सततं धरेत्।

मूर्ध्नि मूलेन मन्त्रेण शेषं द्वादशनाभिः ।।'

जो मनुष्य कुंकुम का ऊर्ध्वपुण्ड्र अपने ललाट में लगाता है वह भगवान का प्रिय बनता है उसे मोक्ष प्राप्त होता हैं तथा उसे सभी तरह के फलों (पुरुषार्थ) की प्राप्ति होती हैं जैसे तीर्थो में स्नान करने का फल, यज्ञादि करने का फल इत्यादि।

'ऊर्ध्वपुण्ड्रंतु सर्वेषा न निषिद्धं कदाचन।

धारयेयुः क्षत्रियाधा विष्णु भक्ता भवन्ति ये ।।'[७४]

– पद्म पुराण

पुष्टिमार्ग में भी श्री हरि (श्री नाथ जी) के नित्य सानिध्य की अनुभूति के रूप में तिलक को ललाट पर लगाया जाता है।

## २. तुलसी कण्ठी – परिचय व महत्व ::

पुष्टिमार्ग में ब्रह्म सम्बन्ध एवं शरण मंत्र की दीक्षा के समय प्रभु की प्रसादी रूप में गुरु जी द्वारा श्री हरि श्री नाथ जी को अर्पण की हुई तुलसी काष्टमाला वैष्णव को पहनने के लिए दी जाती है। जिसे वैष्णव भगवान् श्री कृष्ण का स्मरण कर तुलसी कण्ठी को अपने गले में पहनते हैं।

'निवेधकेशवेमालां तुलसीकाष्ठा संभवाम्।
वहतेयोनरोभकत्या तस्यनैवास्ति पातकम्।
तुलसी काष्ठर्सभूते माले कृष्णजन प्रिये।
विभर्मित्वामहंकष्ठे कुरुमां कृष्ण वल्लभम्।।'[७५]

स्कन्द पुराण में कहा गया है[७६] कि 'जो तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है, पहनता है, वह चाहे कितना ही अपवित्र तथा आचरणहीन हो, मुझे ही प्राप्त होता है। जिनके कण्ठ में तुलसी की माला न हो वे मनुष्य पाप बुद्धि हैं। उनका दिया अन्न विष्टा के समान, जल मूत्र के समान, और अमृत रुधिर के समान हैं।'

'नारद पंचरात्र' में भगवान ने देवर्षि नारद जी से कहा[७७] 'जो तुलसी की कण्ठी को सदैव पहने रहता है, वह पवित्र और सदाचारी न होने पर भी मुझे प्राप्त होता हैं। तुलसी की कण्ठी को पहनकर पुण्य, देव पूजा और पितरों का श्राद्ध करने वाले को करोड़ गुना फल प्राप्त होता है।'

'गरुड़ पुराण'[७८] में लिखा है कि 'तुलसी की माला को कण्ठ में धारण करने वाले भक्त के सब पाप नष्ट होते हैं। मुख से भगवान का कीर्तन करने वाले, ललाट पर तिलक और कण्ठ में तुलसीमाला धारण करनेवाले पुरुष को यम के

दूत छू भी नहीं सकते। महापापों का नाश करने वाली और धर्म, अर्थ, काम की प्रदाता तुलसी की कण्ठी का कभी परित्याग न करें।'

'तुलसी काष्ठमालातु प्रेतराजस्यदूतकाः
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्वृतं यथा रजः।'

## १५. पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा :-

### १. लीला का अर्थ व व्याख्या ::

सामान्यतः लीला का अर्थ है क्रीड़ा, खेल, रमण। लीला करना भगवान् का स्वभाव है। वे अपने निजधाम गोलोकधाम में नित्य लीला करते हैं तथा द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण अपने समस्त परिकरों के साथ भू–लोक (पृथ्वी) पर अवतरित होते हैं।[७९] वल्लभाचार्य जी ने भागवत की 'सुबोधिनी टीका' में लीला का विवेचन करते हुए कहा है कि–'लीला विलास की इच्छा का ही नाम है। लीला कार्य नहीं, कृति मात्र है। वह सहज व्यापार मात्र है, लीला ऐसी कृति या व्यापार है जिससें बाहर कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता। यदि उसमें कोई कार्य होता हुआ दिखलाई भी देता हो तो वह अभिप्रेत नहीं होता, उसमें कर्ता का कोई अभिप्राय नहीं होता। इसमें कर्ता का कोई प्रयास भी नहीं होता। जब अन्तःकरण आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है तो उस उल्लास से कार्योत्पत्ति सदृश कोई क्रिया उत्पन्न होती है, यही लीला है।[८०] लीला का कोई प्रयोजन नहीं होता है लीला का प्रयोजन केवल लीला ही है, लीला का आनंद अपने आप में अपना प्रयोजन है।'[८१]

वल्लभ सम्प्रदाय में लीला के महत्व को स्वीकारते हुए कहा जाता है कि भगवत् प्रेम ही सब कुछ है।

'भगवान् के प्रति परम प्रेम तथा एकान्त प्रेम ही भक्ति है। लीला उसी प्रेम का प्रपंच है।' वल्लभाचार्य ने लीला का महात्म्य अपने ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार बताया है–'लीला विशिष्टमेवं शुद्ध परमं ब्रह्म, न कदाचित् तद्रहितमित्यर्थः ते च

(लीलायाः) नित्यत्वम्।'[८२] वल्लभीय भक्तों के लिए भजनानंद मुक्ति से भी बढ़कर है। लीला में प्रवेश ही उनके लिए परम मुक्ति है, यही उनके जीवन का सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है–

'लीला एव कैवल्य जीवानां मुक्ति रूप तत्र प्रवेशः परमा मुक्तिरिति।'

भगवान श्री कृष्ण पृथ्वी पर अवतार क्यों लेते हैं इसका उत्तर श्रीमद् भागवत में दिया गया है – 'अद्वय तथा निर्गुण भगवान का प्रकटीकरण इस जगत् में मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने के लिए ही होता है। मनुष्यों को साधन निरपेक्ष मुक्ति का दान ही भगवान के प्राकट्य का प्रयोजन है। इसका अभिप्राय है कि बिना किसी साधन की अपेक्षा रखते हुए भी भगवान् साधक को स्वतः अपनी लीला के विलास से अपने अनुग्रह से मुक्ति प्रदान करते हैं। भगवान् की यह लीला ही ठहरी। ज्यों ही जीव भगवान् के शरणागत हो जाता है और शरण मंत्र का उच्चारण करता है, भगवान की भक्ति का उदय हो जाता है और फलस्वरूप भगवान् श्री कृष्ण की विमल दया की धारा उस साधक के ऊपर झरने लगती है। यही पुष्टि का रहस्य है।'[८३]

श्रीमद् भागवत में भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं को सर्वोत्तम महत्व प्रदान किया गया है, जिसके अनुसार ईश्वर अपनी स्वेच्छा से लीला करता है। 'लीला विद्धतः स्वैर भीश्वरस्यात्मा यथा।'[८४] ब्रह्मसूत्र के अनुसार भगवान् लोकवत लीला करते हैं – 'लोकवतु लीला कैवल्यम्।'[८५] परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों का विश्वास है कि भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अपनी लीला का विस्तार करने के लिए अवतार लेते हैं–प्रकट होते हैं।[८६] भगवान की लीला उन्हीं के समान नित्य और अनंत है।

२. **लीला के तीन भेद हैं ::** नित्य लीला, सृष्टि लीला, अवतार लीला।

**नित्य लीला –**

वल्लभाचार्य के अनुसार शुद्ध पर ब्रह्म लीला विशिष्ट है। लीला करना उसका नित्य सहज स्वभाव है। वह कभी अपने इस लीला वैशिष्ट्य के बिना नहीं रहता। इसी कारण लीला भी नित्य है।[८७] पूर्ण पुरुषोत्तम सच्चिदानंद रसात्मक भगवान श्री कृष्ण अपने गोलोकधाम में नित्य लीला में रमण करते हैं। भगवान के सभी लीला सहचर इसमें उनके साथ विराजमान रहते हैं। गोलोक में तो भगवान अपने अनंत प्रकाशों के साथ नित्य क्रिड़ा करते हैं और उसी में से किसी एक प्रकाश के द्वारा अपने सहचरों के साथ ब्रज वृन्दावन में प्रकट हो जाते हैं।[८८] वेदों में गोलोकधाम को विष्णु का परम पद कहा गया है तो पुराणों में व्यापि वैकुंठ कहा गया है–यहीं गोलोकधाम में भगवान् श्री कृष्ण अपनी शक्ति स्वरूपाओं के साथ नित्य लीला करते हैं। नित्य लीला भगवान का स्थाई (शाश्वत्) रूप है, अलौकिक रूप है इसे सामान्य मनुष्य के लिए समझ पाना मुश्किल है।

**सृष्टि लीला –**

गोलोकधाम में नित्य लीला करते–करते जब सच्चिदानंद भगवान् की इच्छा होती है कि वे एक से अनेक रूप, गुण और नाम धारण कर रमण करें तो वे जगत् के रूप में परिणत (परिवर्तित) होकर असंख्य रूप, गुण, नाम धारण करके लीला करने लगते हैं। यह भगवान का बहिरमण कहलाता है, और पुनः जब परब्रह्म की इच्छा होती है तो वे अपने इसी असंख्य रूप, गुण और नाम को समेट कर जगत् को अपने में ही लीन कर लेते हैं इसे परब्रह्म का आन्तर रमण कहते हैं।

गोलोक भगवान् का आत्मरमण है जो नित्य होता है। जगत् भगवान का ब्राह्य रमण है तथा प्रलय भगवान् का आन्तर रमण है।[८९]

**अवतार लीला –**

जब भगवान् श्री कृष्ण अपने भक्तों पर कृपा कर उन्हें अपने पूर्ण आनंद का दान देना चाहते हैं तब वे भूतल पर अवतरित होते हैं। यही अवतार लीला कहलाती है जो मनुष्य रूप में होती है। अवतार लीला में सारस्वत कल्प की लीला मुख्य मानी जाती है श्रीमद् भागवत् सारस्वत् कल्प की लीला का प्रतिपादन करता

है। इस लिये उसमें जिन कृष्ण का प्रादुर्भाव बतलाया हैं वे पूर्ण रूप वाले थे। कृष्णस्तु भगवान् स्वयं का यह भागवतोक्त वचन इस बात की पुष्टि करता है। इसीलिए पुष्टिमार्ग में श्रीमद् भागवत को मुख्य प्रमाण मानते हुए उनकी लीलाओं को अवतार लीला रूप से ग्रहण किया है 'कल्पं सारस्वतं प्राप्य ब्रजे गोव्यो भविष्यथ'। बृहद्वामन पुराण के वचन अनुसार भगवान श्री कृष्ण ने वेद की श्रुतिओं को कहा सारस्वत् कल्प में तुम ब्रज में गोपी होंगीं और तब मैं वहाँ प्राद्भूत होकर तुमको मेरी लीलाओं का अनुभव कराउँगा–इस प्रकार वर दिया था। इसीलिए नित्यलीलास्थ निर्गुण परब्रह्म श्री कृष्ण इन श्रुतिओं के निमित्त ब्रज में सारस्वत कल्प के द्वापरयुग में पूर्ण रूप से अवतीर्ण हुए हैं। पद्मपुराण के अनुसार भगवान श्री रामचंद्र जी से दण्डकारण्यवासी सोलह हजार ऋषिओंने भी यही वर मांगा था कि आप हमारा स्त्री भाव से अंगीकार कीजिए। तब भगवान श्री रामचन्द्र जी ने ब्रज में श्री कृष्ण रूप से मैं तुम्हारा अंगीकार करूंगा इस प्रकार वर दिया था। ये श्रुतियाँ स्मृति रूप थीं। ये गौड़ देश में कुमारिकाएँ हुई, जिनको श्री नंदराय जी खरीद कर ब्रज में लाये थे। अतएव श्रुति स्मृतिरूप ब्रज गोपिका एवं कुमारिकाओं के लिए भगवान श्री कृष्ण ब्रज में साक्षात् रूप से प्रकट हुए और उनके साथ जो लीलाएँ की वे अवतार लीला कही जाती हैं।[१०]

वल्लभाचार्य की यह सृदृढ़ मान्यता है कि श्री कृष्ण अवतार नहीं, अपितु अवतारी हैं। वे मूल स्वरूप हैं। उन्हीं से ब्रह्म के गुणावतार, अंशावतार, कालावतार प्रकट होते हैं। श्री कृष्ण के साथ उनका अलौकिक–दिव्य गोलोक धाम भी भूतल पर प्रकट होता है। ब्रज वृन्दावन, गोपी–गोप, गौ, वन–उपवन, यमुना नदी, गोवर्धन पर्वत आदि। वल्लभाचार्य मानते हैं कि ब्रज वृन्दावन के प्रत्येक वृक्ष में वेणुधारी श्रीकृष्ण रहते हैं। हर पत्ते–पत्ते में चतुर्भुज श्री कृष्ण स्थित हैं। यहाँ के धूलि–कण पवित्र हैं और रज से जल पवित्र हैं। यह लीला अभक्तों को दिखाई नहीं देती, अलक्ष्य है किन्तु भक्तों को आज भी दृष्टिगोचर होती है सहज लक्ष्य है–

'वृक्षे–वृक्षे वेणुधारी पत्रे–पत्रे चतुर्भुजः यत्र वृन्दावने तत्र लक्ष्या लक्ष्यकथा कुतः ।। जलादपि रजः पुण्य रजसोऽपि जलं वरं।'[९१] भगवान् श्री कृष्ण की ब्रज लीलाओं का सुख केवल ब्रजांगनाओं को प्राप्त हुआ है। इन ब्रज सुंदरियों को जो सुख मिला है उसे वैकुंठ धामस्थ लक्ष्मी भी पाना चाहती हैं। इसीलिए भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है –

'मत्प्राणा मत्प्रिसा यूयं सर्वे वै ब्रजवासिनः।

हृदयं मेऽस्ति युष्मासु देहोऽन्यत्र विलक्ष्यते।।'[९२]

समस्त ब्रजवासी मेरे प्राणों के समान प्रिय हैं, मेरा हृदय ब्रजवासियों में ही अवस्थित रहता है। देह अन्यत्र दिखाई देती है। ब्रज वृन्दावन से चले जाने के पश्चात् भी भगवान श्री कृष्ण को ब्रज की याद सताती है इसलिए वे उद्धव जी से कहते हैं 'ऊधो मोहि ब्रज विसरत नांही। वृन्दावन गोकुल वन उपवन सधन कुंज की छांही।।'[९३] जब उद्धव जी ज्ञान का संदेश देने ब्रज में आते हैं तो गोपियों की कृष्ण भक्ति देख कर विहल (व्याकुल) हो जाते हैं। वे गोपियों की चरण रज को भी वन्दन करते हैं।[९४] तथा स्वयं ब्रज–वृन्दावन के तृण–गुल्म लता बनना चाहते हैं [९५] ताकि वे इस कृष्ण प्रेम भक्ति का रसानंद प्राप्त कर सके। सो ऐसी है ब्रज की भगवान श्री कृष्ण की अवतार लीला। भक्त भगवान की इस प्रकार की अवतार लीलाओं का स्मरण, मनन, श्रवण, कीर्तन कर जीव भगवत परायण हो जाता है और अपनी इस भक्ति द्वारा मुक्ति की ओर आगे बढ़ता है। श्रीमद् भागवत में भगवान श्री कृष्ण की दश विविध लीलाओं का वर्णन है–सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति,मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय।

अवतार लीला के तीन भेद हैं– ब्रज–वृन्दावन लीला, मथुरा लीला, द्वारिका लीला।[९६]

ब्रज लीला शुद्ध पुष्टि स्वरूप है, अन्य दो लीलाएँ मर्यादा–पुष्टि रूप हैं। ब्रज लीला के भक्त निःसाधन जीव हैं। उनके साथ भगवान श्री कृष्ण ने लीला कर यह सिद्धान्त प्रकट किया है कि जो भी मुझ में एक निष्ठ श्रद्धा–भक्ति–प्रेम रखता है

वह कैसा भी पापी, दुराचारी हो, मैं उसका स्वीकार कर उसे मुक्त करता हूँ। पुष्टिमार्ग में भी प्रभु स्वयं भक्त पर अनुग्रह कर कृपा कर उसका उद्धार करते हैं। ब्रज लीला मानव सुलभ भावों पर आधारित है जो गोलोक धाम की अलौकिक दिव्य लीला से भीं अधिक उत्तम है। वृंदावन इस ब्रज लीला का मुख्य क्षेत्र है, मथुरा और द्वारका इसके सहकारी क्षेत्र हैं। वासुदेव और देवकी भगवान श्री कृष्ण के वैकुंठधाम के माता पिता हैं तो नंद और यशोदा इस ब्रज लीलाधाम के माता–पिता हैं। विद्वानों का मत है कि भगवान श्री कृष्ण वृंदावन में पूर्णतम, मथुरा में पूर्णतर और द्वारका में पूर्ण रूप में बिराजमान होते हैं।

पुष्टिमार्ग में इस अवतार लीला की एक मुख्य विशेषता यह है कि जिसे ब्रज लीला में अधिकार प्राप्त नहीं है वह प्राणी भी गुरू आचार्य की कृपा से ब्रज लीला का रसास्वादन कर, कान्ता भाव की भक्ति करता हुआ साक्षात् भगवान श्री कृष्ण के गोलोक–ब्रज–वृंदावन को प्राप्त करता है अर्थात् जगत्–संसार के समस्त प्रपंचों से मुक्ति प्राप्त करता है–

'मुक्ति कहै गोपाल सों मेरी मुक्ति बताय।
ब्रजरज उड़ ऊपर परै, मुक्ति मुक्त है जाय।।'

## १६. पुष्टिमार्ग में भगवान् श्री कृष्ण-श्री नाथ जी का स्वरूप :-

पुष्टिमार्ग में भगवान श्री कृष्ण को पूर्णब्रह्म माना गया है। वल्लभाचार्य का कथन है–

'सर्वदा सर्वभावेन भजनीयों ब्रजाधिपः।
सवस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचना।।'[१७]

अर्थात् कृष्ण सेवा रूप, कृष्ण कथा रूप, कृष्ण कीर्तन रूप, कृष्ण गुण गान रूप इस भावात्मक पुष्टिमार्ग में परम तत्व भगवान् श्रीनाथ जी के रूप में बिराजमान है। आचार्यो ने श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा ईश्वर रूप में की है। श्रीनाथ जी के मंदिर के शिखर, चक्र और सप्त ध्वजाएँ इसी बात के सूचक हैं। श्रीमद् भागवत् में भी

कहा गया है–'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' अर्थात् श्री कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं। श्रीमद् भागवत् में भगवान् शब्द् की व्याख्या इस प्रकार दी गई है–

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः
ज्ञानवैराग्य योश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।
उत्पतिः प्रलयश्चैव भूतानामगतिं गतिम्
वेति विधामविधां च स वाच्यों भगवानिति।।'[९८]

अर्थात् जो सारे ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, उत्पति, प्रलय, प्राणियों की गति, अगति, विद्या और अविद्या का ज्ञाता हो, वही भगवान होता है। ये सभी गुण भगवान् श्री कृष्ण में विद्यमान हैं इसलिए उन्हें भगवान कहा गया है।

## १. श्री नाथ जी का प्राकट्य ::

श्री नाथ जी का प्राकट्य मथुरा के समीप गिरिराज गोवर्धन की कंदरा (गुफा) में स्वतः हुआ था। वि.सं. १४६६ श्रावण वदी तृतीया को सर्व प्रथम ऊर्ध्व भुजा का प्राकट्य हुआ था। उसी संवत की नाग पंचमी को ब्रजवासियों को इस ऊर्ध्व भुजा का दर्शन हुआ था। ठीक ६९ वर्ष पश्चात् वि.सं. १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी को श्रीनाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ था। इस अवसर पर ब्रज में सर्वत्र अलौकिक आनंद छा गया था इसी संदर्भ में कुम्भनदास जी का ये पद है–

'नंद महरि के पूत भयो।
बडी वेस जायो है ढोटा।
निरखत सब संताप गयो।
घर घर ते सब चली जुवति जन,
अंग अंग सुभग सिंगार किये।
कुम्भनदास गिरिधर के प्रकटे,
नाचत सब मिल मुदित हिए।।'[९९]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इसी दिन अर्थात् वि.सं. १५६५ वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी का भी जन्म मध्यप्रदेश के चम्पारण्य नामक स्थान में हुआ था। श्रीमद् भागवत् में श्री नाथ जी के विषय में कहा है–

'गोपैर्मखे प्रतिहते ब्रज विप्लवाय
देवेभिवर्षति पशुन्कृपया रिरक्षुः।
धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि–
सप्त वर्षो मही ध्रमनघैक करेण लीलम्।'

अर्थात् गोपों ने जिस समय इन्द्र को यज्ञ देना बन्द कर दिया उस समय इन्द्र ने कुपित हो ब्रज को बहा देने के लिए ब्रज पर घोर वर्षा की थी। उस समय भगवान् श्री कृष्ण ने, सात वर्ष के सांवले ने, सात दिन पर्यन्त अपनी एक ऊँगली पर श्री गिरिराज को धारण कर ब्रजजनों की रक्षा की थी। उस समय का स्वरूप ही इस समय श्री नाथ जी के स्वरूप में बिराजमान है।

गर्ग संहिता के गिरिराज खण्ड में श्री नाथ जी के बारे में इस प्रकार लिखा है–[१००]

येन रूपण कृष्णेन, धृतो गोवर्द्ध नो गिरिः।
तद्रुयं विधते तत्र राजन् श्रृंड गारमण्डले।। १।।
अब्दाश्चतुः सहस्त्राणि तथा पंच शातानि च।
गतास्तत्र कलेरादौ क्षेत्रे श्रृंड गारमण्डले।। २।।
गिरिराज गुहामध्यात्सर्वेषा पश्चतां नृप।
स्वतः सिद्ध च तद्रुप हरेः प्रादुर्भविष्यति।। ३।।
श्री नाथ देव दमन तं वदिष्यन्ति सज्जनाः।
गिरिराज गिरौ राजन् सदा लीला करोति यः।। ४।।
ये करिष्यन्ति नेत्राभ्या तस्य रुपस्य दर्शनम्।
ते कृतार्था भविष्यन्ति श्री शेलेन्द्रे कलौ जना।। ५।।
जगन्नाथों रड्गनाथों द्वारकानाथ एव च।

बदरीनाथ श्चतुष्कोऐ भारतस्यापि वर्तते ।। ६ ।।
मध्ये गोवर्द्धनस्यापि नाथोऽय वर्तते नृप।
पवित्रे भारत-वर्षे पंचनाथाः सुरेश्वराः ।। ७ ।।
सद्धर्ममण्डापस्तम्भा आर्तत्राणपरायणाः।
तेषां तु दर्शन कृत्वा नरो नारायणो भवेतः ।। ८ ।।
चतुर्णा भुवि नाथानां कृत्वा यात्रा नरः सुधी।
न पश्ये देवदमन सा यात्रा निष्फला भवेत ।। ९ ।।
श्री नाथ देव दमन पश्येद्गोवर्द्धने गिरौ।
चतुर्णा भवि नाथानां यात्रा याश्च फलं लभेत् ।। १० ।।

## २. श्री नाथ जी का स्वरूप ::

श्री नाथ जी का स्वरूप श्याम वर्ण का है। आप अपने बाएँ हस्त से अपने भक्तों को अपनी ओर बुला रहे हैं तथा दाएँ हस्त से भक्तों के हृदयों को मुट्ठी में ले लिया है। आप अपनी निकुंज में ठाढ़े हैं अतः आपकी पिठिका चौखूँटी (चौरस) है। आपके दोनों चरणाविन्द नृत्य की मुद्रा में हैं और आपकी दृष्टि सम्मुख है। श्री नाथ जी के अद्भुत स्वरूप का वर्णन द्वारकेश महाराज ने इस प्रकार किया है– १०१

'देख्यो री मैं श्याम स्वरूप।
वामभुजा ऊँचे कर गिरिधर,
दक्षिण कर कटि धरत अनूप ।। १ ।।
मुष्टिका बाँध अंगुष्ट दिखावत,
सम्मुख दृष्टि सुहाई।
चरन कमल युगल सम धरके,
कुंज द्वारा मन भाई ।। २ ।।
अति रहस्य निकुंज की लीला,

हृदय सुमिरन कीजे।

द्वारकेश मन वचन अगोचर,

चरन कमल चित दीजे'।। ३ ।।

वर्तमान में श्रीनाथ जी का स्वरूप राजस्थान के नाथद्वारा नगर में विराजमान है। श्रीनाथ जी के अलावा पुष्टिमार्ग के अन्य प्रधान सेव्य स्वरूप इस प्रकार हैं–

| **स्वरूप** | | **बिराजने का स्थान** |
|---|---|---|
| श्री नवनीत प्रिया जी | – | नाथद्वारा |
| श्री मथुरा नाथ जी | – | कोटा |
| श्री विट्ठलनाथ जी | – | नाथद्वारा |
| श्री द्वारका नाथ जी | – | कांकरोली |
| श्री गोकुल नाथ जी | – | गोकुल |
| श्री गोकुलचन्द्रमा जी | – | कामवन |
| श्री बालकृष्ण जी | – | सूरत |
| श्री मुकुन्दराय जी | – | काशी |
| श्री कल्याणराय जी | – | बड़ौदा |
| श्री मदन मोहन जी | – | कामवन |

(नोटः श्री नाथ जी का विस्तृत वर्णन हमें पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य में प्राप्त होता है–श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता, महाप्रभु जी की वार्ता आदि में।)

श्री कृष्ण के पाँच नाथवाची स्वरूपों की भारत में प्रतिष्ठा की गई थी। उनमें से जगन्नाथ पूर्व दिशा में, रंगनाथ दक्षिण दिशा में, द्वारकानाथ पश्चिम दिशा में और बदरीनाथ उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित हैं। मध्यवर्ती गोवर्धन क्षेत्र में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा हुई। उनका एक नाम 'देवदमन' भी हैं। सुधीजन चारों दिशाओं के नाथों के दर्शन करने पर भी श्री नाथ का दर्शन किए बिना अपनी यात्रा की सफलता नहीं मानते हैं।[१०२]

## १७. पुष्टिमार्गीय देवालयों में प्रतिष्ठित सप्त ध्वजा जी :-

### १. ध्वजा जी : परिचय व महत्व ::

पुष्टिमार्ग में श्री नाथ जी के मंदिरों के शिखर पर मंगल कलश, सुदर्शन चक्र एवं सप्तरंगी ध्वजा पुष्ट की जाती है। शास्त्रों का वचन हैं–

'यथा विधूते वातेन ध्वजः प्रासाद मस्तके।

तथा कर्ता त्यजेत् पापं सप्तजन्मार्जितं क्षणात्।।'[१०३]

किसी भी प्रासाद के शिखर पर आरोपित ध्वजा जिस क्षण वायु वेग के साथ लहराता है, उसी क्षण कर्ता के पापों का निरसन होने लगता है। ध्वजा सात जन्मों के कलेषों का विनाश करनेवाली मानी गई है।

भगवान श्रीनाथ जी के मंदिर की सप्त ध्वजा के सात रंग सूर्यकिरणों की सप्तरंगी आभा को प्रस्तुत करते हैं। इस ध्वजा द्वारा न केवल श्रीनाथ जी का माहात्म्य प्रकाशित होता है, अपितु पुष्टि–सम्प्रदाय की सम्पूर्ण सृष्टि का श्रेय एवं प्रेय भी इसी ध्वजा द्वारा पुष्ट होते हैं। इस ध्वजा में पुष्टि सम्प्रदाय के सात स्वरूपों का ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण पुष्टि–सृष्टि के कल्याण का भाव निहित रहता है। सामान्य जन मानस में भी ध्वजा के यशोगान द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय का यश बढ़ता रहता है।

ध्वजा का एक–एक तन्तु कर्ता को स्वर्गारोहण का दिव्य सन्देश देता है। यह असुर–यातुधान–पिशाच–उरग–राक्षसों के द्वारा उद्भूत प्रत्यवायों का विनाश करनेवाली मानी जाती है। अतः देव मंदिरों को ध्वजा से सुसज्जित रखा जाता है–

'असुरा यातुधानश्च पिशोचोरग राक्षसाः।

ध्वज हीने तु प्रासादे वस्तुभिच्छन्ति नित्यदा।।

तस्माद् ध्वज विहीनं तु न कुर्यात सुरमन्दिरम्।

यावन्तस्तन्तंस्तस्य ध्वजस्य वर वर्णिनि।

तावद् वर्षसहस्त्राणी कर्ता स्वर्गे महीपते।' [१०४]

सर्वदेव प्रतिष्ठा प्रकाश में कहा गया है कि–

'मान स्तमभो भवेददेवो ध्वजो देवः सदोच्यते।
तयोः प्रतिष्ठा कथिता ड़श्वमेध फल दायिनी।।' [१०५]

पुष्टिमार्ग के आचार्य गुसाँई विट्ठलनाथ जी पर छः मास तक श्रीनाथ जी के दर्शन करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। तब वे मंदिर की ध्वजा में ही श्रीनाथ जी प्रभु के स्वरूप के दर्शन करते थे।

'दीठो कलश एक अपार
सकल ब्रज को सार यामे मृग रिपुन की वार
धरयों चक्र संवारि तापर वक्र जाकी धार
पीत ध्वज फहरात तापर सूर वलि बलिहार।' – सूरदास

## २. सात अंक का लगाव ::

वैष्णव भक्तों में सात के अंक के साथ विशेष लगाव देखने को मिलता है–

१. भगवान श्रीकृष्ण ने सात वर्ष की आयु में गोवर्धन धारण किया था। इन्द्र का दम्भ भंग कर गोप भक्तों की रक्षा की थी।
२. पूरे सात दिनों तक भगवान श्री कृष्ण ने गिरिराज पर्वत को धारण किया था।
३. भगवान श्रीकृष्ण की मुरली में भी सात छिद्र हैं।
४. संगीत के मुख्य स्वर भी सात हैं।
५. राजा परीक्षित ने सात दिन में श्रीमद् भागवत सुना था तथा मोक्ष प्राप्त किया था।
६. महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवद् स्वरूप श्रीमद् भागवत का अर्थ समझाया है वह भी सात प्रकार का है– स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ, अध्यायार्थ (भागवतार्थ निबन्ध) और वाक्यार्थ, पदार्थ, शब्दार्थ और अक्षरार्थ (श्री सुबोधिनी जी)।
७. आचार्य गुसाँई विट्ठलनाथ जी के सात बालक हैं। पुष्टिमार्ग के प्रमुख सात पीठ है तथा सात निधि स्वरूप हैं।
८. भगवान श्रीनाथ जी के पाटोत्सव भी सात हैं।
९. सप्ताह के दिन सात हैं तथा वार भी सात हैं।

## ३. पुष्टिमार्ग की सप्त रंगी ध्वजा का वर्णन ::

पुष्टि सम्प्रदाय की सप्त रंगी ध्वजा जी का स्वरूप वैष्णवों के लिए कुछ इस प्रकार है।

१. पहली ध्वजा जी – श्री नाथ जी की भावना से श्याम रंग की है।
२. दूसरी ध्वजा जी – श्री स्वामिनी जी की भावना से पीले रंग की है।
३. तीसरी ध्वजा जी – श्री यमुना जी की भावना से श्याम रंग की है।
४. चौथी ध्वजा जी – श्री चन्द्रावली जी के भाव से श्वेत (सफेद) रंग की है।
५. पाँचवी ध्वजा जी – श्री राधा सहचरी जी के भाव से नीली (हरित) रंग की है।
६. छठी ध्वजा जी – श्री गिरिराज जी के भाव से जामुनी रंग की है।
७. सातवीं ध्वजा जी – श्री गोपिजनों के भाव से गुलाबी रंग की है।

## ४. ध्वजा जी के तीन स्वरूप ::

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्णके तीन स्वरूप माने गए हैं उसी प्रकार श्रीनाथ जी के मंदिर की ध्वजा के भी तीन स्वरूप माने गए हैं–आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक।

**ध्वजा जी का आधिभौतिक स्वरूप–**

विश्व में प्रत्येक राष्ट्र का अपना राष्ट्र ध्वज है, जो उस राष्ट्र का गौरव है। इस राष्ट्र ध्वज का सम्मान राष्ट्रपति से लेकर सामान्य जन–समुदाय तक करता है। अपने राष्ट्र ध्वज की रक्षा में राष्ट्र भक्त अपनी जान तक न्यौछावर कर देते हैं। इसी प्रकार श्रीनाथ जी के मंदिरों में लगनेवाली ध्वजा पुष्टि सम्प्रदाय के गौरव का प्रतीक है, यह धर्म ध्वजा भी है, जो सभी भक्तों के लिए पवित्र तथा पूजनीय है। भक्तगण ध्वजा में अपने प्रभु के स्वरूप को देखते हैं, यही ध्वजा का आधिभौतिक स्वरूप है।

**ध्वजा जी का आध्यात्मिक स्वरूप–**

भारतीय संस्कृति में नदियों को भी पूजनीय माना गया है। जैसे गंगा तथा यमुना के जलपान से ही मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इन नदियों में भगवान का आध्यात्मिक स्वरूप देखने को मिलता है। भक्त गण इन नदियों को भगवान के रूप, गुण आदि से सम्पन्न मानते हैं। इसी प्रकार मंदिर की ध्वजा में भक्तगण स्वयं प्रभु श्रीनाथ जी के प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं तथा ध्वजा प्रभु के रूप, गुण, लीला आदि से सम्पन्न मानी जाती है। यही ध्वजा जी का आध्यात्मिक स्वरूप है।

**ध्वजा जी का आधिदैविक स्वरूप–**

भगवान श्रीनाथ जी स्वयं ध्वजा जी के आधिदैविक स्वरूप हैं। वैष्णव भक्त ध्वजा जी को साक्षात् श्रीनाथ जी का स्वरूप मानते हैं और इसी भाव से ध्वजा जी को भोग पधराते हैं, आरती उतारते हैं, भेंट धरते हैं और परिक्रमा भी करते हैं। ऐसा माना जाता है कि ध्वजा चढ़ाने वाले के वंश की पहले की पचास और पीछे की पचास तथा एक अपनी, अर्थात् एक सौ एक पीढ़ी के व्यक्तियों की, यह ध्वजा नरक समुद्र से उद्धार कर देती है।[१०६] इस प्रकार वैष्णव भक्त ध्वजा जी में ही अपने प्रभु का स्वरूप देखते हैं यही ध्वजा जी का आधिदैविक स्वरूप है।

ये सप्तरंगी ध्वजा पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त के प्रमुख सात ध्येय–सेवा, सादगी, संयम, सफाई, साधना, संवेदनशीलता और सुन्दरता का सन्देश जन–जन में फैला रही है। भक्त मानते हैं कि ध्वजा दूर से ही देवालय के तथा प्रभु के स्वरूप के दर्शन करवा देती है। देवालयों–मंदिरों में ध्वज का स्थापन बड़ा लाभपूर्ण माना जाता है। इसके कारण अकाल मृत्यु, अलक्ष्मी, पाप, रोग, विपरीत आचरणों आदि का विनाश होता हैं तथा उस स्थल विशेष पर मेघ वर्षा होती है तथा वह स्थान सुभिक्ष होता है, प्रशासकों की भी विजय होती है, गाय पयस्विनी होती है और समस्त भू–मण्डल में शान्ति की स्थापना होती है–

'यत्रैतत् क्रियते राष्ट्रे ध्वज यष्टि निवेक्षनम्।
नाकाल मृत्युस्तत्रास्ति नाडलक्ष्मीः पापकृत स्वपि।।

नोपसर्गभयं तत्र नापि रोगा न विभ्रमः।
विपरीताणि नो तत्र नराणामपि भूपसाम्।।
स्वकाल वर्षी पर्जण्यः सुभिक्षं विजयी नृपः।
शान्तानि सर्व भूतानि पयास्विन्यः पयोभृतः।।'[१०७]

## १८. पुष्टिमार्ग की प्राचीनता :-

वल्लभाचार्य ने अपने नवीन मार्ग पुष्टिमार्ग में भगवान के अनुग्रह को ही मुक्ति का एक मात्र साधन माना है। वल्लभाचार्य का ग्रंथ सुबोधिनी 'श्रीमद् भागवत' के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करता है। वल्लभाचार्य ने एक ही श्लोक में पुष्टिमार्ग का सार बताया है–

'एकं शास्त्र देवकी पुत्र गींत, ऐको देवो–देवकी पुत्र एव।
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माऽप्येकं तस्य देवस्य सेव।।'

अर्थात् मुख्य शास्त्र भगवान् श्रीकृष्ण के वाक्य श्रीमद् भगवद् गीता है। मुख्य देव जिसकी सेवा करनी चाहिए, वे देवकी–पुत्र भगवान श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म हैं। भगवान श्रीकृष्ण का नाम ही मुख्य मन्त्र है और भगवान श्री कृष्ण की सेवा करना ही जीव का मुख्य कर्तव्य है।

भगवान के अनुग्रह (पोषणं तद्नुग्रह) को ही मुक्ति का एक मात्र साधन बतलाने का सिद्धान्त आधुनिक नहीं है, यह तो वेदकाल से चला आ रहा है। यह सूत्र उपनिषदों में यत्र–तत्र पाया जाता है। मुण्डक उपनिषद् में भी कहा गया है कि जो उस ईश्वर की कृपा पा सकता है वही उसे प्राप्त कर सकता है –

'नायमात्मा प्रबचनेन लभ्यो
न मेघया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृषुते तनूं स्वाम्।।'[१०८]

कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि भगवान के प्रसाद से ही आत्मा का कल्याण होता है–

'तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमान मात्मनः।'[१०९]

श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि भगवान कल्पतरु के से स्वभाव वाले हैं, जो भक्त के समस्त पापों को अपने में समा कर भक्त को मुक्ति प्रदान करते हैं–

'चित्रं तवेहितमहोऽमितयोग माया–
लीला विसृष्ट भुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मनः समदृशों विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरु स्वभावः ।।'[११०]

श्रीमद् भागवत में भी भगवान के अनुग्रह को प्रधान माना गया है। अन्ततः देखने पर पता चलता है कि वल्लभाचार्य का यह भगवद् अनुग्रह का सिद्धांत प्राचीन है। भगवान की जीवों पर असीम कृपा रहती है–

'सत्यं दिशत्यथितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थता यतः।
स्वयं विद्यते भजतामनिच्छता
मिच्छापिधानं निजपाद् पल्लवम् ।।'[१११]

## १९. भारतीय संस्कृति में पुष्टिमार्ग का स्थान :-

### १. भारतीय संस्कृति में मध्यकालीन भारत ::

एकता में अनेकता की भावना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इसकी प्रेरणा हमें वैदिक काल से मिलती रही है। भारत एक धर्मपरायण देश है। विश्व के सभी धर्म इस बात का स्वीकार करते हैं कि मानव को सत्य, आनंद व शान्ति की खोज में सर्वेश्वर परब्रह्म की शरण में जाना चाहिए। मध्यकाल का समय दासता,

यातना,पाखण्ड, विलासिता और निराश का युग था। पूरा देश मुसलमानी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित था। देश के पवित्र तीर्थ स्थल, देवालय, धर्म पीठ सर्वतः नष्ट–भ्रष्ट हो गए थे। धर्म का शुद्ध स्वरूप तिरोहित–सा हो गया था। हिन्दू शासक वर्ग पारस्परिक कलह, फूट आदि के कारण अपनी आत्मशक्ति क्षीण करते जा रहे थे। पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ 'कृष्णाश्रय स्तोत्र' में वर्तमान भारत की दुर्दशा का वर्णन किया है। मुसलमानी शासकों के अत्याचारों के अनन्तर हमें दो महानुभावों के दर्शन हुए जिन्होंने निःसाधन भक्ति मार्ग का आविष्कार किया है –महाप्रभु वल्लभाचार्य और चैतन्य गौरांग महाप्रभु ।

वल्लभाचार्य ने अपने हृदय में भगवान बालकृष्ण की पराभक्ति उद्भूत की तो लगभग इसी समय में चैतन्य महाप्रभु में उत्कट भगवद् विरह अवस्था का, ताप–क्लेश का अनुभव कराती यही परा भक्ति दृष्टिगोचर होती है।[११२]

ये जो दो प्रकार विकसित हुए उन्हें हम क्रमशः ईसाई धर्म के निःसाधन शरणमार्ग और ईरान के सूफीवाद अर्थात् उत्कट भगवद् रूप प्रिया–विरह के सिद्धान्त के साथ तुलनीय मान सकते हैं। ईसाई सिद्धान्त में निःसाधन शरणकोटि एक महत्व का प्रकार है, जिसमें जीव सदा ही ईश्वर की शरणागति स्वीकार किये रहता है और किसी भी साधन के बिना ही सदा भगवत् प्रवणता साधे रहता है। इनकी अपेक्षा बहुत उद्दीप्त मानसी सेवा का सिद्धान्त वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग में बताया है, जिसमें सतत भगवद्–सामुख्य, भगवत् प्रवणता रखना बताया गया है। सूफीवाद में ईश्वर अर्थात् भगवान प्रिया हैं और जीवात्मा प्रिय है, यह भावना रखी जाती है। वल्लभ तथा चैतन्य के सिद्धान्तों की उत्कट कक्षा में ईश्वर अर्थात् भगवान प्रिय है और जीवात्मा प्रिया है।[११३] इस तरह धर्माचार्य महापुरुष अपनी निजी आध्यात्मिक साधना के बल पर लोक पीड़ा का उपभोग करते हैं तथा उनके मंगलमय परिणामों का स्वाद जन–जीवन युग–युग तक करता रहता है। मनुष्य को मुनष्यता के अनुरूप आचरण करना चाहिए। इससे समस्त मानव जाति का कल्याण होगा। श्रुति (वेद), स्मृति (धर्मशास्त्र), सदाचार और आत्मा की

प्रसन्नता–इन चार बातों पर धर्म का निर्णय होता है। धर्म दो प्रकार के हैं–एक सामान्य, दूसरा विशिष्ट। सामान्य धर्म मानव धर्म है जबकि विशिष्ट धर्म देश काल, भौगोलिक स्थिति के अनुकूल भिन्न–भिन्न हो सकता है। जैसे ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, जैन, सिख, पारसी आदि।[११४]

भारतीय संस्कृति 'सत्य शिवं और सुन्दरम' की भावना पर आधारित है। इसी के अनुरूप विचारशील महानुभावों ने समय–समय पर भिन्न–भिन्न आदर्श व कल्याणकारी जीवन की व्याख्या दी है, जिसमें भक्ति मार्ग अपनी एक अलग विशिष्टता लिए हुए है। जो प्रारम्भ में मातृत्व भावना के प्रतिफलरूप वात्सल्य, विश्वबन्धु की भावना के प्रतिफलरूप साख्य और दाम्पत्य भावना के प्रतिफलरूप माधुर्य भाव से विश्व की क्रीड़ा स्थली में मानव जीवन के साथ चलता रहा है।

## २. समाज में पुष्टिमार्ग का स्थान ::

पुष्टिमार्ग समाज को धारण तथा पोषण करनेवाला भक्ति मार्ग है। इस मार्ग का सिद्धान्त है शुद्ध एकता का स्थापन कर जीव को ब्रह्म की ओर प्रेरित किया जाए, ताकि जीव स्वतः शुद्ध अद्वैत रूप में परिणत हो जाए। इस आत्म सम्बन्ध (जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध (ब्रह्म सम्बन्ध)) के द्वारा व्यक्ति को, समाज को स्थिर कर सुख, शान्ति, सद्भावना का विस्तार करना ही पुष्टिमार्ग का कर्तव्य रहा है। मानव मात्र को प्रेम स्नेह के साथ आगे बढ़ना चाहिए। प्राणीमात्र के शुभ कल्याण की कामना ही भारतीय संस्कृति का लक्ष्य रहा है।[११५] वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग जहाँ मन, इन्द्रियाँ, भाव आदि को पुष्ट कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को पुष्ट कर प्रेम, स्नेह, सदाचार आनन्द का साम्राज्य स्थापित करता है। पुष्टि भगवान की शक्ति है, भगवान की दृष्टि है जो भगवान के अनुग्रह को व्यक्त करती है। भगवान रस रूप–आनन्द रूप हैं। यह रस और आनंद प्रेम से उपलब्ध होता है। भगवत संबंधी प्रेम का प्रसार कर व्यक्ति अपनी, अपने परिवार की, अपने समाज की, अपने राष्ट्र की और अन्तः विश्व की उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है।

जो कुछ हो रहा है वह भगवद इच्छा से हो रहा है, यह विवेक है। हर परिस्थिति को शान्त भाव से सहन करना धैर्य है और केवल भगवान् को ही आश्रय मानना चाहिए। यह विवेक–धैर्य–आश्रय पुष्टिमार्ग का स्वर्ण सूत्र है, जो व्यक्ति विशेष द्वारा भारतीय संस्कृति में निहित है। पुष्टिमार्ग–भक्तिमार्ग में सच्चिदानंद परब्रह्म श्रीकृष्ण ही केन्द्र बिन्दु हैं। अतः जीव को अपना सर्वस्व भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित करना है–

'समस्त विषय त्यागः सर्वभावेन यत्रहि
समपर्ण च देहादेः पुष्टिमार्ग सकथ्यतो।'[११६]

सारांश यह है कि पुष्टिमार्ग–प्रेम लक्षणा भक्ति का सर्वोत्तम, विलक्षण मार्ग है जो सर्वथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप है। भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था का अपना महत्व है। पुष्टिमार्ग भी वर्ण व्यवस्था का समर्थक है। यदि प्रत्येक व्यक्ति वर्ण व्यवस्था के अनुरूप जीवन निर्वाह करे तो व्यक्ति व समाज सभी की प्रगति होगी। पुष्टिमार्ग में भगवद् सेवा का विधान कुछ इस प्रकार बनाया गया है कि समाज का कोई वर्ण (वर्ग) इससे अछूता नहीं रहता। पुष्टिमार्ग में अखिल विश्व का कोई भी प्राणी दीक्षित हो सकता है। जैसे–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, मुसलमान आदि। श्रीनाथ जी की नित्य सेवा और वर्षोत्सव की सेवा में अहीर, जाट, भाट, कायस्थ, नाई, कुम्हार, लुहार, कुनबी, दर्जी, रंगरेज, माली, धोबी आदि सभी को प्रभु की सेवा का समान अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार पुष्टिमार्ग में दलितों के उत्थान के लिए एक बड़ा कदम वल्लभाचार्य द्वारा उठाया गया था। स्त्रियों की दशा सुधारने के उद्देश्य से पुष्टिमार्ग के स्थापक वल्लभाचार्य ने ब्रजांगनाओं को पुष्टिमार्ग की गुरु बनाया है। वल्लभाचार्य का कथन है कि भगवान को देखना तो वास्तव में स्त्रियाँ जानती हैं। इस प्रकार वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग में प्राणीमात्र के द्वारा श्रीनाथ जी की सेवा व्यवस्था की थी। पुष्टिमार्ग में व्यक्ति गृहस्थ बन कर संसार की समस्त बाधाओं को साथ लेकर अपने परिवार–समाज की सहायता से भगवद्–सेवा करते हुए अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करता है। यह पुष्टिमार्ग की

महत्वपूर्ण बात है जो भारतीय संस्कृति को और उन्नत बनाती है। धर्म को जन-साधारण के लोक जीवन में नित्य के लिए जोड़ देना पुष्टिमार्गीय सेवा की ही देन है जिसके लिए समाज युग-युग तक पुष्टिमार्ग का ऋणी रहेगा।

पुष्टिमार्ग ने भक्ति और अध्यात्म के साथ कला को भी नया जीवन प्रदान किया है। पुष्टिमार्ग में बालकृष्ण लाल जी की प्रातःकाल से सायंकाल की सेवा में संगीत की मधुर लहरियाँ, विविध स्वादिष्ट व्यंजन, शृंगारि वस्त्राभूषण तथा विभिन्न ऋतुओं के अनुसार विभिन्न पर्वों में कला का सर्वोत्कृष्ट उपयोग देखने को मिलता है। जैसे-हिड़ोले, सांझी, छप्पनभोग-अन्नकूट, अलंकार इत्यादि। पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य महानुभावों ने प्रभु श्रीनाथ जी की सेवा के साथ-साथ साहित्य सृजन में भी अपना अनुपम योगदान दिया है।

मध्यकाल में ब्रज भाषा का सर्वातिशय मधुर साहित्य पुष्टिमार्ग की देन है। वल्लभाचार्य द्वारा निर्मित और विठ्ठलनाथ जी द्वारा प्रचारित-प्रसारित पुष्टि सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त और भक्ति तत्व का सरस भाष्य मुख्यतः अष्टछाप के पदों में मिलता है, जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। सूरदास जी की रचनाओं का लोहा तो आज विश्व के विद्वान वर भी मानते हैं यह पुष्टिमार्ग की ही देन है।

आज समय बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है रोज के वैज्ञानिक व तकनीकी आविष्कारों ने विश्व को छोटा कर दिया है। किन्तु आज की इस भाग-दौड़ में मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य की ओर ध्यान ही नहीं दे पाता है। मानव जीवन क्षण-क्षण आज के भौतिक प्रलोभनों में फंस कर जैसे अर्थहीन-सा होता जा रहा है। हर तरफ अशान्ति, अनीति, भ्रष्टाचार, शोषण आदि दुष्टाचार देखने को मिलते हैं। ऐसे समय में पुष्टिमार्ग ही ऐसा प्राचीन भक्तिमार्ग है जो हमारी भारतीय परम्पराओं को यथावत रखते हुए भी हमें वर्तमान युग का सरल-सुलभ जीवन जीने का मार्ग दिखाता है। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग के द्वार अखिल विश्व के लिए

आज भी खुले रखे हैं। पुष्टिमार्ग सर्वथा कृपा मार्ग (अनुग्रह) है, अतः इसे कलिकाल भी बाधा नहीं पहुँचा सकता–

'कृष्णश्चेत् सेव्यते भक्तया कलिस्तस्य फलाय हि।

******

## :: संदर्भ सूची ::


१. 'श्रावणस्याड़मले पक्ष एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्चते।।
ब्रह्म सम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्व दोष निवृतिर्हि दोषाः पंच विधाः स्मृताः।।'
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास – २१९, लेखकः प्रभु दयाल मीतल

२. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास – २१९, लेखकः प्रभु दयाल मीतल

३. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास – २३३, लेखकः प्रभु दयाल मीतल

४. + श्रीमद् भागवत् – २/१०/१
+ श्रीमद् वल्लभ दर्शन एवं भक्ति सिद्धांत – १३
लेखिका : श्रीमती प्रतिभा व्यास

५. 'केचन भक्ताः स्वगृहेषु एव स्नहेन भगवदाकारे विविघोपचारैं,
सेवां कुर्वन्तः तथैव निर्वृत्या मुख्तिमणि तुच्छां मन्यन्ते।'
अणुभाष्य–२७, लेखक :डॉ. वाचस्पति शर्मा

६. 'पुष्टिमार्गो नुग्रहैक साध्यः प्रमाणमार्गा द्विलक्षणः।'
अणुभाष्य–२५, लेखक : डॉ. वाचस्पति शर्मा

७. 'अलौकिक हि वेदार्थो न मुक्त्या प्रतिपद्यते।
तपसा वेदयुक्ता तु प्रसादात् परमात्मनः।'
अणुभाष्य–२७, लेखकः डॉ. वाचस्पति शर्मा

८. 'विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः।'– सन्यास निर्णय, ६

९. 'स्वयमिन्द्रिय कार्याणि कायवाड् मनसा त्यजेत्।
अशूरेणाडपि कर्तव्यं स्वस्या सामर्थ्थ भावनात्।।'– विवेक धैर्याश्रय, ८

१०. 'कामादिनां शिथिलत्वे भक्तिर्नोत्पत्स्यते।'– श्री सुबोधिनी टीका

११. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय–३९५
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

१२. २५२ वैष्णवन की वार्ता (भाग–।।।) (विश्लेषणात्मक अध्ययन–२२)
लेखक : द्वारकादास परीख

१३. 'महात्मयज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिक।'
अणुभाष्य–३०, लेखक : डॉ. वाचस्पति शर्मा

१४. 'यस्मात्क्षरमतीतोडहमक्षरादपि चोतमः।
अतोडस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम।।'
श्रीमद् भगवद गीता (अध्याय–१५)

१५. 'परंब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं वृहत्।'– सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक–३

१६. 'श्रवणं कीर्तन विष्णोः स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।'
श्रीमद् भागवत् महापुराण (७/५/२३)

१७. 'एवं शास्त्र देवकी पुत्रगींत, ऐको देवो देवकीपुत्र एव।
मंत्रोडप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माडप्यके तस्य देवस्य सेव।।'
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास–२३९, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

१८. + २५२ वैष्णवन की वार्ता
+ श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता
+ महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता

१९. २५२ वैष्णवन की वार्ता में 'हरिदास बनिया की वार्ता' (प्रसंग सं. १)

२०. ८४ वैष्णवन की वार्ता में 'सूरदास की वार्ता' (प्रसंग सं. १)

२१. २५२ वैष्णवन की वार्ताओं और ८४ वैष्णवन की वाताओं से
यह बात निश्चित हो जाती हैं

२२. श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।।), पृ. १४८
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

२३. + श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।।), पृ. १४८
लेखक : गजानन शर्मा
+ हीरक जयन्ती ग्रंथ–पृ. ११४
साहित्य मण्डल, नाथद्वारा

२४. ये सब्जियाँ शुद्ध घी में बनाई जाती है इनमें पानी या तेल का उपयोग नहीं
किया जाता, इस कारण ये करीब १५ दिनों तक ताजा सी बनी रहती हैं।

२५. 'मुक्ति कहे गोपाल ते मेरी मुक्ति बताय,
ब्रज रज उड़ु मस्तक लगे मुक्ति मुक्त हो जाया।'
महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रंन्थावली–३७, लेखक : हरिदास आगरा

२६. ब्रज वैभव–२९७,
लेखक : ज्यो. राधेश्याम द्विवेदी

२७. इस बात का उल्लेख गर्ग सहिता तथा स्कंध पुराण में मिलता है
महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रंन्थावली – ३७
लेखक : हरिदास आगरा

२८. विश्राम घाट–मथुरा जहाँ शमशान था उसे हटवा कर वहाँ बस्ती बसाई।
गोकुल भी जो कांटो से ढका हुआ था। उसे अपने सेवकों द्वारा कटवा कर वहाँ भी बस्ती बसाई।

२९. महाप्रभु जी की निज वार्ता, घरु वार्ता, बैठक चरित्र इत्यादि

३०. 'गुरु बिन ऐसी कौन करै।
माला तिलक मनोहर बानो, ले शिर घरै ।।
भवसागर ते बूढत राखै, दीपक हाथ घरै।
सूरश्याम गुरु ऐसो समरथ, छिन मैं ले उद्धरै ।।' (सूरदास)

३१. "श्रृण्वन्ति, गायन्ति, गृष्यन्त्य भीक्ष्णषः स्मरन्ति नन्दन्ति तवे हितं जनः।
त एवं पश्यन्त्यचिरेण तारखं भव प्रवाहो परम् पदाम्पुजम्।"

३२. 'यह माँगो श्री गोपीजन वल्लभ। मनुष्य जन्म और हरि सेवा,
ब्रज वसिवों दीजौं मोहि सुल्लभ।'

३३. श्रिया पुटष्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्टयेलयोर्जया।
विधया–विधया शक्त्या मायया च निवेवितम्।। – श्रीमद् भागवत्।
(१०.३९.५५)

३४. 'गोपिका प्रोक्ताः गुरवः' सन्यास निर्णय (षोडष ग्रंन्थ)

३५. 'सेवा रीति–प्रीति ब्रज जन की जनहित जग प्रकटाई।'

३६. 'कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाघा
किमपरमवशिष्ट पुष्टिमर्यादियो में,
यदि वदति च किंचित् स्मेरहंसोदित श्री द्विजक्रमणि पडत्क्त्या मुक्ति शुंक्त्यातदा किं।। १ ।।
श्यामसुन्दर ! शिखण्डशेखर ! स्मेरहारय ! मुरलीमनाहर !
राधिकारसिक ! मां कृपानिघे ! स्वप्रियाचरण–किं करी करु ।। २ ।।
प्राणनाथ ! वृषभानु नन्दिनी–श्री मुखाब्जर–सलोल षट्पद।
राधिकापदतले कृतस्थितिस्त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर ।। ३ ।।
संविघाय दशने तृणं विभो !
प्रार्थये ब्रजमहेन्द्र–नन्दन !
अस्तु मोहन। तवातिवल्लभा जन्मजन्मानि मदोश्वरी प्रिया।। ४ ।।'

३७. श्री वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धांत और सन्देश– (।।)
(श्री वल्लभ सम्प्रदाय में श्री राघा–७८), लेखक : प्रो. श्री कण्ठमणिजी शास्त्री

३८. श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता
३९. श्रीमद् भागवत महापुराण (दशम स्कन्घ)
(गोवर्धन धारण लीला प्रसंग)
४०. श्री नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता
४१. श्री नाथ जी के प्राकट्ंय की वार्ता
४२. + श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता, + श्री महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता
४३. भगवान् के गुण, तत्व, रहस्य और प्रभावादि को जानकर श्रद्धा प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना और उनकी समस्त आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति हैं।
४४. षट् ऋतु की वार्ता
४५. वैष्णव दर्शन माला–(रासलीला : जिज्ञासा, आक्षेप, समाधान)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
४६. श्रीमद् भागवत महापुराण (१०.२९.१९)
४७, ४८, ४९ वैष्णव दर्शन माला
(पुष्टिमार्ग में रास लीला का स्वरूप)
लेखक : डॉ. गजानंन शर्मा
५०. कुछ अन्य विचारक विद्वान २९ से ३३ तक के पाँचों अध्याय को रासपंचाध्यायी मानते हैं।
पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ – (रासपंचाध्यायीः भागवत – ३९५)
लेखक : गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट
५१. पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, (रासपंचाध्यायीः भागवत – ३९५)
लेखक : गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट
५२. 'रासोत्सवः सम्प्रवृती गोपीमण्डलमण्डितः।'– वैष्णव दर्शन माला
(पुष्टिमार्ग में रासलीला का स्वरूप) लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
५३. उत्सवोंनाम मनस : सर्व विस्मारक आह्लादः।
वैष्णव दर्शन माला,
(पुष्टिमार्ग में रासलीला का स्वरूप) लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
५४. निःरसाधन जीव–गोपियाँ–जो ज्ञान, कर्म काण्ड आदि के शास्त्रार्थ – वेदोक्त मार्गो को नहीं जानती है।
५५. पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, (रास पंचाध्यायी : भागवत – ३९६)
लेखक : गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट
५६. ब्रज लोक वैभव (रास लीला की प्राचीन परम्परा – ४३३)
लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल
५७. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७४, १७६)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

५८, ५९, पुष्टि पाथेय – (रास : एक महती लोक कला – २९०, २८९)

लेखक : श्री शर्मनलाल अग्रवाल

६०. ब्रज लोक वैभव (रास लीला की प्राचीन परम्परा –४३६)

लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल

६१. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ

(रास लीला की प्राचीन परम्परा – ८८०, ८८१)

लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल

६२. हीरक जयन्ती ग्रंथ

(ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७७)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६३. पोद्दान अभिनन्दन ग्रंथ

(रास लीला का उदय और विकास – ८८५) लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल

६४. पुष्टि पाथेय

+ (रास : एक महती लोक कला – २८९)

लेखक : श्री शर्मनलाल अग्रवाल

+ (रास और उसका विकास – ३०९)

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

६५. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७६)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६६. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७८)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६७. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १८१)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६८. मध्यकाल में भैरवी, गौड़ी, रामकली, मालव, विलावल, षट, सोरठ, हमीर जैसे रागों का प्रयोग रासलीला गायन में होता था। किन्तु आज उचित प्रशिक्षण के अभाव में सामान्य संगीत ही सुनने को मिलता हैं।

६९. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन्त मंचः रासलीला – १८०)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

७०. पुष्टि पाथेय

(पुष्टिमार्गीय चिन्ह : तिलक – १०९)

लेखक : वसन्त राम शास्त्री

७१. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१४,

लेखक : हरिदास आगरा

७२. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१५,
लेखक : हरिदास आगरा

७३. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१४,
लेखक : हरिदास आगरा

७४. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१८,
लेखक : हरिदास आगरा

७५. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१८,
लेखक : हरिदास आगरा

७६, ७७, हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(पुष्टिमार्ग वैष्णवों के लक्षण : तुलसी कण्ठी व तिलक का महत्व – १७७)
लेखिका : दक्षा भाटिया

७८. हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(पुष्टिमार्ग वैष्णवों के लक्षण : तुलसी कण्ठी व तिलक का महत्व – १७७)
लेखिका : दक्षा भाटिया

७९. वैष्णव दर्शन माल (शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : गजानन शर्मा

८०. 'लीला नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्।
न तया कृत्या बहिः कार्य जन्यते। जनितमपि कार्य नाभिप्रेतम्।
नापि कर्तरि प्रयासं जनयति। किन्तु अन्तः करणे पूर्ण आनंद तदुल्लासेत कार्य
जनम सदृशी क्रिया कातिदुत्पद्यते।'
वैष्णव दर्शन माला
(शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

८१. 'न हि लीलायां किंचित् प्रयोजनमस्ति लीलाया एव प्रयोजनत्वान्'
वैष्णव दर्शन माला
(शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

८२. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (I) – २०४
लेखक : डॉ. गजानन. शर्मा

८३. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (II)
(लीला का रहस्य – २५२) लेखक : पण्डित बलदेव उपाध्याय

८४, ८५, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (भाग– ३)

(विश्लेषणात्मक अध्ययन) लेखक : द्वारकादास परीख

८६. 'स्वलीला कीर्ति विस्तारात् लोकेष्वनु जिघुक्षुता
अस्य जन्मादि लीलांनां प्रकटचे हेतुरुतम ।।'
पोद्दार अभिनंदन ग्रथ (प्रकट लीला या नर लीला – ६३५)
लेखक : हजारीप्रसाद द्विवेदी

८७. 'लीला विशिष्टमेव शुद्ध परमं ब्रह्म, न कदाचित् तद्रहित मित्यर्थः
ते च (लीलायाः) जित्यत्वम् ।'
वैष्णव दर्शन माला (शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

८८. 'सदानंतैः प्रकाशैः स्वैलींलामिश्च स दीव्यति ।
तत्रैकेन पकाशेन कदाचिज्जगदंतरे ।।
सदैव स्वपरीवारैर्जन्मादि कुरुते हरिः ।'
पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ
(प्रकट लीला या नर लीला – ६३५)
लेखक : हजारीप्रसाद द्विवेदी

८९. 'ब्राह्माभ्यन्तरभेदेन आन्तरं तु परं फलम् ।'
श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व सिद्धान्त और संदेश – (।) – २०४
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

९०. २५२ वैष्णवन की वार्ता (भाग– ३) (विश्लेषणात्मक अध्ययन – ४४, ४५)
लेखक : द्वारकादास परीख

९१. वैष्णव दर्शन माला (शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

९२. हीरक जयन्ती ग्रंथ (पुराणों में ब्रज महिमा – १०),
लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र

९३. हीरक जयन्ती परिशिष्टांक (ब्रज गौरव–गरिमा – ८२)
लेखक : डॉ. जगदीश लवानिया

९४. 'वन्दे नन्द ब्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद् गीतं पुनाति भुवनयंत्रम् ।'– हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(पुराणों में ब्रज महिमा – १६) लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र

९५. 'आसामहो चरणरेणुजषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा । भेजुर्मुकुन्द पदवी श्रुतिभिर्विभृग्याम् ।।'
पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ (प्रकट लीला या नर लीला – ६३६), ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी

९६. २५२ वैष्णवन की वार्ता (भाग– ३)

(विश्लेषणात्मक अध्ययन– ४५)
लेखक : द्वारकादास परीख

९७. श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (II)
(पुष्टिमार्ग के परम सेव्य भगवान् श्री नाथ जी – ६२)
लेखक : श्री हरिनारायरण नीमा

९८. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग – १९१
लेखक : सीताराम चतुर्वेदी

९९. श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (II)
(पुष्टिमार्ग के परम सेव्य भगवान् श्री नाथ जी – ६२)
लेखक : श्री हरिनारायरण नीमा

१००. श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता

१०१. हीरक जयन्ती ग्रंथ (भगवान श्री नाथ जी का स्वरूप – ७९)
लेखक : नन्दलाल न्याती

१०२. हीरक जयन्ती ग्रंथ (वल्लभ सम्प्रदाय के परमाराध्य भगवान श्री नाथ जी – ७१)
लेखक : श्री श्यामप्रकाश देवपुरा

१०३. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(देवालय ध्वजः महत्व और भगवान श्री नाथ जी के सप्त ध्वज – ४२१)
लेखक : रामशरण

१०४, १०५, हीरक जयन्ती ग्रंथ
(देवालय ध्वजः महत्व और भगवान श्री नाथ जी के सप्त ध्वज – ४२१, ४२२)
लेखक : रामशरण

१०६. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(श्री नाथ जी मंदिर का ध्वज दण्ड और उसका महत्व – ५५६)
लेखिका : डॉ. पुष्पा भारद्वाज

१०७. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(देवालय ध्वजः महत्व और भगवान श्री नाथ जी के सप्त ध्वज – ४२१)
लेखक : रामशरण

१०८. वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त – ३६०
लेखक : आचार्य बलदेव उपाध्याय

१०९, ११०, १११, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य औंर सिद्धान्त – ३६०,
लेखक : बलदेव उपाध्याय

११२. 'भक्ति मार्गो बहु विद्यमार्गो भामिनी भाव्यते' – श्रीमद् भागवत् के इस कथन के प्रकाश में अनेकानेक भागवत धर्माचार्यों ने भक्तिमार्ग का प्रतिपादन अपने

अपने दृष्टिकोण से किया है।

– श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व सिद्धान्त और संदेश–(।।) (भक्ति मार्ग में पुष्टि भक्ति की महता – ५८)

लेखक : गोस्वामी जी ब्रज रत्न लालजी महाराज

११३. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (।।)
(निः साधान भक्तिमार्ग : एक तुलनात्मक दृष्टि – २५०)
लेखक : श्री के. का. शास्त्री

११४. हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(भारतीय संस्कृति में विश्व शान्ति, साम्प्रदायिक सद्भावना एवं राष्ट्रीय एकता की भावना – ३६४)
लेखक : भगवानलाल बंशीलाल

११५. सर्वे भवंतु सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत।।
हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(भारतीय संस्कृति में विश्व शान्ति, राष्ट्रीय एकता की भावना – ३६१)
लेखक : भगवानलाल बंशीलाल

११६. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ (वल्लभाचार्य का साधन मार्ग – १९७)
लेखक : श्री बलदेव उपाध्याय

******

Chap-3

### तृतीय अध्याय :

# पुष्टिमार्गीय कीर्तन साहित्य : प्रारम्भ और विस्तार

## १. भारतीय संगीत :-

### १. संगीत की भूमिका ::

संगीत किसे मोहित नहीं करता? विद्वानों ने संगीत का मूल सामवेद से माना है, संगीत का इतिहास उतना ही पुराना है जितना वेदों का। संगीत विश्व व्यापी है, अनादि है। अन्तर से निकला संगीत जड़-चेतन सभी पर समान प्रभाव डालता है। श्रीमद् भागवत में कहा गया है।

'नधस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत–मावर्त लक्षित मनोभव भग्रवेगाः।
आलिङ्गान स्थगितमूर्मि भुजैर्मुरारे गृहन्ति पादयुगलं कमलो पहाराः ।।'[१]

अर्थात् अरी सखी ! देवताओं, गौ और पक्षियों की बात क्यों करती हो? वे तो चेतन हैं। इन जड़ नदियों को नहीं देखती? इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदय में श्याम सुन्दर से मिलने की तीव्र आकांक्षां का पता चलता है! उसके वेग से ही तो इनका प्रवाह रुक गया है। इन्होंने भी प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि सुन ली है। देखो, देखो ! ये अपनी तरंगों के हाथों से उनके चरण पकड़कर कमल के फूलों का उपहार चढ़ा रही हैं और उनका आलिंगन कर रही हैं, मानों उनके चरणों पर अपना हृदय ही निछावर कर रही हैं।

विद्वानों ने संगीत के आदि प्रेरक के रूप में शिव और सरस्वती को माना है। अतः संगीत कला को प्राप्त करना देव कृपा के बिना सम्भव नहीं है। अतः संगीत दैवी विद्या है। कहते हैं संगीत का प्रयोग गंधर्वो द्वारा होता है, इसलिए इसे 'गंधर्व विद्या' भी कहा गया है।

### २. संगीत की परिभाषाएँ ::

गीत में सम् उपसर्ग लगाने से संगीत बनता है जिसका अर्थ है सम्यक गान। इस प्रकार इसमें (संगीत में) गीत, वाद्य और नृत्य तीनों का समावेश है।[२]

संगीत शब्द से भारतीय संगीत में गायन, वादन तथा नर्तन तीन कलाओं का बोध होता है। इन तीनों के सम्मिलित रूप को संगीत कहते हैं अथवा संगीत के ये तीनों अंग माने गए हैं [३]

'गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रय संगीतमुच्यते।'

'गीत वाद्य नर्तन च त्रय संगीतमुच्यते।'

'गीत वादित्र नृत्यानां त्रय संगीतमुच्यते।'

श्री भातखण्डे जी का कथन है 'संगीत समुदाय वाचक नाम है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। ये कलाएँ गीत, वाद्य एवं नृत्य हैं। इन तीनों कलाओं में गीत का प्राधान्य है। अतः केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।'[४]

लैडन ने कहा है 'संगीत तो विश्व भाषा है। जहाँ वाणी मूक हो जाती है, वहाँ संगीत फूट पड़ता है। संगीत हमारी भाषाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। शब्दों में जिनकी प्रखरता और गहराई समा नहीं सकती हमारी ऐसी अनुभूतियों को संगीत स्वरों का रूप देता है।'[५]

सृष्टि के कण–कण में संगीत व्याप्त है। पक्षियों का कलरव, पानी का छम–छम बरसना, मेघों का गरजना, पत्तों की मर्मर ध्वनि, आँधी का हाहाकार, समुद्र–गर्ज़न, विशाल आकाश के तारों की जगमगाहट आदि प्रकृति के प्रत्येक कण में संगीत निहित है। नारद संहिता में कहा गया है कि–'चिडियाँ, भौंरे, पतंगे, हरिण आदि सभी जीव गाते हैं, अतः संगीत सर्व दिशाओं में व्याप्त है।'[६] संगीत इतना मोहक और मादक होता है कि वो देश, काल, जाति, भाषा, संस्कृति, धर्म आदि किसी की भी सीमाओं, बाधाओं व मर्यादाओं को स्वीकार नहीं करता।

रोम्यारोलाँ ने कहा है–'उच्चत्तम संगीत का प्रभाव देश, काल और व्यक्ति तक सीमित नहीं है। यह सबको अपने अक्षय भण्डार से कुछ न कुछ अवश्य देता

है।'[७] कहते हैं संगीत एक जीवित जादू है, तभी तो बीन के स्वर पर काला जहरीला साँप भी अपना स्वभाव भूल कर नाचने लगता है।

संगीत में गायन कला का सम्बन्ध नाभि एवं कण्ठ से है, वादन का उसकी तन्त्रकारी से और नृत्य का शरीर की मुद्रण कला से। स्वभाव सिद्ध और निरावलम्ब होने कें कारण कंठ–संगीत को पूर्ण तथा सर्वप्रधान और यंत्र संगीत तथा नृत्य को वाद्य–यंत्रों की आधीनता से सम्पादित होने के कारण मध्यम माना गया है। अतः संगीत में गाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है तत्पश्चात् वादन और नृत्य को।[८]

## ३. संगीत के आधार ::

**नाद** – संगीत का आधार नाद है। शास्त्रों में नाद को ब्रह्म कहा है–'नादो ब्रह्म न संशयः।'[९] नाद का आदि स्थान भगवान् शिव का डमरू और उसका अस्तित्व वेद से भी पूर्व का माना गया है।[१०] संगीत रत्नाकर ग्रंथ के स्वर प्रकरण के प्रारम्भ में ही कहा गया है–

'चैतन्य सर्वभूतानां विवृत जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानंदम द्वितीयमुपास्महम्।।'[११]

अर्थात् जो प्राणी मात्र का चैतन्य है और जो जगत के रूप में विकसित हुआ है, जो आनंदमय और अद्वितीय है, उस नाद ब्रह्म की हम उपासना करते हैं। नाभि के ऊपर हृदयस्थान से ब्रह्मरूध्र स्थित प्राणवायु में एक प्रकार का शब्द होता है, उसी को नाद कहते हैं–.

'नाभेरुर्ध्व हृदिस्थानान्मारुतः प्राणसंज्ञकः।
नदति ब्रह्मरूध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्तितः।।'[१२]

गीत गान नाद पर आधारित है, नाद को कण्ठ से या वाद्य यंत्रों से प्रकट करते हैं। नृत्य भी गान और वाद्य पर आधारित है। अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य ये तीनों कलाएँ नादाधीन हैं–

'गीतं नादात्मकं वाद्य नादव्यक्तया प्रशस्यते।

तद्वयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम्।।'[93]

नाद के दो प्रकार हैं – अनाहत तथा आहत।[94] नादब्रह्म की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की उपासना आप हो जाती है, क्योंकि ये नाद से भिन्न नहीं हैं।

'नादोपासनया देवा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः।

भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादिते तदात्मकाः।।'[95]

नाद अर्थात् वह ध्वनि जो सुनने में प्रिय लगे उसे संगीतोपयोगी नाद कहा जाता है।

**श्रुति** – 'श्रु' धातु जो सुनने के अर्थ में है उसमें 'ति' प्रत्यय लगाने से श्रुति शब्द बनता है। श्रुति अर्थात् जो कान से सुनाई दे तथा जिसको श्रवणोन्द्रिय या कान का परदा ग्रहण कर सके या पकड़ सके, उसे श्रुति कहते हैं। वह ध्वनि, जो गीत में प्रयोग की जा सके और जो एक्–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, उसे श्रुति कहते हैं। श्रुति की परिभाषा समझने के लिए तीन बातों का ध्यान रखना अनिवार्य है – (अ) आवाज संगीतोपयोगी हो, (ब) ध्वनि साफ़–साफ़ सुनाई दे और (क) ध्वनि एक्–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके। अतः श्रुति की परिभाषा इस प्रकार होगी–'वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो कानों को साफ सुनाई दे और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, उसे श्रुति कहते हैं। श्रुतियाँ बाईस मानी गई हैं।'[96]

**स्वर** – जो नाद श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् तुरन्त निकलता है जो सुनने में रंजक और मधुर लगता है उसे स्वर कहते हैं। स्वर सात प्रकार के होते हैं– सा, रे, ग, म, प, ध और नि अर्थात् षडज्, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। संगीत दर्पणकार के मतानुसार मोर षडज का, चातक ऋषभ का, बकरा गांधार का, कौंच मध्यम का, कोकिला पंचम का, मेढ़क धैवत का और हाथी निषाद का – इस क्रम से सप्त स्वरों का उच्चारण करते हैं।[97]

**ग्राम** – स्वरों के समुदाय को ग्राम कहते हैं। ग्राम मूर्च्छना के आधारभूत होते हैं

'ग्रामः स्वर समूहः स्यान्मूटर्छनादेः समाश्रयः।'[98]

ग्राम तीन होते हैं – षडज्, मध्यम तथा गांधार

'षड्जमध्यमगांधार संज्ञाभिस्ते समन्वितः।'[१९]

**मूर्च्छना** – सात स्वरों के क्रमान्वित आरोहण–अवरोहण को मूर्च्छना कहते हैं। मूर्च्छना ग्राम के आश्रित होती है। ग्राम को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक बजाना ही मूर्च्छना कहलाता है।[२०] तीन ग्राम होते हैं और प्रत्येक में सात–सात मूर्च्छनाएँ होती हैं।

**तान** – रागों के स्वल्प को तानने, विस्तृत करने तथा फैलाने को तान कहते हैं। तान दो प्रकार की होती है – शुद्ध तान और कूटतान।[२१]

**सप्तक** – सात स्वरों के क्रमिक समूह (सा, रे, ग, म, प, ध, नि) को भारतीय संगीत में सप्तक कहते हैं। भारतीय संगीत में सप्तक के तीन प्रकार माने जाते हैं – मन्द्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक।[२२]

**वर्ण** – स्वरों को यथानियम उच्चारण अथवा विस्तार करने तथा गान क्रिया को वर्ण कहते हैं। गायन में आवाज को स्वरों के कारण जो चाल मिलती है उसको गान क्रिया अथवा वर्ण कहते हैं। यह गान क्रिया अथवा वर्ण चार प्रकार के हैं – स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी।[२३]

**अलंकार** – नियमित वर्ण समुदाय को अलंकार कहते हैं।[२४]

**पकड़** – जिस स्वर समुदाय से किसी राग का बोध होता है उसे पकड़ कहते हैं।[२५]

**जाति** – स्वरों के नाम वाली सात शुद्ध जातियाँ होती हैं–षडजा, ऋषभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और नैषादी।[२६]

**मेल या ठाट** – किसी भी प्रकार के स्वरों का एक समूह मेल (ठाट) कहलाता है। मेल राग को प्रकट करने की शक्ति रखता है –

'मेल स्वरसमूहः स्याद्राग व्यञ्जनशक्तिमान।'[२७]

**राग** – राग शब्द की उत्पति रज् धातु से हुई है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना। वह ध्वनि जो स्वर और वर्ण द्वारा शोभित हो और जिसमें रंजकता हो उसे राग कहते हैं–

'स्ववर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुनः ।

रंज्यते येन चः कश्चित् स रागः संमत्: सताम् ।।'[२८]

संगीत रत्नाकर में राग की परिभाषा इस प्रकार की गई है–

'योडसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः ।

रंजको जन चित्तानां स रागः कथितो वुधैः ।।' [२९]

अर्थात् ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौंदर्य प्राप्त हुआ हो और जो सुनने वालों के चित्त को प्रसन्न करे उसे राग कहते हैं। संगीत पारिजात में कहा गया है –

'रंजकः स्वरसन्दर्भो राग इत्यभिधीयते।'[३०]

अर्थात् स्वरों का एक रंजक–संदर्भ (सुसंगठित समूह) राग कहलाता है। अतः राग उस गाने या बजांनें को कहते हैं, जो अपनी मधुर ध्वनि से समस्त सृष्टि के प्राणी को भा जाए। चाहे वह कण्ठ से गाया हो अथवा किसी वाद्य पर बजाया गया हो।

## ४. मानव जीवन में भक्ति संगीत ::

हमारी संगीत कला का ध्येय मोक्ष प्राप्ति है। हमारी भारतीय संगीत की परम्परा का आदर्श है मानव जीवन को आनन्द व शान्ति प्रदान करना। इसी आनन्द के अनुसंधान में संगीत के माध्यम से मनुष्य मानसिक और आध्यात्मिक शान्ति का मार्ग प्रस्तुत कर लेता है। शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्यों द्वारा गायन, वादन तथा नृत्य तल्लीनता से किया गया हो तो वह भगवान विष्णु को प्रसन्न करता है।

'देवस्य मानवो गानं वाद्य नृत्यमतन्द्रितः ।।

कुर्याद्विष्णोः प्रसादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्तितम् ।।'[३१]

उपनिषदों में यह भी कहा गया है कि 'तघ इमे वीणायां गायंत्येतं ते गायंति तस्माते घनसनयः' अर्थात् वीणा द्वारा जो गान करते हैं वे परमात्मा का ही गान करते हैं और धनवान् होते हैं।[३२] श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है कि 'वेदाना सामवेदोडस्मि'–

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

इस प्रकार भगवान् ने सामवेद रूप से साम–संगीत की स्वर लहरियों से कतिपय जनों के अनेक प्रकार के कष्ट दूर किये थे।[33] भगवद् प्राप्ति के अनेक साधनों में से एक साधन है परमेश्वर की भक्तिमय संगीत सेवा। भक्ति और संगीत दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। संगीत कला के साथ भक्ति का समन्वय मनुष्य को जीवन के उच्चत्तम शिखर पर आरूढ़ करता है।

भक्ति और संगीत का सम्बन्ध शरीर और आत्मा के सम्बन्ध जैसा है। विद्वानों का मत है कि हमारा संगीत अति प्राचीन, पवित्र, अलौकिक ईश्वर रूप है। भगवान के गुणगान करनेवाले को कभी कोई भय नहीं रहता, क्योंकि संगीत का लक्ष्य आत्म कल्याण करना है। जहाँ संगीत है वहीं ईश्वर निवास करते हैं। स्वयं विष्णु नारद जी से कहते हैं 'हे नारद ! न तो मैं वैकुंठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, अपितु मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वहीं मैं निवास करता हूँ–

'नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः ।।'[34]

श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि – वह नारद धन्य हैं जो भगवान् की कीर्ति को अपनी वीणा पर गा–गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते हैं, साथ–साथ इस त्रितापतप्त जगत् को भी आनन्दित करते रहते हैं।[35] भगवान् की परम प्रिय सखियों, सहचरियों एवं ब्रज गोपियों का भगवत् प्रेममय 'गोपी गीत' संसार प्रसिद्ध दिव्य संगीत है जिसके कारण अन्तर्हित भगवान् श्रीकृष्ण को गोपियों के बीच प्रकट होना पड़ा था।

'तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्त्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।।'[36]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संसार के समस्त प्राणी संगीत की भक्तिमयी आराधना द्वारा परम परमेश्वर का अनुग्रह प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी भारतीय संगीत कला भी प्रारम्भ से धर्म का आधार लेकर चली है। यही नहीं, भारतीय संगीत की धार्मिक महत्ता पर प्रकाश डालते हुए रवीन्द्रनाथ कहते हैं– 'मुझे ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत धार्मिक व्याख्या से परिपूर्ण मानवी अनुभवों की अपेक्षा दैनन्दिन अनुभूति से अधिक सम्बन्ध रखता है। संगीत का आध्यात्मिक मूल्य है। यह दैनन्दिन घटनाओं से आत्मा को मुक्त करता है और आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध का गीत गाता है। ..... हमारा संगीत श्रोता को दिन–दिन के मानवीय सुख–दुःख से दूर हटाकर, सृष्टि के मूल विश्रान्ति और त्याग की ओर ले जाता है।'[३७] इसीलिए संगीत रत्नाकरकार ने कहा है–'उस गीत के माहात्म्य की कौन प्रशंसा करने में समर्थ है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने का यही एक साधन है।'[३८] संगीत के माध्यम से मनुष्य अपने हृदय में उत्पन्न नाद द्वारा रसात्मक भगवान की भक्ति सरलता, सहजता से कर सकता है। भर्तृहरि ने संगीत को मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना है –

'साहित्य संगीत कला विहीनः।
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणाहीनः।।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः।
तद्भागधेयं, परमं पशूनाम्।।'[३९]

हिन्दू संस्कृति में तो जन्म से मृत्यु तक के समस्त मांगलिक कार्यों में संगीत जुड़ा रहता है। अतः सृष्टि के प्रत्येक कण–कण में संगीत को महसूस किया जाता है। संगीत हमारे लिए ईश्वर का दिया हुआ एक अमोघ वरदान है।

## ५. संगीत का साहित्यिक इतिहास ::

जब सम्पूर्ण सृष्टि और मावन जीवन के कण–कण में संगीत विद्यमान है तो साहित्य में भी संगीत का होना अनिवार्य है। साहित्य और संगीत की ओर दृष्टि करें तो हमें दोनों का ध्येय एक ही मिलता है। दोनों ही हृदय में शान्ति की अपूर्व धारा प्रवाहित कर सकते हैं। दोनों का उद्देश्य आत्मा को आनन्दित करना है तथा दोनों

का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है और निरन्तर मनुष्य पर पड़ता रहता है। भागवतकार ने संगीत की आध्यात्मिक महत्ता की ओर संकेत करते हुए कहा है कलियुग दोषों का खजाना है, किन्तु उसका एक गुण है कि कलयुग में भगवान् श्री कृष्ण के संकीर्तन से प्राणीमात्र की सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति होती है।

'कले दोंषनिधे राजत्रस्ति होको महान गुणः।
की र्तनादेव कृष्णस्य मुक्त संगः पर व्रजेत्।।'[४०]

यद्यपि संगीत शास्त्र के आचार्यत्व के लिए भगवान शंकर और मुनिराज नारद का नाम उल्लेखनीय है। तथापि नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र की भाँति संगीत शास्त्र में भी इतिहास प्रसिद्ध प्रथम आचार्य का गौरव 'महामुनि भरत' को प्राप्त है। इन्होंने अपनी नाट्य रचना में गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाओं का विस्तृत वर्णन किया है।[४१] वैदिक युग के पश्चात् भरत का नाट्यशास्त्र; ११ वीं शती में मिथिला के राजा नान्यदेव का 'हृदयालंकार'; पश्चिमी चालुक्य वंशज महाराज सोमेश्वर के 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि'; जगदे मल्ल के 'संगीत चूड़ामणि'; चालुक्यवंशीय सौराष्ट्र नरेश हरिपाल द्वारा रचित 'संगीत सुधाकर'; सोमराज देव कृत 'भारतीय संगीत'; जयदेव रचित 'गीत गोविन्द'; सारंगदेव रचित 'संगीत रत्नाकर' आदि कुछ ऐसे बेजोड़ ग्रंथ हैं, जिनके आधार पर प्राचीन भारतीय संगीत की जानकारी प्राप्त हो सकती है।[४२]

भक्ताचार्योंने पुराणों और भागवत के आधार पर श्री कृष्ण को पूर्णावतार तथा बाकी चौबीस अवतारों को अंशावतार माना है। इनमें से दस अवतारों को मुख्य माना गया है, इन दशावतारों के गुण, चरित्रों के कीर्तन, श्रवण और स्मरण को भक्ति संगीत का मुख्य आधार माना गया है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने परब्रह्म के सगुण अवतारों के प्रति अपनी भक्ति भावना का काव्य के द्वारा प्रचार–प्रसार किया। इन भक्त कवियों ने अपने आराध्य के ऐसे सर्व समर्थ रूपों को जनता के सामने रखा कि जनता इन भक्त वत्सल रूपों पर मुग्ध–सी हो गई।

ईसा की चौथी शताब्दी में दक्षिण भारत में विष्णु की प्रेम भक्ति की रसमयी धारा आलवार भक्तों द्वारा प्रसारित की गई। आलवार भक्तों के उत्कर्ष का समय ईसा की सातवीं से नौवीं शताब्दी माना गया है। आलवार भक्त १२ हुए थे। इन्होंने भागवत धर्म और वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। इन भक्तों में स्त्री प्रचारिकाएँ भी थी। इन भक्तों ने चार हजार गीत तमिल भाषा में लिखे जो 'प्रबन्धम्' के नाम से संग्रहित हैं। विद्वानों का मत है कि आलवार भक्तों के सिद्धान्त ही विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की पृष्ठभूमि बने हैं। आलवार भक्तों ने वात्सल्य, दास्य और कान्त भावों से भगवान की भक्ति की और उन्हीं भावों को अपने गीतों में लिखा।

कृष्ण-काव्य की इस परम्परा में अब मैं कुछ मुख्य भक्त कवियों का तथा उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करती हूँ –

**जयदेव :** विद्वानों ने जयदेव का समय ईसा की १२वीं सदी माना है। जयदेव का मुख्य ग्रंथ 'गीत गोविन्द' है। इसमें जयदेव ने राधा-कृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन संस्कृत भाषा में किया है। जयदेव ने राधा कृष्ण के प्रति अपने भक्ति भाव को मधुर काव्य का रूप दे संगीत की स्वर लहरियों से सिद्ध किया है। गीत गोविन्द के प्रत्येक पद में आठ-आठ चरण होने से इन्हें अष्टपदी कहा जाता है। इस प्रकार गीत गोविन्द में २४ अष्टपदियाँ प्राप्त हैं। विद्वानों ने जयदेव को सम्प्रदाय की दृष्टि से विष्णुस्वामी परम्परा के अधिक निकट कहा है। गीत गोविन्द को भारतीय गीत काव्य की अमर कृति माना गया है। हवेली संगीत के भक्त कवियों और संगीतकारों में जयदेव को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त है। पुष्टि सम्प्रदाय में नियत ऋतु में, नियत दिन पर जयदेव की कुछ अष्टपदियाँ कीर्तन में गाई जाती हैं।[४३]

**विद्यापति :** जयदेव के बाद दूसरा स्थान विद्वानों ने कवि विद्यापित का माना है। विद्यापित का समय ईसा की १४ वीं सदी माना गया हैं। राधा-कृष्ण की सम्मिलित उपासना इनकी भक्ति का नियम था। विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का जो विशद वर्णन किया है उस पर विष्णुस्वामी तथा निम्बार्क मतों का

प्रभाव दिखाई पड़ता हैं। विद्यापति के पद सुंदर, स्निग्घ एवं भावपूर्ण होने से लोगों के हृदयों को स्पर्श कर चुके थे। इन भक्तिमय पदों में नख–शिख वर्णन, प्रेम–मिलन, रूप–वर्णन, मान, अभिसार और रति प्रसंगादी के वर्णन हैं। इस प्रकार के गीति पदों में प्रेममय भक्ति की उत्कृष्ट भावना के कारण भक्तिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदायों में उनके पदगान को आदरणीय स्थान प्राप्त हैं। विद्यापति की रचनाएँ संस्कृत, मैथली एवं ब्रज भाषा में पाई जाती हैं। पुष्टि सम्प्रदाय में भी विद्यापति के कुछ पदों का गान कीर्तन में होता है।[४४]

विद्यापति के समय के बंगाल के भक्त कवि **चंडीदास** और दक्षिण के भक्त कवि **नामदेव** के नाम कीर्तन गान पद्धति में उल्लेखनीय हैं। इन दोनों भक्त कवियों ने श्री कृष्ण की लीलाएँ तथा अन्य २४ अवतारों के स्तुति गान अपनी लोक भाषा में किए हैं।

विद्वानों का मत है कि पुष्टिमार्गीय संगीत के पद गान के आरम्भिक समय से लगभग ५० वर्षों पूर्व भक्त **नरसिंह महेता** ने श्री कृष्ण की लीला के भावात्मक पदों का संगीत की शास्त्रीय राग–रागिनियों में गान किया था। भक्त नरसिंह के पद पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन संग्रह में तो मिलते हैं किन्तु इनका गान सम्प्रदाय की षष्ठ पीठ (सूरत) में ही किया जाता है। नरसिंह के भक्ति प्रवाह में श्रीमद् भागवत पुराण का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनके पदों में कृष्ण जन्म के पद, वसन्त के पद, शरदोत्सव के पद, हिंडोला के पद इत्यादि लीलाओं का गान हुआ है। अतः कह सकते हैं कि नरसिंह की पद रचनाएँ अष्टछाप परम्परा के पद–गान के समान ही मिलती हैं।[४५]

**कबीर** का समय ईसा की १४ वीं सदी माना गया है। कबीर रामानंद के शिष्य थे। कबीर ने अपने काव्य में हिन्दू–मुस्लिम एकता, संसार की माया, हृदय की शुद्धि–प्रेम का महत्व, ऊँच–नीच, जाति–पाँति आदि सभी प्रकार के विषयों पर रचना की है। कबीर ने राम नाम महिमा, गुरु महिमा का विशद् वर्णन अपने काव्य में किया है। कबीर काव्य की भाषा में पंजाबी, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, गुजराती

आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है। अपने काव्य द्वारा कबीर ने भक्ति की मधुरता और प्रेम मय भक्ति का विशद् प्रचार पूरे देश में किया है।[४६] कबीर अनपढ़ थे अतः अपने काव्य को मौखिक रूप में (गा कर) जनता के समक्ष प्रस्तुत किया करते थे।

संगीताचार्य **गोपाल नायक** का समय विद्वानों ने १३ वीं सदी का अन्त तथा १४ वीं सदी का आरम्भ माना है। इनकी अमीर खुसरों से हुई संगीत प्रतियोगिता को इतिहास की विशेष घटना माना जाता है। उस समय संगीत के क्षेत्र में इनका ऊँचा नाम था। ये दक्षिण के राजा रामदेव यादव के आश्रित थे जो बाद में सुलतान अल्लाउद्दीन के लश्कंर के साथ उत्तर में लाए गए थे।

**अमीर खुसरों** का समय ईसा की १२ वीं सदी, विद्वानों ने माना है। खुसरों अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान थे। वे अच्छे कवि, संगीतज्ञ और गायक थे। खुसरों ने फारसी और भारतीय संगीत के मिश्रण से कई नए रागों की उद्‌भावना की थी। जिनमें ईमन, जीलफ, शहाना आदि का नाम आज भी उल्लेखनीय है। इसके अलावा ख्याल और कव्वाली का आविष्कार भी खुसरों ने किया था। वीणा आधार पर सितार नामक वाद्य यंत्र का आविष्कार भी खुसरों ने किया था। खुसरों के समय में जो मिश्रित गायन पद्धति प्रचलित हुई, उसी का विकसित रूप ख्याल की गायकी है।

## २. पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत :-

### १. भक्ताचार्यों द्वारा संगीत का विकास ::

भारतीय इतिहास में ईसा की १३ वीं से १६ वीं सदी काव्य और संगीत की दृष्टि से बहुत उन्नत और महत्वपूर्ण रही है। इन शताब्दियों में भक्ति आन्दोलन के साथ संगीत का भी विशेष उत्कर्ष देखने को मिलता है। इस समय के धार्मिक आन्दोलनों ने प्रत्येक प्रांतीय भाषा के साहित्य को सराबोर कर दिया। जयदेव, विद्यापति आदि के पश्चात् राजनैतिक उथल-पुथल के कारण भक्ति के बीज कुछ लुप्त से हो गए थे जिसका पुनःप्राकट्य श्रीमद् वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास,

चैतन्य महाप्रभु, हित हरिवंश आदि भक्त आचार्यों ने किया। इन भक्ताचार्यों ने ईश्वर के सगुण रूप की प्रेम भक्ति का प्रवाह जन – जन के हृदय में संगीत के माध्यम से प्रवाहित किया। ईश्वर के भजन–कीर्तन का मार्ग बता कर इन भक्ताचार्यों ने सामान्य लोक के मानस को जागृत किया। इन भक्ताचार्यो ने लोक भाषा में भगवत् साहित्य की रचना द्वारा लोगों के हृदय को छू लिया। इन भक्ताचार्यों ने श्रीमद् भागवत महापुराण में वर्णित भगवान श्री कृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की ब्रज लीला और गोपियों के प्रेम को भक्ति का माध्यम बनाया और अपने सिद्धान्तों व भक्तिमय उपदेशों को चारों दिशाओं में प्रवाहित किया।

'कृष्ण भक्ति कालीन कवि उच्च कोटि के भक्त थे। उनका ध्येय अपने आराध्य की उपासना में पूर्णतः लीन हो कर उनको प्राप्त करना था। अस्तु सांसारिक बंधनों को भूलकर अपने आराध्य के साथ एकाकार होने के लिए उन्होंने संगीत की शरण ली। हमारे मध्यकालीन साहित्य की विभूतियाँ उस समय के युग प्रवाह की उपज नहीं थी वरन् उनका निर्माण उन प्राचीनतम भारतीय परिवर्द्धनशील दार्शनिक परम्पराओं की ही सुदृढ़ भूमि पर हुआ था जो न कभी बँधी थी उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम की भौगोलिक परिधि में और न कभी म्लान या पल्लवित हुई थी किसी राज सत्ता विशेष के बनने या बिगड़ने से। हिन्दी साहित्य के किसी भी विद्यार्थी से छिपा नहीं कि पूर्व मध्यकाल का हमारा अधिकांश साहित्य कहलाने वाला अंग दार्शनिक चेतना से भरपूर है। उसके प्रस्तुत करनेवाले पेशेवर कवि नहीं थे और न किसी राजा या रईस के आदेश पर या उसकी काव्य पिपासा शांत करने के लिए अपनी लेखनी रंगनेवाले थे। काव्य–साधना के निमित् कुछ भी लिखना उनके जीवन का ध्येय नहीं था। वे तो विशुद्ध अर्थों में तत्वदर्शी मानवता का पाठ पढ़ानेवाले ईश्वरीय सन्देश वाहक थे। उनकी वाणी से अमर काव्य की मन्दाकिनी प्रवाहित अवश्य हुई और ऐसी हुई कि जिसकी तुलना कदाचित देश देशान्तरों के, युग–युगान्तरों के काव्य साहित्य में भी ढूँढे न मिलेगी।'[४७]

भक्ति काल में कृष्ण भक्ति शाखा में विशेषतः अनेक सम्प्रदायों का महत्व रहा है जो मुख्यतः श्री कृष्ण की ब्रज भूमि से जुड़ा रहा है। इसी भक्ति का एक रूप संगीत है जो ब्रज में भी विद्यमान था। संगीत का अधिकार तथा यथेष्ट पोषण देवालयों में हुआ है। कृष्ण भक्तिकालीन गायक कवियों के काव्य में संगीत प्रेरणा के प्रधान उपादान रहे हैं उनके आराध्य श्री कृष्ण तथा उनकी रसमयी लीलाएँ। इसके साथ ही इन भक्त कवियों ने मध्ययुगीन भारतीय समाज के धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक जीवन के अनेक पक्षों को प्रेरित और प्रभावित किया। इन भक्त कवियों ने परमात्मा के साकार – निराकर तत्व के भजन कीर्तन को महत्व दे कर अखण्ड सुख की प्राप्ति का मार्ग दिखा कर तत्कालीन समाज को जागृत किया। अतः पुष्टिमार्ग के अष्टछापादि भक्त संगीताचार्यों के अलावा जिन्होंने भक्तिमार्ग की उत्कृष्ट पद रचना युक्त प्रभु गान–कीर्तन किया उनमें समकालीन स्वामी हरिदास, हित हरिवंश और चैतन्य महाप्रभु के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

**स्वामी हरिदास –**

स्वामी हरिदास जी अष्टछाप भक्त कवियों के समकालीन भक्त कवि और धर्म प्रचारक थे। स्वामी जी वृन्दावन में रहते थे और महान संगीताचार्य थे। स्वामी जी ने राधा कृष्ण की युगल उपासना का केवल सखी भाव से प्रचार प्रसार किया। अपने संगीत के द्वारा स्वामी जी अपने इष्ट देव के समुख गान करते हुए अत्यन्त भाव विभोर हो जाते थे। 'गान विद्या में ये गन्धर्व थे और अपने गान से सखी की तरह सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को संतुष्ट किया करते थे।'[४८] 'स्वामी जी की भक्तिमय संगीत उपासना के फल स्वरूप श्री बाँके बिहारी जी की मूर्ति का प्राकट्य हुआ, जो आज भी वृन्दावन में विद्यमान है।'[४९] स्वामी जी ने अपने प्रत्येक पद में अपने आराध्य इष्ट कुंज बिहारी की छाप लगाई है। स्वामी जी की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं – साधारण सिद्धान्त के पद और केलिमाल। केलिमाल के ११० पदों में स्वामी जी ने अनन्य भाव से श्याम–श्यामा की प्रेम लीलाओं का

वर्णन किया है। स्वामी जी के संगीतज्ञ आठ शिष्यों के नाम नाद विनोद ग्रन्थ में इस प्रकार दिए गए हैं – बैजू बावरा, गोपाल राय, मदन राय, रामदास, दिवार पंडित, सोमनाथ पंडित, तानसेन और राजा सौरसेन। दीपक राग के लिए तानसेन, मेघ राग के लिए बैजू बावरा और मालकोष राग के लिए गोपाल राय स्वामी हरिदास की गान–विद्या के ऋणी रहेंगें।[50] स्वामी जी के संगीत गान का आकर्षण असाधारण था। स्वयं अकबर सम्राट भी इनकी भक्ति, इनके संगीत शास्त्र तथा कला के गुणों की प्रशंसा सुनकर इनसे मिलने आया था। स्वामी जी के पद निम्न राग–रागिनियों में गाए जाते हैं–

> विभास, विलावल, आसावरी, सारंग, वसंत, कल्याण, मल्हार, नट, केदारो, कान्हरो, गौरी आदि।[51]

स्वामी जी के रचे बहुत से पदों का गान पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली में होता है। स्वामी जी के शिष्य विट्ठल विपुन जी के कुछ पद पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन संग्रह में दृष्टिगत होते हैं। स्वामी जी की गायकी के स्वरूप का प्रामाणिक साधन उपलब्ध नहीं है।

**हित हरिवंश –**

हरिदास के साथ हित हरिवंश जी भी अष्टछाप के समकालीन थे। हित जी ने राधा–कृष्ण की युगल उपासना का उपदेश दिया। कृष्ण से राधा की पूजा और भक्ति को इन्होंने अधिक महत्वशालिनी और शीघ्र फलदायिनी माना था। वृन्दावन के सेवा कुंज नामक स्थान में श्री राधा वल्लभ जी की मूर्ति की स्थापना के पश्चात् अष्ट आयाम सेवा का प्रारम्भ किया। राधा वल्लभीय सेवा प्रकार में पाँच आरती और सात समय माने गए हैं – मंगला समय, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्या, शयन और शैया। इनकी सेवा प्रणाली में श्री वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव देखा जा सकता है। वल्लभ सम्प्रदाय में अष्ट समय की सेवा, शृंगार, भोग एवं संगीत कीर्तन की परिपाटी जिस समय समृद्ध हो रही थी उसी समय के आसपास हित हरिवंश जी के सम्प्रदाय में अष्टयाम सेवा, भोग, शृंगार तथा संगीत समाज का

आरम्भ होता देखा जा सकता है।[५२] विजयेन्द्र स्नातक जी ने लिखा है कि 'जिस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय में श्री कृष्ण के गुणानुवाद के लिए कीर्तन प्रणाली है उसी प्रकार यहाँ समाज की व्यवस्था है। वल्लभ सम्प्रदाय में पुजारी ही मुखिया कहलाता है तथा जो कीर्तन करता है वह कीर्तनिया कहलाता है। किन्तु यहाँ समाज का प्रधान गायक मुखिया कहलाता है। प्रधान गायक का शेष समाजी अनुगमन करते हैं। अन्तरंग में प्रिय प्रियतम जो लीला करते हैं और सखियाँ उस समय जिस भाव का पद गान करती हैं बहिरंग समाज में उसी भाव का पद समाजी गाते हैं।[५३] हित जी उच्च कोटि के संगीतज्ञ और गायक थे अष्टछाप के समान आपकी वाणी भी शास्त्रीय संगीत से समृद्ध थी। गुसाँई जी ने वल्लभ सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में आपकी वाणी को उचित स्थान दिया है। हित जी के लगभग १५ पद वल्लभ कीर्तन पोथी में संग्रहीत हैं। जो रास, साँझी, राधाष्टमी की बधाई में मुख्य रूप से गाए जाते हैं। हित जी द्वारा रचित पदों में जागरण, मंगला, मंगला आरती, शृंगार आरती, राजभोग आरती, उत्थापन, संध्या भोग, शयन, मान, कुंज, वन विहार, डोल, बसन्त वर्षा, दान तथा रास के पद अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। हित जी के पदों में निम्न राग देखने को मिलते हैं – भैरव, विभास, देव गंधार, खट, बिलावल, देवगिरि, टोडी, आसावरी, जयंतश्री, गुर्जरी, सूहा, धनाश्री, सारंग, नट, मालव, श्री, पूर्वी, मारु, गौरी, कल्याण केदारो, कामोद, भूपाली, कान्हरों, अडानो, विहागरों, मल्हार, गौड मल्हार, वसन्त, गुर्जरी। इसके अलावा अठताल, मूलताल, एक ताल, चौताल, रूपकताल, जय त्रिताल, चर्चरी तालों के नाम भी प्राप्त होते हैं।

हित हरिवंश के लिखे दो ग्रंन्थ प्रसिद्ध हैं – एक है 'राधा सुधानिधि' जो संस्कृत भाषा में है और दूसरा 'हित चौरासी पद' जो ब्रज भाषा में हैं। इन ग्रंथों में राधा कृष्ण के विहार और प्रेम लीला का शृंगार वर्णन तथा उस भाव की अनुभूति का आनन्द वर्णित है। इन पदों में युगल उपासना तथा राधा उपासना का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

हित जी के शिष्य सेवकों में दामोदर दास, हरिराम व्यास, वृन्दावनदास चाचा जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दामोदर दास जी भी अच्छे संगीतज्ञ थे। दामोदर दास के कतिपय पद वल्लभ सम्प्रदाय में 'दामोदर हित' अथवा 'हित दामोदर' के नाम से प्राप्त होते हैं, जो मुख्यतः राधाष्टमी की बधाई में गाए जाते हैं। हरिराम जी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। श्रीमद् भागवत आदि पुराणों के वक्ता होने के कारण आप व्यास जी की उपाधि से सम्मानित थे। व्यास जी भी अपने समय के विद्वान संगीतज्ञ गायक थे। उस समय की ध्रुपद शैली की मान्यतानुसार आप पद गान किया करते थे। वल्लभ सम्प्रदाय में भी आपके कुछ पद प्राप्त होते हैं जो रास, साँझी, राधाष्टमी की बधाई में विशेष रूप से गाए जाते हैं। अपने पदों में आपने वाद्य यंत्रों के नाम भी दिए हैं – वीणा, रवाब, वेणु, सहनाई, मुखचंग, भेरि, डफ, मृदंग, दुदुम्भी, ढोल, रुंज, मुरज, दमामा, करताल आदि।

वृन्दावनदास चाचा जी की वाणी का व्यापक प्रचार – प्रसार राधा वल्लभ सम्प्रदाय में हुआ है। सम्प्रदाय में राग बद्ध गेय पदों अर्थात् साहित्य संगीत की भगीरथ गंगा बहाने का श्रेय चाचा जी को दिया जा सकता है। लगभग १२०० से भी अधिक पदों की रचना आपने की है जो प्राचीन द्रुपद–धमार शैली के प्रतीत होते हैं। उपरोक्त भक्त शिष्यों के अलावा चतुर्भुजदास, द्रुवदास, नेही नागरीदास, अनन्य अली, रसिक़दास के नाम भी हित जी की शिष्य परम्परा में लिए जाते हैं।

रास लीला के पुनः प्रारम्भ का श्रेय विद्वानों ने हित जी को दिया है। हित जी के साथ वल्लभाचार्य तथा गदाधर भट्ट भी थे। इन महानुभावों ने पुनः रास मंडल रचाया जिसमें नृत्य, संगीत एवं नाट्य को स्थान मिला।

**चैतन्य महाप्रभु –**

कृष्ण काव्य में चैतन्य महाप्रभु का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। चैतन्य भगवान श्री कृष्ण के नाम, गुण लीला के संकीर्तन को करते–करते आनन्द विभोर हो नाचने लगते थे, और इनकी आँखों से प्रेमाश्रु बह निकलते थे। विद्वानों

का मत है कि ईश्वरपूरी नामक वैष्णव से चैतन्य ने राधा कृष्ण की भक्ति का मार्ग ग्रहण किया था। चैतन्य ने राधा–कृष्ण के युगल रूप के चरणों की उपासना की थी। चैतन्य ने राधा कृष्ण की भक्ति के पाँच रूपों – शान्ति, दास्य, वात्सल्य, साख्य और माधुर्य के अनुसार पाँच भावों – मनन, सेवा, स्नेह, मैत्री और दाम्पत्य पर बल दिया है।[५४] चैतन्य ने अपने आराध्य की लीलाओं का नृत्य सहित गान कर कृष्ण भक्ति को सरलता व सहजता से लोगों के हृदय तक पहुँचा दिया। चैतन्य ने कीर्तन के साथ गान और वाद्य का भी प्रयोग किया है। चैतन्य ने कोई सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं लिखा। चैतन्य विद्यापति के पदों को गाते–गाते मूर्छित हो जाते थे।[५५]

चैतन्य सम्प्रदाय में सत्संग, नाम तथा लीला कीर्तन, ब्रज वृन्दावन वासी कृष्ण मूर्ति की सेवा पूजा आदि भक्ति के साधनों पर अधिक बल दिया गया है।

वल्लभ सम्प्रदायी वार्ता साहित्य से सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य तथा चैतन्य का समागम जगदीश्वर की यात्रा में हुआ था। वे एक दूसरे की भक्ति से भी काफी प्रभावित हुए थे। दीन दयालु गुप्त का विचार है कि आचार्य वल्लभ ने मधुर भाव की भक्ति का समावेश भागवत के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया है। चैतन्य ने कृष्ण के साथ राधा की भक्ति को भी बड़ा माना है। वल्लभ सम्प्रदाय में राधा स्वकीया है और चैतन्य सम्प्रदाय में राधा परकीय रूपा हैं। विद्वानों का मत है कि चैतन्य की भक्ति से प्रभावित होकर वल्लभाचार्य ने बंगाली ब्राह्मणों को श्रीनाथ जी की सेवा में रखा था। चैतन्य ने वल्लभाचार्य की तरह प्रत्येक जाति के लोगों को भगवद् भक्ति का समान अधिकार दिया है।

चैतन्य के भक्त शिष्यों में रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास, रघुनाथ भट्ट और जीव गोस्वामी के नाम उल्लेखनीय हैं। जीव गोस्वामी ने वृन्दावन में राधा दामोदर के मंदिर की स्थापना की तथा गोपाल भट्ट ने राधा रमण की स्थापना की है।[५६]

## २. पुष्टिमार्ग में कीर्तन का आरम्भ ::

पुष्टि सम्प्रदाय में परमानंद की प्राप्ति के हेतु संगीत कला को भक्ति का एक सचोट साधन माना है। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की और गिरिराज गोवर्धन पर प्रभु श्रीनाथ जी की सेवा का शुभारम्भ किया। जिसमें राग, भोग और शृंगार का सुन्दर समन्वय किया गया। इसमें प्रथम स्थान राग को दिया गया है ताकि लौकिक विषयों में पड़ी हमारी चित्तवृत्ति प्रभु में जुड़ी रहें । वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गीय सेवा में. राग सहित कीर्तन करने का आवश्यक विधान किया हैं ।[५७] विट्ठलनाथ जी ने राग, भोग, शृंगार की सेवा भावना को बृहद् रुप दिया । जिसमें मुख्यः सम्प्रदायिक भावनानुसार साहित्य–संगीत समन्वित नवधा भक्ति विहित कीर्तन प्रणाली को स्थान दिया। जो क्रम आज भी पुष्टिमार्गीय मंदिरों में यथावत् रुप से चल रहा हैं।

## ३. पुष्टिमार्ग में कीर्तन की महिमा ::

राग उसे कहते है जो प्रभु अनुराग में वृद्धि करनेवाला हो। 'गीतं वाधं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते' ऐसी जिसकी व्याख्या है उस संगीत का ही अपार नाम कीर्तन है।[५८] पुष्टि जीव कीर्तन द्वारा प्रभु श्री नाथ जी से तादात्म्य स्थापित कर उनको पाना चाहता है – 'कलियुगे केशव कीर्तन।' अतः कलियुग में कीर्तन द्वारा प्रभु चरणों में अपनी साधना अर्पित कर मुक्ति पाने का प्रयास किया जाता है। कीर्तन का अर्थ है उल्लेख करना, पुकारना, गायन करना, दुहराना, सुनाना, घोषणा करना, संदेश पहुँचाना, प्रशंसा करना, गुण गान करना आदि।[५९] श्रीमद् भागवत में भी कीर्तन भक्ति की बहुत महिमा कही गई है। भागवत कार का कहना है : दोष–निधि कलियुग में एक ही महान गुण है कि भगवान् कृष्ण के कीर्तन से मनुष्य लौकिक आसक्ति से छूट जाता है।[६०] गीता में भी इसी सत्य की घोषणा करते हुए योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं – यदि अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ, मेरे को निरन्तर भजता है वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ

निश्चय वाला है।[६१] नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है – भगवान् के गुण के श्रवण और कीर्तन से भक्ति का साधन सम्पन्न होता है।[६२] वस्तुतः संकीर्तन के तीन अंग हैं – नाम कीर्तन, लीला कीर्तन एवं गुण कीर्तन।

पुष्टिमार्ग में गीत के माध्यम से लीला कीर्तन और गुण कीर्तन को विशेष स्थान दिया गया है। नाम, लीला और गुणादि का उच्च स्वर में कथन करना ही वस्तुतः कीर्तन है।[६३] शिव पुराण में भी कहा गया है कि कान से भगवान के नाम, गुण और लीलाओं का श्रवण, वाणी द्वारा उनका कीर्तन तथा मन के द्वारा उनका मनन ये तीन महान साधना हैं।[६४] निरोध लक्षण ग्रन्थ में वल्लभाचार्य ने कहा है – जब तक भगवान् अपनी महती कृपा भक्तों को दे तब तक साधन दशा में, ईश्वर के गुण नाम के कीर्तन ही आनन्द देनेवाले होते हैं।[६५] भगवान विष्णु के नाम संकीर्तन का उल्लेख ऋग्वेद में प्रसिद्ध मंत्र में मिलता है –

'तमुस्तोतारः पूर्व्य यशाविद् ऋतस्य गर्भ जनुषा पिपर्तन।

आस्य जानंतो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमति भजामहे।'

अर्थात् हे स्तुतिकारों! अनादि सिद्ध यज्ञ स्वरूप विष्णु को जिस प्रकार जानते हो उसी प्रकार स्तोत्रादि द्वारा प्रसन्न करो। विष्णु के अपार नामों की महिमा का कीर्तन करो। हे विष्णो! आप महान् हैं। आपकी सुमति का हम सेवन करते हैं।[६६] ओम्कार युक्त गोविन्द के पंचपद मंत्र का जो कीर्तन करता है उसे गोपाल श्री कृष्ण अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराते हैं –

'ओम्कारेणात्ररितं ये जपंति गोविदस्य

पंचपदं मनुं तोषमसौ दर्शयेदात्मरूपं

तस्मान्मुमुक्षु रभ्यसेत्रित्यंशात्यै।'[६७]

विष्णु पुराण में कहा है कि – जिस प्रकार अग्नि से सुवर्णादि धातुओं का मैल नाश होता है उसी प्रकार भक्तिपूर्वक किया हुआ भगवत् कीर्तन सभी पातकों का नाश करने का उत्तम साधन है –

'यत्राम कीर्तनं भक्तया विलापन मनुतमम्।

मैत्रेयाशेष पापनां धातूनामिव पावकः ।।' [६८]

भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है – जो लोक लज्जा को छोड़कर उच्च स्वरों से मेरा गान करता है, नृत्य करता है मेरा ऐसा भक्त न केवल खुद को बल्कि सारे संसार को पवित्र करता है –

'विलज्ज उद्गायति नृत्यते चं

मद् भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।' [६९]

पुष्टिमार्गीय मतानुसार कीर्तन को पाँचवा वेद माना गया है क्योंकि जो लीलाएँ वेद और भागवत् में स्पष्ट नहीं हुई उन लीलाओं की झाँकी इन कीर्तनों में प्रकट हुई है। पुष्टिमार्ग के भक्ताचार्यों का मत है कि कीर्तन वाणी का यज्ञ है जिसके द्वारा जीव अपना लौकिक जीवन प्रभु के चरणों में अर्पित कर अलौकिक आनन्द को प्राप्त करता है। पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन का एक अर्थ है कि 'पुष्टि भक्तों द्वारा गाया हुआ अपने पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की लीला का गान।' पुष्टि भक्तों का मत है कि कीर्तन द्वारा हमारे हृदय की मलीनता दूर होती है तथा हमारा हृदय प्रभु के बिराजने योग्य बनता है। श्रीमद् भागवत महात्म्य् में उल्लेख है कि भगवान् विष्णु के सन्मुख जब कीर्तन गान होने लगा तब शिव–पार्वती, ब्रह्मा–ब्रह्माणी आदि भी कीर्तन सुनने के लिए सभा में आए। प्रहलाद करताल बजाने लगे, उद्धव झाँझ बजाने लगे, देवर्षि नारद वीणा की ध्वनि करने लगे, इन्द्र मृदंग बजाने लगे तथा अर्जुन मीठे कण्ठ से गान करने लगे। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नृत्य करने लगे थे इस अलौकिक कीर्तन से भगवान अत्यन्त प्रसन्न हुए।[७०]

## ४. पुष्टिमार्गीय सेवा में कीर्तन गान का क्रम ::

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में बिराजते प्रभु श्रीनाथ जी अपना समस्त क्रम कीर्तन से ही करते हैं। कीर्तन से जागते हैं, कीर्तन से श्रृंगार धरते हैं, कीर्तन से भोग आरोगते हैं और कीर्तन से ही पौढ़ते हैं। इस प्रकार पुष्टिमार्ग के दोनों आचार्यों ने कीर्तन की सेवा को सर्वप्रथम कुम्भनदास को देने के पश्चात् बाकी कीर्तनकारों को

भी धीरे–धीरे शरण में लिया था। जिसका विस्तृत रूप विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना के रूप में प्रस्तुत किया है।[७१] विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी की आठों झाँकियों में उनकी लीला भावना और समय तथा ऋतु के अनुसार रागों द्वारा कीर्तन करने की व्यवस्था की थी जो आज भी पुष्टिमार्गीय मंदिरों में विद्यमान है। पुष्टिमार्ग मंदिरों में श्रीनाथ जी की सेवा के दो क्रम निर्धारित हैं –

(१) प्रातः काल से सांयकाल पर्यन्त की नित्य सेवा तथा

(२) बारह महीनों की तथा छ ऋतुओं की वर्षोत्सव सेवा।

नित्य सेवा विधि में आठ समय के उत्सव होते हैं –[७२]

| | सेवा | | समय |
|---|---|---|---|
| १. | मंगला | – | प्रात ५ बजे से ७ बजे तक |
| २. | श्रृंगार | – | प्रात ७ बजे से ८ बजे तक |
| ३. | ग्वाल | – | प्रात ९ बजे से १० बजे तक |
| ४. | राजभोग | – | प्रात १० बजे से १२ बजे तक |
| ५. | उत्थापन | – | दिन के ३ ।। बजे से ४ ।। बजे तक |
| ६. | भोग | – | लगभग सायं ५ बजे से |
| ७. | संध्या आरती | – | सायं लगभग ६ ।। बजे से |
| ८. | शयन | – | रात्रि के ७ बजे से ८ बजे तक |

नित्य सेवा उत्सव में वात्सल्य भाव की प्रधानता रहती है। प्रत्येक सेवा में मुख्य कीर्तनिया के साथ उसके आठ सहायक होते हैं जिन्हें झालरिया कहा जाता है, जो गायन तथा वाद्य बजाने में कीर्तनकार को सहयोग देते हैं। मंगला का कीर्तन परमानंददास द्वारा होता था, जो जागरण, खण्डिता, अनुराग, दधि मंथन के पद का गान करते थे। श्रृंगार कीर्तन का गान नंददास करते थे, जो बालरूप की सुंदरता, ठाकुर जी के नाना प्रकार के वस्त्राभुषण, साज–सज्जा के पद का गान करते थें। ग्वाल समय में कीर्तन गान गोविन्द स्वामी करते थे, जिसमें सख्य भाव, कृष्ण के खेल चौगान, चकडोरी आदि तथा गोचारण, गोदोहन, माखन चोरी,

पालना, धैया आरोगन के पदों का गान करते थे। राजभोग के समय में मुख्य कीर्तन कुम्भनदास करते थे तथा बाकी कीर्तनकार भी साथ में कीर्तन करते थे, जिसमें छाक के पद का गान होता था। उत्थापन में सूरदास का कीर्तन होता था, जिसमें गोटेरन, वन लीला तथा अन्य लीला के पद का गान होता था। भोग के समय में चतुर्भुजदास का कीर्तन होता था जिसमें कृष्ण रूप, गोपी दशा, मुरली, रूप–माधुरी, गाय, गोप से सम्बन्धित पद का गान होता था। संध्या आरती का कीर्तन छीतस्वामी करते थे जिसमें गो, ग्वाल सहित बन से आगमन, गो दोहन, वात्सल्य भाव से यशोदा का बुलाना आदि के पद गान होते थे। शयन में कृष्णदास कीर्तन करते थे जिसमें अनुराग, गोपी भाव से निकुंज लीला संयोग श्रृंगार के पद का गान होता था।[७३]

श्रीनाथ जी को जगाने के पूर्व ही शंख नाद, घंटा–नाद और वीणा के मधुर नाद (संगीत) का आरम्भ हो जाता है। यही नहीं, नित्यक्रम में ऋतु अनुसार रागों में प्रातः स्मरणीय श्री वल्लभाचार्य तथा श्री विठ्ठलनाथ जी की विनंती के पद गान के बाद श्री नाथ जी को जगाने के भाव का जब कीर्तन गान गाया जाता है तब श्रीनाथ जी को जगाया जाता है।

वर्षोत्सव सेवा विधि में बारह महीने तथा छः ऋतुओं के उत्सवों, अवतारों की जयंतियाँ, लोक त्यौहारों और वैदिक पर्वों का समावेश होता है। वर्षोत्सव सेवा में स्वकीया तथा परकीया प्रेम भावना, लोक भावना तथा ब्रह्म भावना का कृष्ण सेवा में विनियोग मिलता है। वर्ष के ३६५ दिनों के विभिन्न उत्सवों पर गाये गए पद पुनः दूसरे वर्ष उसी दिन सुने जा सकते हैं। वर्षोत्सव के पदों का क्रम जन्माष्टमी से प्रारम्भ होता है। जन्माष्टमी के अवसर पर गाये जानेवाले पदों में श्री कृष्ण के प्राकट्य एवं बधाई के पद, ढाढी, पालना, अन्नप्राशन, कर्ण छेदन, मुत्तिका भक्षण, ऊखल–बन्धन, बाल लीला संबंधी पद गाए जाते हैं। दान के पदों में कृष्ण और गोपियों के संवाद, यशोदा से श्री कृष्ण की शिकायत तथा गोरस दान के पदों का गान होता है। साँझी के पदों में राधा का साँझी पूजन, श्री कृष्ण से

मिलन आदि के पदों का गान होता है। नवरात्री से विजयादशमी तक मुरली के पद, करखा के पद गाए जाते हैं। विजयादशमी से शरद पूर्णिमा तक रास लीला के पदों का गान होता है। शरदोत्सव के पश्चात् गोवर्धन पूजा के पद गाए जाते हैं जिसमें इन्द्रमान भंग तथा गोवर्धनधारण संबंधि पद आते हैं। गिरिराज गोवर्धन की पूजा के बाद अन्नकूट वर्णन के पद गाए जाते हैं जिसमें इन्द्र पूजा का निषेध, गोवर्धन पूजा, गोवर्धन धारण, अन्नकूट आरोगन के पद गाए जाते हैं। देव प्रबोधिनी एकादशी के पश्चात् शीतकालीन पदों का प्रारम्भ होता है जिसमें खण्डिता के पद विशेष गाए जाते हैं। वसन्त पंचमी तक वसन्त ऋतु वर्णन, राधा–कृष्ण–गोपिकाओं की मिलन की आतुरता के पद गाए जाते हैं। फागुन पूर्णिमा में होरी धमार के पद आते हैं जिनमें होली खेलने का सुन्दर वर्णन होता है तथा ब्रज के लोक जीवन का भी मनोरम वर्णन इन पदों में होता है। होली के पश्चात् राम नवमी, अक्षय तृतीया, नृसिंह चतुर्दशी आदि के अवसर पर जन्म संबंधी तथा चन्दन धराने के पद गाने की प्रणाली है। गंगा दशमी को गंगा महात्मय के पद एवं स्नान यात्रा के उत्सव के दिन स्नान संबंधी पद गाए जाते हैं। स्नान यात्रा से रथ यात्रा तक कुन्ज, पनघट, नाव के पद गाने की प्रणाली है। साथ ही प्रभु की रथ यात्रा के पद भी गाए जाते हैं।[७४]

## ५. कीर्तन में प्रयुक्त राग ::

### ऋतु अनुसार राग – रागिनियाँ –

वल्लभ सम्प्रदायी मंदिरों के कीर्तन गान में ऋतु अनुसार रागों का पालन किया जाता है। इस नियम का पालन नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव सेवा की आठों झाँकियों में किया जाता है। जैसे मंगला में प्रातः राग विभाव अथवा भैरव राग गाये जाने की परम्परा है; शृंगार सेवा में रामकली, बिलावल; ग्वाल सेवा में असावरी, तोडी आदि; राजभोग के समय में सारंग, आसावरी राग गाए जाते हैं; उत्थापन के समय में धनाश्री, भीमपलासी; संध्याभोग के समय में गौरी, नट, पूर्वी; संध्या

आरती में पूर्वी, श्री तथा शयन में बिहाग, मालव तथा केदार आदि रागों में पद गाए जाते हैं।[७५] वर्षोत्सवों में उत्सवों के अनुसार ऋतु में बंधकर कीर्तन गान किया जाता है जिसमें कुछ रागों की प्रधानता होती है जैसे – जन्माष्टमी की बधाई में सभी राग–रागिनियाँ गाई जाती हैं। साँझी उत्सव में गौरी तथा पूर्वी राग के साथ बिलावल, रामकली, नट, सारंग, अडाना, कान्हड़ा आदि रागों के गान द्वारा प्रभु को रिझाया जाता है। रासोत्सव में भैरव, विभास, रामकली, बिलावल, सुधराई, खट्, टोडी, आसावरी, सारंग, मालव, पूर्वी, जैजेवन्ती, नट, मारु, गौडी, कल्याण, यमन, कान्हरा, अडाना आदि रागों में पद गाना होता है। हिन्डोला में सभी रागों के पद गान होते हैं। होली के उत्सव में रायसा, मल्हार, जंगला, मारु आदि रागों में पद गान होता है। बसन्त पंचमी के उत्सव में बसन्त राग मुख्य गाया जाता है। रथयात्रा से रक्षाबन्धन तक मल्हार राग का प्राधान्य रहता है। इसके अलावा वृन्दावनी, सारंग तथा नूर सारंग ग्रीष्म ऋतु में विशेष गए जाते हैं। शीतकाल में भैरव, विभास, रामकली, ललित, मालकोष, देवगंधार, खट, यमन, बिलावल, सुधराई, टोडी, असावरी, जैत श्री, धना श्री। इस प्रकार देखें तो पुष्टिमार्गीय कीर्तन में परम्परागत रागों की ही प्रधानता रही है।

## ६. अष्टछाप द्वारा प्रयुक्त राग–रागिनियाँ ::

पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत शास्त्रीय संगीत पर आधारित है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं संगीत का आधार सप्त स्वर है। इन स्वरों से मूलतः हिंडोल, दीपक, भैरव, मालकोष, श्री और मेध इन छह रागों की उत्पत्ति हुई है। प्रत्येक राग की पाँच–पाँच स्त्रीयाँ मानी गयी हैं, जिनको रागिनियाँ कहते हैं ये रागिनियाँ तीस हैं। प्रत्येक की अड़तालीस (४८) संततियाँ मानी गई हैं।[७६] इस प्रकार भारतीय संगीत में राग–रागिनियों का विशाल परिवार है। खट ऋतु की वार्ता में निम्न लिखित उल्लेख मिलता है –

'ता पाछें श्री ठाकुर जी ने छत्तीसों राग–रागिनी को बुलाय के आज्ञा करी जो तुम छै–छै सखी रुप होय के छत्तीसों बाजेन सहित एक–एक ऋतुन की निकुंजन में छै–छै समै अनुसार श्री स्वामिनी जी की आज्ञा ते नृत्य, गान तथा बाजे सावधानीसों बजाइयों। तब छतीसों राग–रागिनी श्री ठाकुर जी को दण्डवत करिके छेओं ऋतुन के छेओं निकुंज में छै–छै बाजे सहित छै–छै पधारें। सो तिन छत्तीसो राग रागिनीन के तथा छत्तीसों बाजेन के नाम कहते हैं।'

राग रागिनियों के नाम निम्न प्रकार दिए हुए हैं –[७७]

मल्हार, ललित, पंचम, आसावरी, भैरव, मालव, टोडी, कल्याण, गुर्जरी, मालवा, गौडी, बिलावल, धनाश्री, रंगिली, खमाज, देसाख, कान्हरो, गौड–मल्हार, केदारो, खट (मंजरी), रामकली, गिंघारी, बराडी, कुकुभ, कामोद, नट, गुनकली, माघवी, देस, विभास, हास, काफी, सोरठ, ईमन, जैजैवंती, सारंग।

सूरदास के पदों में राग–रागिनियों की ओर संकेत किया गया है–

'छहों राग छतीसों रागिनि, इक इक नीके गावेंरी।'[७८]

ललित, पंचम, खट, मालकोष, हिंडोल, मेध, मालव, सारंग, नट, सांवत, भूपाली, ईमन, कान्हरौ, अडाना, नायकी, केदारौ, सोरठ, गौड मल्हार, भैरव, विभास, बिलावल, देव गिरि, देशख, गौरी, श्री, जैत श्री, पूर्वी, गोडी, आसावरी, रामकली, गुन कली, सुधराई, जैजैवन्ती, सूहा, सिन्धूरा, प्रभाती।[७९]

कुम्भनदास ने मुख्यतः निम्न रागों में अपने पद गाए हैं–

श्री, धनासिरी, रामकली, सारंग, गौरी, नट, केदारो, देव गंधार, बिलावल, नट नारायण, कनारो, विभास, कल्याण, आसावरी, मल्हार, वसन्त, मावलगोडी, पीलों, भैरव, ललित, मालकोस, विहागरो आदि। [८०]

कृष्णदास अधिकारी ने मुख्यतः निम्न रागों में अपने पद गाए हैं –

भैरव, रामकली, ललित, मालकौस, खट, रामग्री, देव गंधार, विभास, हिंडोल, वसंत, पंचम, बिलावल, सूहा, गूर्जरी, टोडी, घनाश्री, आसावरी, सारंग, सोरठ, मेघमल्हार, मल्हार, नट नारायण, मालव गौड, नट, गौरी, मालव, पूर्वी, श्री, मारु, काफी, ईमन, कल्याण, हमीर, केदारो, कान्हारो, सुघराई, नायकी, अडाना, जैजैवंती, रायसा, विहाग, विहागरो। [८१]

परमानंद दास ने अपने पदों में मुख्यतः निम्न लिखित रागों का प्रयोग किया है –

ललित, मालकोंस, भैरव, रामकली, रामग्री, दैव गंधार, विभास, खट, वसंत, परज, पंचम, बिलावल, सूहा, गुर्जरी, टोडी, आसावरी, धनाश्री, सामेरी, सारंग, सोरठ, मल्लार, देसाख, नट, गौरी, मालव, पूर्वी, श्री, जेत श्री, मालश्री, मारु, काफी, हमीर, ईमन, कल्याण, केदारो, जैजैवंती, कानसे, नायकी, रायसो, अडानो, बिहाग, बिहागरो।[८२]

गोविन्द स्वामी ने मुंख्यतः निम्न रागों में पद गान किया है –

भैरव, रामकली, विभास, ललित, मालकोंस, रामग्री, दैव गंधार, बिलावल, टोडी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, वसन्त, सोरठ, मल्हार, नट, पूर्वी, श्री, जेत श्री, माली गौरा, गौरी मालव, हमीर, ईमन, कल्याण, केदारो, कानरो, अडानो, रायसो, बिहाग, बिहागरो। [८३]

छीतस्वामी के पदों में मुख्यतः निम्न राग मिलते हैं –

भैरव, रामकली, विभास, दैवगंधार, ललित, वसंत, बिलावल, गुर्जरी, टोडी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, सोरठ मल्हार, देसाख, नट, पूर्वी, श्री, जेत श्री, माली गौरा, माल श्री, जोनपुरी, काफी, हमीर, ईमन, कल्याण, केदारो, कानरो, नायकी, हमीर कल्याण, रायसो, अडानो, बिहाग, बिहागरो। [८४]

चतुभुर्जदास के गाये पदों में मुख्यतः निम्नलिखित राग मिलते हैं –
भैरव, माली गौरी, माल श्री, ललित, रामकली, रामग्री, दैव गंधार, विभास, वसंत, पंचम, बिलावल, सूहा, टोडी, आसावरी, धनाश्री, सामेरी, सारंग, सोरठ मल्हार, नट, नट नारायण, गौरी, मालव, पूर्वी, जेत श्री, मारु, काफी, हमीर, ईमन, कल्याण, केदारो, कानरो, रायसो, अडानो, बिहाग, बिहागरो। [८५]

नन्ददास के पदों में हमे मुख्यतः निम्न राग मिलते हैं –
ललित, मालकोंस, भैरव, रामकली, दैव गंधार, विभास, खट, वसंत, पंचम, बिलावल, टोडी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, मल्हार, मालव गौरी, खय सुघराई, देसाख, नट, गौरी, पूर्वी, मारु, काफी, हमीर, ईमन, कल्याण, केदारो, जैजैवंती, कानरो, नायकी, अडानो, बिहाग, बिहागरो, स्याम कल्याण, बडहंस। [८६]

वल्लभाचार्य के समय की कीर्तन प्रणाली में छः राग और ३० रागिनियों का ही गान श्रीजी के सम्मुख होता था।[८७] तत्पश्चात् विट्ठलनाथ जी ने षटऋतु के मनोरथ और छप्पन भोग के महोत्सव के समय से ५६ प्रकार की सामग्री के साथ संगीत के अन्य राजस प्रकृति के राग भी श्रीनाथ जी को अंगीकार कराए और कीर्तन गान में भी रागों की संख्या ५६ कर दी। ये ५६ राग निम्न प्रकार के हैं–[८८]

भैरव, रामकली, ललित, मालकोंष, रामग्री, दैव गंधार, बिलावल, सुहा, टोडी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, वसन्त, सोरठ, मल्हार, मेघ मल्हार, खरज, गुर्जरी, कान्हरों, हिंडोल, पंचम, सामेरी, मालव, नट, नट नारायण, पूर्वी, श्री, जेत श्री, मालश्री, मारु, काफी, हमीर, ईमन, कल्याण, केदारो, नायकी, रायसो, अडानो, बिहागरो, चेती–गौरी, श्याम–कल्याण, जैजैवन्ती, विहाग, खमज, हमीर–कल्याण, सुधराई, सामंत–सारंग, गोड–सारंग, नट–बिलावर, अल्हैया–बिलावल, गोड–मल्हार, सोरठ–मल्हार, मालव गौरी, देसाख, केदारो ।

यहाँ ये कहना अति आवश्यक है कि एक ही राग के कई अन्य नाम भी हमें देखने को मिलते हैं –[८९]

१. धन्यासी, धनासी, धनाश्री, धन्यासिरी, धनासिरी, धनासरी

२. अडानो, अडानौ, अडाना

३. गोरी, गौरी

४. बिहागरो, बिहागरौ, बिहाग, बिहागडा, बिहागडौ

५. केदारो, केदारौ, केदारा, केदार

६. इमन, ईमन

७. जयतश्री, जैत श्री

८. भूपाल, भोपाल, भूपाली, भोपाली

९. जय जय वंती, जै जै वंती

१०. मालवगौरी, मालवगौडी, मालवगौरा

११. मालव कौशिक, माल–कोस, मालव गौरा

१२. कान्हरा, कन्हरो, कान्हरौ, कानरो, कान्हडो

१३. पूरवी, पूर्वी, पूरबी

१४. मारु, मारवो

१५. सूहौ, सूहा

१६. असावरी, आसावरी

१७. भैरो, भैरव, भैरु

१८. देसाख, देवसाख, देशाख

## ७. अष्टछाप के समय के संगीतपयोगी वाद्य ::

अष्टछाप के समय के संगीतोपयोगी वाद्यों के नाम, प्रकार : वैदिक साहित्य में चार प्रकार के वाद्य कहे गए हैं –[९०]

**१. तत् वाद्य –**

तार अथवा ताँत की तन्त्रियों से युक्त जिन वाद्यों को नख, मिजराव, अथवा धोड़े की कमान से रगड़ कर बजाते हैं, तथा जिनसे सात स्वर, बाईस रुति, इक्कीस मूर्छना, तान और अलंकार आदि सभी प्रकट होते हैं तत् वाद्य कहलाते हैं।

**२. सुषिर वाद्य –**

सुषिर वाद्य फूँक कर बजाया जाता है।

**३. आनद्ध वाद्य –**

वे वाद्य जो भीतर से पोले तथा चमड़े से मढ़े हुए होते हैं और हाथ या किसी अन्य वस्तु के ताड़न से ध्वनि उत्पन्न करते हैं वे वाद्य यंत्र आनद्ध कहलाते हैं।

**४. धन वाद्य –**

धन वाद्य ठोकर से बजाये जाते हैं। इस प्रकार के वाद्य प्रायः सभी ताल वाद्य है। वे वाद्य काँसे, पीतल या लकड़ी के बने हुए होते हैं। ये वाद्य अपना पृथक अस्तित्व नहीं रखते हैं अन्य वाद्यों के साथ बजने पर ही सुन्दर लगते हैं।

अष्टछाप के कृष्णदास ने अपने पदों में वाद्य केनाम इस प्रकार बताएँ हैं – बीन, रवाब, किन्नरी, अमृत कण्डली, यंत्र, बांसुरी, स्वर राय गिड गिडी मण्डली, पिनाक, महुवरि, जलतरंग, मदन भेरी, शहनाई, कठताल, ताल, झांझ, खंजरी, झालर, शृंगी, शंख, मुखचंग, डफ, डिमडिम, ढोल, मृदंग, निशान, नगाडा, दुंदुभि।[११]

सूरदास ने सूर सारावली में तत्कालीन २६ वाद्यों के नाम इस प्रकार बताएँ हैं –

रुंज, मुरज, डफ, ताल, बांसुरी, झालर, बीन, रवाब, किन्नरी, अमत कण्डली, यंत्र, स्वर मण्डल, जल तरंग, पखावज, आवज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कांस्य ताल, कठताल, शृंगी, मुखचंग, खंजरी, प्रणव, पटह, नफीर।[१२]

खट ऋतु की वार्ता में चतुर्भजदास ने ३६ वाद्यों के नाम दिए हैं –

बीनाचीन, मुरली, अमृत कुण्डली, जलतरंग, मदनभेरी, धौसा, दुंदुभि, निशान, नगाडा, शंख, घण्टा, मुखचंग, शृंगी, खंजरी, ताल, कठताल, मंजीरा, मुहवारी, थाली, झालर, ढोल, डफ, डिमडिम, झाँझ, मृंदग, गिड गिड, पिनाक, रवाब, यंत्र, स्वर मंडल, शहनाई, सारंगी, दुतारी, करताल, तुरही, किन्नरी।[९३]

शास्त्रों के प्राचीन उल्लेखानुसार चार प्रकार के वाद्य हैं जो हम आगे कह चुके हैं। इन चारों प्रकार के वाद्यों में प्रत्येक प्रकार का एक–एक वाद्य प्रातःकाल की सेवा के आरम्भ में ही नियमबद्ध किया गया था –[९४]

१. तत् वाद्य में प्राचीन वीणा (बीना) जिसका वादन प्रातः काल ऋतु अनुसार राग में मंद–मंद मधुर आलाप के साथ किया जाता था। वीणा के बाद सारंगी, रवाब, सितार का प्रचलन् बढ गया।

२. सुषिर वाद्य में बांसुरी, शहनाई, महुविर, मुखचंग, सिंगी तथा शंख के नाम आते हैं। शंख वाद्य द्वारा तीन बार शंख ध्वनि की जाती थी।

३. आनद्ध वाद्यों में मृदंग, पखवाज, रुंज, दुँदुभि, ढोल, डिमडिम, डफ, निशान, खंजरी आदि का उल्लेख आता है।

४. घन वाद्य में ताल, कठताल, झालरि, झाँझ, मंजीरा, घुंघरु, जलतरंग आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पुष्टिमार्गीय कीर्तनकार नित्य उत्सवों में थोड़े वाद्यों का उपयोग करते थे तथा विशेष उत्सवों में अधिक वाद्यों का उपयोग करते थे। होली के अवसर पर सबसे अधिक वाद्यों का उपयोग होता था।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा श्री गोवर्धननाथ जी की प्राकट्य वार्ता के अनुसार पखावज वादकों में श्याम कुम्हार, मृदंग में घोघी, वीणा वादन में श्याम पखावजी की पुत्री ललिता तथा सारंगी वादन में क्षत्रिय जाति के ध्यानदास का नाम मिलता है।[९५]

## ८. पुष्टिमार्गीय कीर्तन में प्रयुक्त गायन शैली ::

अष्टछाप के काव्य की रचना कीर्तन के लिए हुई थी इसलिए यह गेय काव्य है। इस गेय काव्य में शब्द और भाव के साथ स्वर साधना का भी सामंजस्य है। हिन्दी के प्राचीन गेय काव्य का उत्कृष्ट स्वरूप हमारा पद साहित्य है जिसका विशेष गौरव अष्टछाप कवियों की रचनाएँ हैं। अष्टछाप के सभी महानुभाव पदों की रचना स्वयम् ही करते थे और स्वयम् ही उसे स्वर बद्ध भी करते थे।[९६]

## १. ध्रुपद धमार गायन शैली –

'अष्टछाप गायन की प्रमुख शैली ध्रुपद एवं धमार थी। ध्रुपद शैली का प्रचार ब्रज के सभी भक्ति सम्प्रदायों में और तत्कालीन मुसलमान सम्राटों एवं हिन्दू राजा महाराजाओं के दरबारों में था। किन्तु धमार की गायकी विशेष रूप से वल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित थी, और उसे अष्टछाप कीर्तनकार अधिकतर होली के उत्सवों में गाते थे। मुगल सम्राटों एवं राजा–महाराजाओं के दरबारी गायकों ने ध्रुपद शैली को कुछ विकृत कर दिया था, किन्तु अष्टछापी कीर्तनकार उसका गायन शुद्ध रूप में करते थे।'[९७] ये अष्टछाप भक्त कवि सर्वोत्कृष्ट संगीतज्ञ तथा साहित्य के प्रणेता थे। अष्टछाप भक्त संगीतज्ञों की वाणियों से स्पष्ट है कि उनकी गान शैली शुद्ध भारतीय संगीत की समर्थक ध्रुपद– धमार गेय विद्या पर आधारित थी। इन सभी भक्तों ने कीर्तन के रूप में संगीत कला को मन का निराध करने के एक साधन के रूप में अपनाया। ध्रुव दास जी ने परमानन्द दास, सूरदास, कुम्भनदास तथा कृष्णदास के गायन की प्रशंसा में कहा है –[९८]

'परमानंद अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति।
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपियन की प्रीति
कुम्भनदास कृष्णदास गिरिधर सौ कीनी सांचि प्रीति
कर्म धर्म पथ छाडि के गाई निज रस रीति।'

पंडित भातखण्डे जी इत्यादि पंडितों ने आधुनिक संगीत का उत्थान काल ग्वालियर के राजा मानसिंह तक ले जाकर राजा मान को इसका श्रेय दिया है।

आईने–अकबरी में भी कहा है कि राज मानसिंह ने बक्षू, भानू और बैजू की सहायता से ध्रुपद शैली का प्रचार किया था। किन्तु वल्लभाचार्य ने भी अपने देवालय में संगीताचार्य कुम्भन, सूर, परमानंद और कृष्णदास जैसे भक्त कविवरों द्वारा आज की ध्रुपद शैली का अधिकांश उद्भव किया है। इनकी सहस्त्रावधि ध्रुपद –धमारादि की रचनाओं का सम्प्रदाय में आज भी गान किया जाता है। विद्वानों का मानना है इस प्रकार भारतीय संगीत का उद्गम राज्यालय और देवालय दोनों में लगभग समान समय में होता है। ध्रुपद गायन की चार कड़ियाँ विकसित हुई थि –

गऊहरहारी, डागुरी, खंडारी तथा नौहारी।[९९]

ध्रुपद में राग, तान और ताल की नियमित योजना के साथ छंदबद्ध अथवा तुकांत कविता का गायन किया जाता है। इसके गायन के लिए संस्कृत निष्ठ भाषा में कथित शृंगार रसपूर्ण काव्य उत्तम वाणी एवं देव मंदिर अथवा देव मूर्ति का सानिध्य उत्तम स्थल माने गऐ हैं। ध्रुपद के गायक का कंठ स्थिर रहता है अर्थात् गायन के समय उसके कण्ठ में कम्पन नहीं होता। अष्टछाप कीर्तनकार गिरिराज गोवर्धन के प्राकृतिक स्थलों पर रह कर संस्कृत निष्ठ ब्रजभाषा में शृंगार भक्ति की रचनाएँ कर श्रीनाथ जी के सम्मुख गायन किया करते थे।[१००]

पंडित भाव भट्ट ने ध्रुपद की व्याख्या में कहा है: 'जिसमें गीर्वाण और मध्य प्रदेश की भाषा का साहित्य हो, दो चार वाक्य हों, नरनारी की कथा हो, शृंगार रस भाव हो, पादान्तानुप्रासा तथा पादांत यमक युक्त चार पाद और उद्ग्राह, ध्रुव सहित उत्तम आभोग भी हों उसे ध्रुपद कहते हैं।'[१०१] लेखक के अनुसार उपर्युक्त व्याख्या का पालन अधिकांश पुष्टिमार्गीय संगीत में ही दृष्टिगत होता है। जिनमें गीर्वाण (संस्कृत) तथा ब्रजभाषा (हिन्दी की बोली) का साहित्य, नर (कृष्ण) नारी (गोपी) की कथा, शृंगार भाव, अनुप्रास, चार पाद और उत्तम आभोग सहित की सैंकड़ों रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

ध्रुपद गान में स्थायी, अंतरा, संचारी तथा आभोग इस प्रकार के चार भेद होते हैं। ध्रुपद शैली का गायन चौताल, सूल ताल, धमार, आड चौताल, चर्चरी,

तीव्रा आदि ताल इत्यादि तालों में गाया जाता है।[१०२] वार्ता से ज्ञात होता है कि तानसेन, अकबर, मानसिंह आदि उस समय के सभी ध्रुपद शैली के संगीतज्ञ अष्टछाप के महानुभावों से निकट सम्पर्क रखते थे। वे सब अष्टछाप की गायन कला के प्रशंसक भी थे। इसमें भी यही समझा जा सकता है कि अष्टछाप की गायन कला भी ध्रुपद शैली की ही होगी।

ध्रुपद गायन की शुद्ध परम्परा को आज भी पुष्टि सम्प्रदाय के मंदिरों में जीवित देखा जा सकता है। पुष्टि सम्प्रदाय में आज भी हजारों की संख्या के ये पद साहित्य कीर्तन गान के रूप में देखे व सुने जा सकते हैं।

## २. हवेली संगीत –

पुष्टिमार्ग के प्रारम्भ के साथ भारतीय संगीत परम्परा के क्षेत्र में एक नवीन विधा का आरम्भ हुआ, जिसे कालान्तर में हवेली संगीत नाम दिया गया।

मुगल काल में औरंगजेब के अत्याचारों से तंग आकर विट्ठलनाथ जी ने वैष्णवों के घरों में श्री कृष्ण के बाल स्वरूप को पधरा कर हर घर को मंदिर बना दिया था। यह कार्य बड़े–बड़े भवनों से आरम्भ हुआ था जो उस समय हवेली के नाम से जाने जाते थे। आज भी पुष्टि सम्प्रदाय की प्रधान पीठ श्री नाथद्वारा के मंदिर की बनावट सामान्य मंदिर नुमा न होकर हवेलीनुमान ही है। अतः हवेली में बिराजमान प्रभु श्री नाथ जी के सम्मुख गाया जानेवाला शास्त्र सम्मत संगीत 'हवेली संगीत' के नाम से भी जाना जाता है। हवेली संगीत का आरम्भ ब्रज मण्डल से हुआ था।

वल्लभ सम्प्रदाय के मंदिरों में यशोदोत्संग ललित श्री कृष्ण की सेवा होती है। वहाँ गृह सेवा का एक विशिष्ट प्रकार प्रचलित होने से उस संस्थान को सार्वजनिक रूप न देकर हवेली की संज्ञा दी गई है। इन हवेलिओं में विराजमान भगवत् स्वरूप सन्मुख प्रातः काल में मंगला से लेकर सायंकाल में शयन पर्यन्त के आठ समय के दर्शनों में एवं ऋतु अनुसार विविध उत्सवों के उपलक्ष्य में विविध

भारतीय वाद्यों के साथ शुद्ध शास्त्रीय रागों में जो संगीत होता है उसी को अष्टछाप संगीत किंवा हवेली संगीत कहते हैं।[१०३]

अष्टछाप कवियों द्वारा रचित संगीत या कीर्तन वल्लभ सम्प्रदाय में हवेली संगीत के नाम से विख्यात है।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत को हवेली संगीत कहने का रिवाज अन्तिम ५० वर्षो से ही प्रचार में आने लगा। सौराष्ट्र में पुष्टिमार्गीय मंदिर को वर्षों से हवेली कहने का रिवाज है। इस शब्द के प्रचार से धीरे–धीरे पुष्टिमार्ग के सभी मंदिरों के लिये यह (हवेली) शब्द पर्यायवाची बन गया। अन्य मंदिरों जैसे पुष्टिमार्गीय मंदिरों को घुम्मट या शिखरबंध बनाये नहीं जाते। किन्तु श्रीमंतों की हवेलियों की तरह उसकी रचना होने से हवेली और हवेली में गाये जाने वाले अष्टछापीय कीर्तन संगीत को हवेली संगीत कहना सुसंगत होगा। पुष्टि सम्प्रदाय का सर्व प्रथम बना हुआ गोवर्धन पर्वत का मंदिर था जिसमें श्री नाथ जी की सेवा का आरम्भ हुआ था। इस सर्व प्रथम मंदिर से लेकर आज तक के सभी मंदिर हवेलियों से मिलते जुलते बने हुए हैं।

विद्वानों का कथन है पुष्टि सृष्टि में हवेली संगीत विद्या को स्वीकार कर जीवन के साथ गायन विद्या का सम्बन्ध गहन से गहनतर बनाया है। सादगी से आरम्भ हवेली संगीत कीर्तन परम्परा ने आज तो विश्व व्यापी ख्याति अर्जित की है। इसको आगे बढ़ाने वालों पर और सुनने वालों पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है। वे अनित्यता, चिन्ता तथा भौतिक एवं शारीरिक सुख की मिथ्या लालसा से मुक्त हो मुक्ति पथ का पथिक बनते हैं। वही पाता है चिरन्तर सत्य का आनंद। जिस प्रकार ब्रज में कृष्ण की बांसुरी की धुन पर ब्रज बाल और ब्रज बालाएँ भाव विभोर हो सुध–बुध खोते थे। वही स्थिति हवेली संगीत सुननेवाले भावुक वैष्णव जनों की हो जाती है। जिसको भी कीर्तन गान सुनने, सुनाने और गाने की लौ लग जाती है वह उसी में जीवन की सार्थकता समझ लेता है। इससे ही समझना चाहिए हवेली संगीत का जीवन पर पड़ा हुआ प्रभाव है।

हवेली संगीत परम्परा के संस्थापक वल्लभाचार्य और विकासक विट्ठलनाथ जी हैं। आज भी लगभग ५०० साल बाद भी यह परम्परा पुष्टिमार्गीय मंदिरों में यथावत् रूप से चल रही है। यही इसकी महत्ता है जिसने आज इस हवेली संगीत को विश्वव्यापी बनाया है। नाथद्वारा के पुरुषोत्तम दास पखवाली जी का हवेली संगीत को विश्व भर में ख्याति दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पुरुषोत्तम दास जी के इस योगदान के फल स्वरूप भारत सरकार ने इन्हें पद्मश्री पुरस्कार से अलंकृत किया था।

आज उत्तर प्रदेश में हवेली संगीत की प्रणाली में बहुत कुछ परिवर्तन देखे जा सकते हैं। विशेषतः रागों के स्वरूप में मुगल शैली के प्रभाव से जो परिवर्तन हुए वे उत्तर प्रदेश की वर्तमान प्रचलित शैली में स्पष्ट झलकते हैं किन्तु नाथद्वारा की हवेली संगीत की परम्परा आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।[१०४]

## ९. पुष्टिमार्ग के अन्य कीर्तनकार भक्त ::

विद्वानों के मतानुसार विट्ठलनाथ जी द्वारा अष्टछाप की स्थापना एक युगान्तकारी घटना थी जिसमें आठ में से तीन महानुभावों को वाग्गेयकर का सर्वोच्च स्थान प्राप्त है ये भक्त कवि हैं – सूरदास, परमानंद दास और गोविन्द स्वामी। इस समय में और भी बहुत से भक्त कवि हुए जिन्होंने श्री नाथ जी के सम्मुख कीर्तन गान करने का गौरव प्राप्त किया। ये भक्त कवि थे – गदाधर मिश्र, पद्नाभ दास, कटहरिया, कान्ह दास, कृष्ण जीवन, हृषिकेश, गोपाल दास, गंगाबाई, चतुर बिहारी, जग जीवन, जगन्नाथ कविराय, तुलसीदास, जलधरिया थिरदास, तानसेन, धौंधी, राजा आसकरण, पर्वन सेन राजा, माणिकचंद, माधव दास, मुरारी दास, मेहा, राम दास, वृन्दावन, व्यास जी, श्याम दास, सगुणदास, हरजीवन, त्रिलोक, रामराय, भगवानहित, यादवेन्द्र, कृष्णा, ग़रीब दास, हरि नारायण, श्याम दास, अग्र स्वामी, खेम कवि, धीरज, श्री पति, विचित्र बिहारी,

अलीखान पठान, रसखान, ताज बीबी, नागरीदास हरि दास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[१०५]

इनके अलावा गुसाँई जी के चतुर्थ पुत्र गोकुलनाथ जी, पंचम पुत्र रघुनाथ जी, सप्तम पुत्र घनश्याम जी, प्रपौत्र हरिराय महाप्रभु, द्वारकेश जी, कल्याण राय जी, ब्रजभूषण जी आदि गोस्वामी महानुभावों ने भी उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ की हैं।

इनमें से कई भक्त कवियों के पद गान आज भी श्रीनाथ जी की सेवा में कीर्तन गान में गाए जाते हैं। इन भक्त कवियों में हिन्दू ही नहीं, मुसलमान समुदाय के भी भक्त थे जिन्होंने अपनी आत्मा को, मन को श्री नाथ जी के चरणों में अर्पित कर दिया और पुष्टिमार्गीय संगीत कीर्तन में सदा-सदा के लिए अमर हो गए।

विट्ठलनाथ जी ने एक बार छप्पन भोग का मनोरथ किया था, जिसमें सभी सम्प्रदाय के भक्तों को आमंत्रित किया था तथा उन भक्तों ने भी श्री नाथ जी के सम्मुख कीर्तन किया था। कहा जाता है तभी से वल्लभ सम्प्रदायी मंदिरों में चारों सम्प्रदाय के (पुष्टि, राधा वल्लभीय, हरिदासी तथा गौड़ीय) भक्तों द्वारा रचित पदों के गान की प्रथा चली थी। इन पद गानों में युगल-लीला के पदों का विशेष समावेश है।[१०६]

विद्वानों का मत है कि जिस अवसर के लिए जिस राग में जो पद गाया जाता था उसका उल्लेख भी लिखिया कर देता था। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग का कीर्तन साहित्य इतना विशाल है और ऐसा सुव्यवस्थित रूप में प्राप्त होता है। अतः हम कह सकते हैं कि वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ जी ने अपने युग के लौकिक दरबारी संगीत को आमोद-प्रमोद के वैभव विलास से निकाल कर आध्यात्मिकता की और मोड़ दिया। और इस प्रकार संगीत के गायन - वादन के क्षेत्र में अपना अपूर्व योगदान दिया। जिसने हिन्दू जीवन को संगीत के माध्यम से भक्ति की एक नई राह दिखाई। इस संगीत धारा के प्रवाह में उस समय के सभी वैष्णव सम्प्रदायों के कृष्ण भक्तों ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

विद्वानों का मत है कि आज मंदिरों में कीर्तन गान एक औपचारिकता और जड़ नियम का पालन मात्र होकर रह गया है। मंदिरों में अच्छे जानकार कीर्तनियों का अभाव होता जा रहा है। इस प्रकार देखें तो लगता है कि पुष्टिमार्ग की कीर्तन गान परम्परा उत्थान–पतन के विविध सोपानों से होती हुई आज वास्तविकता की भीषण आग में लुप्त सी होती जा रही है।

## १०. कृष्ण भक्ति काव्य साहित्य में कीर्तन संगीत का स्थान ::

भारतीय इतिहास की यह अनूठी विशेषता है कि उसमें समय–समय पर होनेवाली धार्मिक हलचलों का प्रभाव प्रायः सारे देश पर पड़ा है। भक्ति काल में अनेक प्रतिभाशाली कलाकारों ने हिन्दी काव्य को अलंकृत कर समृद्ध किया। इनमें कृष्ण भक्ति काव्य साहित्य का विशेष प्रचार हुआ। कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले थे वह प्रेम के अनन्त सौन्दर्य का समुद्र था। जिसने मानव जीवन का प्रवाह श्री कृष्ण प्रेम की और मोड़ दिया।

इन सभी भक्त कवियों की वाणी 'स्वान्तः सुखाय' थी। ये अपने ही रंग में मस्त रहने वाले थे। एक विद्वान का मत है कि 'अष्टछाप संगीतकारों की ध्रुपद धमार शैली द्वारा की गई भारतीय संगीत सेवा को क्या कभी भुलाया जा सकेगा और संस्कृत ध्रुपद ने लौकिक भाषा ब्रज में कवित्त छन्द का प्रणयन कर साहित्य क्षेत्र में अपूर्व क्रान्ति की है।'[१०७] डॉ. सावित्री सिन्हा के ये शब्द यथार्थ ही हैं 'ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति साहित्य का इतिहास लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष का दीर्घ इतिहास है, आश्चर्य की बात है उसके प्रवर्तन तथा समापन दोनों का श्रेय मुख्य रूप से वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित महानुभावों (सूरदास तथा भारतेन्दु हरिशचन्द्र) को जाता है।'[१०८]

इस समय में रचित भक्ति काव्य साहित्य ने हिन्दी साहित्य को भी अत्यन्त समृद्ध किया। भक्ति काल के इस कृष्ण साहित्य में भारतीय संस्कृति का जैसा दर्शन देखने को मिलता है वैसा हिन्दी साहित्य में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता

है। इस साहित्य में सगुण–निर्गुण भक्ति, हिन्दू–मुस्लिम एकता, आध्यात्मिक आदर्श, सामाजिक एवम् राजनैतिक जीवन तथा सभी कलाओं मुख्यतः संगीत कला का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है। भाषा की दृष्टि से भी ब्रज, अवधी जैसी बोलचाल की भाषाओं को साहित्यिक स्वरूप देने का बेजोड़ कार्य इन भक्त कवियों ने किया है। वैष्णव गीति काव्य का शास्त्रीय संगीत के रूप में चरमोत्कर्ष भी इसी कालावधि में हुआ था। यही वह समय है जिसमें गिरिराज गोवर्धन पर स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर में बहु संख्यक राग–रागिनियों में निबद्ध उन सहस्त्रों सरस पदों की दिव्य स्वर लहरियों का गूँजन होता रहा था जिन्होनें ब्रज भाषा हिन्दी के गेय काव्य को अमर बना दिया। इस प्रकार देखें तो लगभग १७० वर्षों के समय का इतिहास अष्टछापी गायन के उदय तथा विकास का साक्षी रहा है।[१०९] कीर्तन द्वारा भक्ति मग्न होकर मुक्ति पाने वालों में चैतन्य महाप्रभु, अष्टछाप महानुभव, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

यूँ तो आज भी संगीत भगवत् उपासना का आवश्यक माध्यम बना हुआ है। मंदिरों, पूजाघरों, देवालयों आदि सभी मांगलिक पूजनीय स्थानों पर हमें संगीत में बद्ध मंत्रों का स्वर सुनाई दे जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि कुछ हद तक प्रवर्तन तथा समापन के लिए ही नहीं, अपितु कृष्ण काव्य के अमूल्य साहित्य के लिए भी हिन्दी साहित्य सदैव पुष्टिमार्ग का ऋणी रहेगा।

## ११. पुष्टिमार्गीय कीर्तन की मुख्य पुस्तकें तथा उनका विवरण ::

आज पुष्टिमार्गीय मंदिरों में गाये जाने वाले कीर्तन पद गान की पुस्तकें चार भागों में देखी जा सकती हैं। जिनमें नित्य सेवा के पद, वर्षोत्सव सेवा के पद, पर्वों–त्यौहारों के पद, प्रकृति सौंदर्य के पद, विनय के पद, गुरु महिमा के पद, वात्सल्य के पद तथा अन्य अनेक लीलात्मक भावना के पद गान देखने को मिलते हैं –

पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह की मुख्य पुस्तकें :[११०]

१. वर्षोत्सव के पद (भाग – १)
जन्माष्टमी से रास पर्यन्त

२. वर्षोत्सव के पद (भाग – २)
धनतेरस से राखी पर्यन्त

३. नित्य के पद (भाग – ३)

४. बसन्त, धमार, होली, रसिया के पद (भाग – ४)

**१. प्रथम भाग में हमें मुख्यतः निम्न लिखित त्यौहारों के कीर्तन के पद मिलते हैं –**

जन्माष्टमी की बधाई के पद,

माहात्म्य के पद,

नाल छेदन के पद,

छठी के पद,

पूतना वध के पद,

पलना के पद, चंदन के पलना के पद, – फूल के पलना के पद,

कुल्हे के पद,

जोगी लीला के पद,

ढाढी के पद,

दसोंधि के पद,

मास दिन के चौक के पद,

करवट के पद,

नामकरने के पद,

कान छेदन के पद,

अन्न प्राशन के पद,

मृतिका भक्षण के पद,

ऊखल के पद,

बाल लीला के पद,

शकटासुर वध लीला के पद,

तृणावर्त वध लीला के पद,

दावानल पान लीला के पद,

कालिया दमन लीला के पद,

श्री चंद्रवली जी की बधाई,

श्री ललिता जी की बधाई,

श्री बलदेव जी की बधाई के पद,

विशाख जी की बधाई के पद,

श्री राधा जी की बधाई के पद,

श्री राधा जी के पलना के पद,

श्री राधा जी के ढाढी के पद,

श्री राधा जी के बाल लीला के पद,

श्री नवनागरी के पद,

श्री वामन जयंती के पद,

दान के पद,

दान लीला के पद,

दान के दिनन में मान के पद,

सांझी के पद, – कोट की आरती के पद,

मुरली के पद,

श्री रामचन्द्र जी के करखा के पद,

नव विलास के पद,

दश उल्लास के पद,

देवी पूजन के पद,

दशहरा के पद – भोग सरायवे के पद,

दशहरा मान के पद, दशहरा दूसरा दिन मंगला के पद, रास के पद,

**इन कीर्तन पदों में गाए जाने वाले मुख्य राग – रागिनियाँ –**

देवगंधार, भैरव, रामकली, बिलावल, आसावरी, धनाश्री, जेतश्री, सारंग, नट, मल्हार, काफी, देश, गोरी, जैजैवंती, राइसो, कान्हरो, नाइकी (नायकी), बिहाग,

पूर्वी, मारु, ललित, मालकौस, विभास, टोडी, परज, ईमन, सूहा, केदारो, खट, गौड सारंग, खमाज, कल्याण, पीलु, श्याम कल्याण, अडानौ, बिहागरो, सोरठ, हमीर, जंगलो, श्री, नूर सारंग, श्री राग।

**कीर्तन पदों के मुख्य कवियों के नाम –**

सूरदास, परमानंद दास, नंद दास, चतुर्भुज दास, गोविंद दास, कृष्ण दास, कुम्भन दास, छीत स्वामि, श्री विट्ठलगिरिधर, माधो दास, द्वारकेश, हित हरिवंश, राजा आसकरन, रसिक प्रीतम, कल्याण के प्रभु, चतुर बिहारी, गरीब दास, दास गोपाल, कटहरिया, घोंघी, गंग ग्वाल, मानिकचंद्र, हरि नारायण स्यामदास, गदाघर दास, तानसेन, जयदेव, सगुणदास, कृष्ण जीवन लछीराम, रसखान, हरि दास, श्री भट्ट, जन भगवान, मुरारी दास, जगजीवन, जन त्रिलोक, नागरी दास, जन हरिया, राम दास, रघुनाथ दास, रामराय, ब्रजपति, ब्रजाधीश, दामोदर हित, मान दास, व्यासजी, श्याम दास, ब्रजजन, आनंद घन, सरस रंग, रामकृष्ण, रघुवीर, निजजन, सूरदास मदनमोहन, सुजान, नारायण, मदन मोहन, यदुनाथ दास, विट्ठल दास, केसौ दास, जगन्नाथ कविराय, अग्र दास।

२. **द्वितीय भाग के कीर्तन में धन तेरस से राखी पर्यन्त के वर्षोत्सव के कीर्तन के पद देखने को मिलते हैं –**

धन तेरस के पद,
चतुर्दशी – अभ्यंग के पद,
दिवारी के पद,
गाय खिलायवे के पद (भोग आरती में)
गाय को कान जगायवें के पद,
दीप मालिका के पद,
हाटरी में आरती के पद,
पासा खेल के पद,
दीवारी के पोढवें के पद,

गोवर्धन लीला (सरस लीला) के पद,

गोवर्धन लीला अन्नकूट के पद,

गोवर्धन पूजा के पद,

श्री गिरिराज जी के पद,

अन्नकूट भोग आयवें के पद,

अन्नकूट भोग सरायवें के पद, अन्नकूट आरती तथा इन्द्रमान भंगके पद,

इन्द्रमान भंग के पद,

गिरिराज जी नेच पधरायवे के पद,

भाई दूज के पद, (तिलक के और राज भोग आयवे के पद)

गोपाष्टमी के पद,

देव दीवाली देव प्रबोधिनी के पद,

देव जगायवे के पद, (देवोत्थापन)

ब्याह के और शेहरा के पद,

शेहरा के पद,

श्री गुसाँई जी की बधाई के पद,

नामरत्न नी बधाई

श्री गुसाँई जी पलना के पद,

श्री गुसाँई जी के विवांह के पद,

सात बालकन की बधाई के पद,

१. श्री गिरिधर जी की बधाई के पद,

२. श्री गोविदराय जी की बधाई के पद,

३. श्री बालकृष्ण जी की बधाई के पद,

४. श्री गोकुलनाथ जी की बधाई के पद,

श्री गुसाँई जी के सात लालजी जी की बधाई –

माला तिलक प्रसंग –

श्री गोकुलनाथ जी पलना के पद,

श्री गोकुलनाथ जी के बाललीला के पद,

५. श्री रघुनाथ जी की बधाई के पद,

६. श्री यदुनाथ जी की बधाई के पद,

७. श्री घनश्याम जी की बधाई के पद,

(वल्लभाचार्य के पुत्र) श्री गोपीनाथ जी की बधाई के पद,

श्री पुरुषोत्तम जी (गोपीनाथ जी के पुत्र) की बधाई,

श्री हरिराय जी की बधाई,

भोगी संक्रांति के पद,

मकर संक्रांति के पद,

मकर संक्रांति भोजन के पद – पतंग के पद,

श्री दामोदर दास हरसानी जी की बधाई,

द्वितीय पाटोत्सव के पद, (डोल उत्सव के दूसरे दिन)

संवत्सर उत्सव के पद,

गनगौर के पद – गनगौर के दिन छाक के पद,

श्री यमुना जी की बधाई के पद,

श्री रामनवमी जी की बधाई के पद, रामनवमी के पलना के पद,

श्री राम के बाल लीला के पद,

श्री राम के ढाढी के पद, चोकडा,

श्री महाप्रभुजी की बधाई

श्री आचार्य जी के पलना के पद,

श्री आचार्य जी के बाललीला के पद,

श्री महाप्रभु जी के विवाह खेल के पद,

स्नान यात्रा के पद,

श्री महाप्रभु जी की ढाढी लीला के पद,

श्री नृसिंह जी के पद,

गंगा दसमी के पद,

स्नान यात्रा के पद,

खंडिता के पद,

रथयात्रा के पद,

रथ में पधारें तब मल्हार की अल्पचारी

रथ के पद – भोग आवे के पद, – दूसरे दिन मंगला के पद,

रथ में से उतरने के पद,

रथयात्रा के पद,

मल्हार जगायवे के पद,

मल्हार कलेऊ के पद,

मल्हार मंगला दरशन.

मल्हार के पद,

मल्हार (अभ्यंग) के पद,

मल्हार श्रृंगार दर्शन के पद,

मल्हार कसुंबी छठ और लाल घटा के पद,

मल्हार श्याम घटा के पद,

मल्हार जाम्बली घटा के पद,

मल्हार गुलाबी घटा के पद,

मल्हार हरी घटा के पद,

मल्हार पीरी घटा के पद,

मल्हार मुगट के पद,

मल्हार टिपारा के पद,

मल्हार सेहरा के पद,

मल्हार चंद्रिका के पद,

मल्हार ग्वाल पगा के पद,

मल्हार चूनरी के पद,

मल्हार लहेरियों के पद,

मल्हार कुल्हे के पद,

मल्हार छाक के पद,

मल्हार भोग सरवे के पद,

मल्हार बीरी खवाय के पद,

मल्हार राजभोग दर्शन के पद,

मल्हार संध्या आरती के पद,

मल्हार यारु के पद,

मल्हार दूध के पद,

मल्हार शयन दर्शन के पद,

मल्हार मान के पद,

मल्हार पोढ़ायवे के पद,

हिंडोरा अधिवासन के पद,

हिंडोरा चंदन के पद,

हिंडोरा मंगला दर्शन के पद,

हिंडोरा श्रृंगार दर्शन कें पद,

हिंडोरा मुकुट के पद,

शरद के हिंडोरा,

हिंडोरा के पद (टीपारी),

हिंडोरा के पद शेहरा,

हिंडोरा द्रुमालो के पद,

हिंडोरा कूल्हे के पद,

हिंडोरा फेंटा के पद,

हिंडोरा कुसुम्बी घटा क़े पद,

हिंडोरा श्याम घटा के पद, हिंडोरा गुलाबी घटा के पद,

केसर के हिंडोरा –

हिंडोरा हरि घटा के पद,

हिंडोरा जाम्बली घटा के पद,

हिंडोरा चुनरी के पद,

हिंडोरा लहेरिया के पद,

फूल के हिंडोरा,

मचकी और फल – फूल हिंडोरो के पद,

श्री गिरिराज ऊपर के हिंडोरना,

श्री यमुना पुलिन हिंडोरा,

कांच के हिंडोरा,

सोने के हिंडोरा के पद,

सखी भेष के हिंडोरा,

चोकडा – हिंडोरे के पद, ठकुरानी तीज – हिंडोरा के पद,

नाग पंचमी के पद – हिंडोरना के,

हिंडोला – बगीचा के पद,

बगीचा के हिंडोरा दर्शन,

पीछे भीतर हिंडोरा में झूले तब,

राखी के हिंडोरा के पद,

पवित्रा के हिंडोरा के पद,

श्री गुसाँई जी के हिंडोरा,

हिंडोरा मल्हार के पद,

हिंडोरा के पद–राग–नट, मालव, गोरी,मारु, सोरठ, काफी, कल्याण, ईमन, अडानो, कान्हरो, केदारो, जंगलो, बिहाग, सारंग, पीलू

हिंडोरा झूलि उतरवे के पद,

पवित्रा धरायवे के पद,

श्री आचार्य जी के पवित्रा घरायवे के पद,

राखी के पद,

छप्पन भोग के पद,

श्री गुसाँई जी के विवाह के पद,

मान सागर के पद,

## उपरोक्त पदों में प्रयुक्त राग–रागिनियाँ –

देवगंधार, भैरव, रामकली, बिलावल, आसावरी, धनाश्री, जेतश्री, सारंग, नट, मल्हार, काफी, गौरी, जैजैवंती, राइसो, कान्हरो, नाइकी (नायकी), बिहाग, पूर्वी, मारु, ललित, मालकौस, टोडी, परज, ईमन, सूहा, केदारो, खट, गौड सारंग, खमाच, कल्याण, अडानौ, बिहागरो, सोरठ, हमीर, जंगलो, श्री, नूर सारंग, झीझंटी, खमायची, मालव

विभास, बिलावर चोखंडो, आसावरी चोखंडो, हमीर कल्याण, राग पंचम, मधुमती सारंग, होरी, मेघ मल्हार, बसंत, सुघराई सोहनी, माला, भीम पलासी, मिश्र पिलू।

**कीर्तन पदों के मुख्य कवियों के नाम –**

विष्णुदास, जदुनाथ दास, सूर दास, परमानंद दास, नंद दास, चतुर्भुज दास, गोविंद दास, विचित्र बिहारी, कृष्ण दास, कुम्भन दास, छीत स्वामी, श्री विठ्ठलगिरिधर, माधो दास, द्वारकेश, केशव किशोर, हित हरिवंश, राजा आसकरन, रसिक प्रीतम, कल्याण के प्रभु, चतुर बिहारी, अलीखान, दयाल, मुकुन्ददास, सगुण दास, ब्रह्म दास, तुलसी दास, गोपाल दास, अग्र दास, श्री भट्ट, ब्रजपति, ब्रजाधीश, मान दास, व्यासजी, गिरिधर दास, हरिदास स्वामी, रामदास, पद्‌मनाभदास, मानिकचंद, तानसेन, सुघर राय, सेठ पुरुषोत्तम, ऋषीकेश, जगन्नाथ, कविराय, मुरारी दास, हरिनारायण स्यामदास, केसो दास, हर जीवन दास, जन भगवान, जयदेव, गदाधरदास।

३. **पुष्टिमार्गीय कीर्तन के तृतीय भाग में नित्य के पद आते हैं –**

अथ श्री आचार्य जी महाप्रभु जी के पद,
श्री गुसाँई जी के पद,
गोकुलनाथ जी के पद,
श्री यमुना जी के पद,
जगायेव जी के पद,
कलेऊ जी के पद,
व्रतचर्या जी के पद,
शीतकाल खंडिता जी के पद, (मंगला शृंगार)
अभ्यंत और शृंगार दर्शन के पद, (शृंगार से शयन तक)
कुल्हे जी के पद,
कुल्हे टिपारों,
पगा के पद,
फेटा शृंगार,
दुमाला,

घटा के पद, (शृंगार)
शीतकाल के शृंगार के पद,
शीतकाल के भोजन बुलायवे के पद,
शीतकाल के भोजन के पद,
शीतकाल के श्री ब्रज भक्तन के भोजन के पद,
भोग सरायवे के पद,
बीरी के पद,
हिलग के पद, (शीतकाल राजभोग दर्शन में)
शीतकला भोग समय के पद,
संध्या आरती के पद–गाय बुलायवे के पद,
आवनी के पद,
शयन दर्शन के पद,
मान के पद,
उत्तर नंदेत मोरली
पोढवे के पद,
मंगला आरती के पद, (उष्णकाल)
मंगला दर्शन के पद,
खंडिता के पद,
अभ्यंग के पद,
उष्णकाल– शृंगार के पद, (शृंगार धरायवे के और दर्शन के पद)
अथ शृंगार सन्मुख के पद,
खसखसाने के पद,
शृंगार दर्शन के पद, (पगा शृंगार के पद, सुबह से शाम तक)
कुल्हे के पद,
पाग चंद्रिका,
टोपी,
टोपारो के पद,
मुगट शृंगार के पद,

किरीट मुगट के पद,

दुमाला श्रृंगार के पद,

दधि मंथन के पद,

माखन चोरी के पद,

गोदोहन के पद,

ग्वाल के पद,

उराहने के पद,

घैया के पद,

बलदेव जी के पद,

नित्य छाक के पद,

फ़ल फलारी के पदं,

कुंज भोजन के पद,

उसीर छाक के पद,

नाव के छाक के पद,

उष्णकाल भोग सरायवे के पद,

उसीर बीरी के पद,

राजभोग आरती के पद,

राग माला के पद,

पलकन भावना के पद,

राजभोग दर्शन के पद, राजभोग कुंज के पद,

मानकुंज के पद,

अक्षय तृतीया के पद,

कलेऊ के पद,

चंदन के पद,

खसखाने के पद,

नाव के पद,

उष्णकाल परदनी, फूल मंडली के पद,

फूल श्रृंगार,

मान सागर के पद,

अष्ट सखिन के भावसो–फूलन के आठ शृंगार के पद,

फूल की पाग के पद,

फूल की शृंगार धरे जब के पद,

पिछोरा (फूल के शृंगार)

फूल की सेहरा के पद,

फूल का मुगट,

टिपारो,

पनघट के पद,

उत्थापन के पद,

भोग दर्शन के पद, (शाम के),

उसीर भोग दर्शन के पद,

संध्या आरती के पद,

आवनी के पद,

उसीर आवनी के पद,

अथ शृंगार बड़े करवे के पद,

अथ मिस के पद,

चंद्र प्रकाश के पद,

सांझ समय घैया के पद,

व्यारु के पद,

उसीर व्यारु के पद,

दूध के पद,

उसीर दूध के पद,

बीरी के पद,

शयन दर्शन के पद, (उष्णकाल)

कुंज शयन दर्शन के पद,

उसीर शयन दर्शन के पद,

अथ मान के पद,

मान छूटवे के पद,

मान मिलाप के पद,

पोंढवे के पद,

उसीर पोंढवे के पद,

कहानी के पद,

विनती के पद,

वैष्णवन के नित्य नेमं के पद,

वैराग्य के पद,

अथ माहात्म्य के पद,

आश्रय के पद,

अथ मान सागर के पद,

**उपरोक्त पदों में प्रयुक्त राग – रागिनियाँ –**

देवगंधार, भैरव, रामकली, बिलावल, आसावरी, धनाश्री, जेतश्री, बिभास, सारंग, नट, मल्हार, काफी, देश,गोरी,कान्हरो, नाइकी (नायकी), बिहाग, पूर्वी, ललित, मालकौस, टोडी, ईमन, केदारो, खट, खमाज, कल्याण, अडानौ, बिहागरो, सोरठ, हमीर, पंचम, टिपारो, हमीर–कल्याण।

**कीर्तन पदों के मुख्य कवियों के नाम –**

सूर दास, परमानंद दास, नंद दास, चतुर्भुज दास, गोविंद दास, कृष्ण दास, कुम्भन दास, छीत स्वामी, श्री विट्ठलगिरिधर, माधो दास, द्वारकेश, पद्मनाभ दास, हित हरिवंश, राजा आसकरन, रसिक प्रीतम, कल्याण के प्रभु, चतुर बिहारी, रघुनाथ दास, दास गोपाल, कटहरिया, घोंघी, कृष्ण जीवन लछीराम, गदाधर दास, हरिदास स्वामी, श्री भट्ट, ब्रजपति, ब्रजाधीश, मान दास, व्यासजी, जन त्रिलोक, जग जीवन, मुरारीदास, अग्रदास, गिरधर दास, किशोरीदास, जन कल्याण, हरिनारायण स्यामदास, सुघर राय, तानसेन, जगन्नाथ कविराय, केसोदास, विष्णुदास, विचित्र बिहारी, ब्रह्मदास, जन भगवान, ऋषिकेश, दयाल, जयदेव, सगुण दास, सेठ पुरुषोत्तम।

**४. पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह के चतुर्थ भगा में बसन्त, धमार, होली, रसिया के पद आते हैं –**

बसंत बहार के पद,

श्री दामोदर दास जी की बधाई (पोढवाने)

माला शयन दर्शन

श्री गुसाँई जी तथा श्री जयदेव जी की अष्टपदी,

बसंत पंचमी के पद,

बसंत जगायवे के पद,

बसंत कलेऊ के पद,

बसंत मंगला के पद,

बसंत पालने के पद,

राजभोग खेल के पद,

बसंत राजभोग खेल के पद, (शेहरा के पद)

संध्या आरती,

टिपारे के पद,

श्री गुसाँई खेल के पद,

बसंत के पद,

धमार होरी के पद, – (मंगला दर्शन)

धमार पांडे के पद,

होरी डांडा के पद,

गारी की धमार,

होली उत्सव के पद,

धमार के पद,

धमार फेंटा के पद,

धमार दुमाला के पद,

धमार कुल्हे के पद,

चुनरी के पद,

धमार शेहरा के पद,

धमार मुगट के पद,

धमार टीपारा के पद,

धमार के पद,

धमार के पद, (शिवरात्री के दिन)

धमार के पंथ जी लाल के पद,

वसंत धमार मान के पद,

वसंत धमार पौढवे के पद,

वसंत धमार आश्रय के पद,

वसंत धमार आशीष के पद,

डोल के पद,

डोल – आशीष के पद,

श्री गुसाँई भादो बसंत

शेहरा के पद,

डोल के पद,

होरी – रसिया के पद,

**उपरोक्त पदो में प्रयुक्त राग – रागिनियाँ –**

देवगंधार, भैरव, रामकली, बिलावल, आसावरी, धनाश्री, जेतश्री, बसंत, माला, हिंडोल, पंचम, सुघराई, घन्याश्री, सोरठ बिलावल, मरी, धमार, सोहनी, गोड–मल्हार, सिंघुडो, मालव, माल श्री, श्री हठी, भूपाली, रायसों, दरबारी, कान्हरो, होरी–काफि, सारंग, नट, काफी, गोरी, जैजैवंती, कान्हरो, नाइकी (नायकी), बिहाग, पूर्वी, मारु, ललित, मालकौस, विभास, टोडी, ईमन, केदारो, खट, गौड सारंग, कल्याण, अडानौ, बिहागरो, सोरठ, हमीर।

**कीर्तन पदों के मुख्य कवियों के नाम –**

सूर दास, परमानंद दास, नंद दास, चतुर्भुज दास, गोविंद दास, कृष्ण दास, कुम्भन दास, छीत स्वामी, माधो दास, द्वारकेश, हित हरिवंश, राजा आसकरन, रसिक प्रीतम, कल्याण के प्रभु, दास गोपाल, घोंघी, कृष्ण जीवन लछीराम,

रसखान, हरि दास, श्री भट्ट, राम दास, ब्रजपति, ब्रजाधीश, दामोदर हित, मान दास, व्यासजी, सुजान, नारायण, मदन मोहन, रघुनाथ दास, विष्णु दास, पर्वत सेन, मुरारी दास, जयदेव, हर जीवन, सुघर राय, अग्रदास, जन गोविंद, गोपाल, दास, पद्मनाभ दास, ऋषिकेश, गदाधर दास, जन त्रिलोक, माधुरी दास, जगन्नाथ कविराय, जन हरिया, सगुण दास, दयाल, विचित्र बिहारी, श्याम दास, रामराय।

**पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह के चतुर्थ भाग से अष्टछाप और उनके अष्टांग कवियों के नाम की तालिका दी हुई है जो इस प्रकार है –**[१११]

| **सूरदास** | **परमानंद दास** |
|---|---|
| अलीखान | आशकरन |
| कृष्ण जीवन लछीराम | गदाधर दास |
| जगन्नाथ कविराय | गोपाल दास |
| जन भगवान | पद्मनाभ दास |
| तानसेन | मानिकचंद |
| मुकुन्द दास | रसिक बिहारी |
| मुरारी दास | सगुण दास |
| हरिनारायण स्यामदास | हर जीवन दास |

| **कुम्भनदास** | **कृष्णदास** |
|---|---|
| प्रभु मुकुन्द | चतुर बिहारी |
| किशोरी दास | गोपाल दास (दूसरे) |
| माधुरी दास | जग जीवन |
| रसखान | जन त्रिलोक |
| लघु गोपाल | दास माधव |
| कृष्ण दास | नागरी दास |

| | |
|---|---|
| हरि दास | राम राय |
| हित हरिवंश | रूप माधुरी |

| | |
|---|---|
| **गोविन्द स्वामी** | **छीत स्वामी** |
| कल्याण के प्रभु | अग्र स्वामी |
| रसिक दास (मट्टजी महाराज) | केशव किशोर |
| कृष्ण दास (दूसरे) | जन गिरिधर |
| द्वारकेश | भगवान दास |
| व्रज पति | माधुरी दास |
| व्रजाधीश | ऋषिकेश |
| हरीराय (रसिक) | श्याम दास |
| श्री विट्ठल गिरिधर जी (गंगा बाई) | सुधर राई |

| | |
|---|---|
| **चतुर्भुज दास** | **नंद दास** |
| दामोदर हित | कटहरिया |
| प्रेम प्रभु | ताज बीबी |
| विचित्र विहारी | कहे भगवान हित |
| बिहारी दास | जन हरिया |
| मान दास | धोंधी |
| व्यास जी स्वामी | राम दास |
| श्री भट्ट | रघुनाथ दास |
| कल्याण के प्रभु (जन कल्याण) | हरि दास स्वामी |

**नोट :** इन कीर्तन कवियों का परिचय हमें ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ता से भी मिलता है।

******

## :: संदर्भ सूची ::

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

१. श्रीमद् भागवत महापुराण (१०/२१/१५)
२. पुष्टि पाथेय (भारतीय संगीत – २३०)
लेखक : प. ओंकारनाथ जी ठाकुर
३, ४, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ५०
लेखिका : उषा गुप्ता
५. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ९२
लेखिका : उषा गुप्ता
६. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६६,
लेखिका : उषा गुप्ता
७. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ९२, लेखिका : उषा गुप्ता
८. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ५१,५२, लेखिका : उषा गुप्ता
९. अष्टछापीय भक्ति संगीतः उद्भव और विकास–१, लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक
१०. अष्टछाप परिचय – ३५१, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
११. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उद्भव और विकास–१,
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक
१२, १३, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ५१
लेखिका : उषा गुप्ता
१४. 'आहतोडनाहतश्चेति द्विघा नादो निगघते'
अष्टछापीय भक्ति संगीत : उद्भव और विकास (प्रास्ताविक)
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक
१५. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास (प्रास्ताविक)
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक
१६. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत–५४, लेखिका : उषा गुप्ता
१७. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ५५,
लेखिका : उषा गुप्ता
१८, १९, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ५८,
लेखिका : उषा गुप्ता
२०. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य मे संगीत – ५९,
लेखिका : उषा गुप्ता
२१. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ५९
लेखिका : उषा गुप्ता
२२. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६०

लेखिका : उषा गुप्ता

२३. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६१
लेखिका : उषा गुप्ता

२४. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६२
लेखिका : उषा गुप्ता

२५, २६, २७, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६२
लेखिका : उषा गुप्ता

२८, २९, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६३
लेखिका : उषा गुप्ता

३०. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ६३, लेखिका : उषा गुप्ता

३१. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १०२, लेखिका : उषा गुप्ता

३२. अष्टछापीय भक्ति संगीतः उदभव और विकास – १३
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

३३. अष्टछापीय भक्ति संगीतः उदभव और विकास – १
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

३४. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १०१
लेखिका : उषा गुप्ता

३५. श्रीमद् भागवत महापुराण (१/६/३९)

३६. श्रीमद् भागवत महापुराण (१०/३२/२)

३७. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १०३
लेखिका : उषा गुप्ता

३८. 'तस्य गीतस्य माहात्म्यं कः प्रशंसितुमीशते।
धर्मार्थकाम मोक्षाणा मिदमेवैकसाधनम्।।'
हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १०१
लेखिका : उषा गुप्ता

३९. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ७६
लेखिका : उषा गुप्ता

४०. श्रीमद् भागवत महापुराण (१२/३/५१)

४१. अष्टछाप परिचय – ३५१, ३५२ लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

४२. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(अष्टछाप संगीत एवं उसके वाध यंत्र – २०६) लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

४३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।।) – (५६४ – ५६५)
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

४४, ४५, अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास – ५८ – ६१
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

४६. हिन्दी साहित्य का इतिहास – ४४
लेखक : रामचंद्र शुक्ल

४७. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १०८ लेखिका : ऊषा गुप्ता

४८. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – ४१
लेखिका : उषा गुप्ता

४९. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास– (५) – २०४
नागरी प्रचारणी सभा

५०. अष्टछाप परिचय – ३५८, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

५१. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – २०४
लेखिका : उषा गुप्ता

५२. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उद्भव और विकास – ९०
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

५३. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उद्भव और विकास – ९८
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

५४. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास – (५) – २७, नागरी प्रचारणी सभा

५५. + अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (१) – ५५ लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त
+ अष्टछाप परिचय– ३५८, लेखक : प्रभुदयाल मीत्तल

५६. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (१) – ५६
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

५७. वल्लभाचार्य ने भगवद् सेवा में कीर्तन का महत्व बताते हुए कहा है–

> 'महत्ता कृपाया यावद् भगवान् दययिष्यति ।
> तावदानंदसंदोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि ॥
> महतां कृपया यद्वत्कीतनं सुखदं सदा ।
> न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजन रूक्षवत् ॥
> गुणगाने सुखावाप्तिगोविन्दस्य प्रजायते ।
> यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतो न्यतः ॥
> तस्मात्सर्व परत्यिज्य निरूद्धैः सर्वदा गुणः ।
> सदानंदपरेगैयाः सच्चिदानंदता ततः ॥'

अर्थात् अपने सुख के लिए आनन्दपूर्वक भगवान का कीर्तन करना परम सुखकारी है जब तक गुरुजनों की कृपा से भगवान भक्त पर अनुग्रह नहीं करते । इसी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए वल्लभाचार्य जी ने नित्य व नैमित्तिक सेवा में कीर्तन को प्रमुख स्थान दिया और श्री नाथ जी की सेवा प्रारम्भ करते हुए कुम्भनन्ददास, सूरदास, कृष्णदास तथा परमानंद दास को कीर्तनियाँ नियुक्त किया ।

पुष्टि माधुर्यः कृष्णदास स्मृति ग्रन्थ – (पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन प्रणाली – ८८)
लेखक : राकेश बाला सक्सेना

५८. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ (पुष्टि मार्ग की संगीत परम्परा – ९७)
लेखक : गोस्वामी द्वारकेशलाल जी.

५९. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ (अष्टछाप की गायिकी का वर्तमान स्वरूप – ७३),
लेखक : विश्वनाथ शुक्ल

६०. 'कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति होके महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं ब्रजेत्॥'
+ श्रीमद् भागवत महापुराण (१२/३/५१)

६१. हीरक जयन्ती ग्रंथ – (अष्टछाप संगीत एवं उसके वाधयंत्र – २०६)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (II) – ५६४, लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

६३. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ
(अष्टछाप की गायिकी का वर्तमान स्वरूप – ७४), लेखक : विश्वनाथ शुक्ल

६४. हीरक जयन्ती ग्रंथ– (अष्टछाप संगीत एवं उसके वाधयंत्र – २०६)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६५. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (II) – ५६२
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

६६. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास – १०
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

६७. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास – १५
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

६८. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास – १०
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

६९. श्रीमद् भागवत महा पुराण, (११/१४/२८)

७०. श्रीमद् भागवत महापुराण, भागवत महात्म्य (६/८५–८७)

७१. अष्टछाप कवियों का विस्तृत विवरण आगे के अध्यायों में दिया जाएगा।

७२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (II) – ५६८
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

७३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय–(II) – ५६८
लेखक : दीन दयालु गुप्ता

७४. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धांत और संदेश – (II)
(पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली – १४५)
लेखक : श्री कृष्णदास झालानी

७५. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रन्थ
(पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन प्रणाली – ८९) लेखक : राकेश बाल सक्सेना

७६. + अष्टछाप – परिचय – ३६२,
लेखक : प्रभु दयाल मीतल
+ हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १२७
लेखिका : उषा गुप्ता

७७. अष्टछाप परिचय – ३६४
लेखक : प्रभु दयाल मीतल

७८. हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत – १२६
लेखिका : उषा गुप्ता

७९. + अष्टछाप परिचय – ३६३,
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
+ हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १२७
लेखिका : उषा गुप्ता

८०. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १९१
लेखिका : उषा गुप्ता

८१. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १९१
लेखिका : उषा गुप्ता

८२. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १९०
लेखिका : उषा गुप्ता

८३. ८४, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १९५
लेखिका : उषा गुप्ता

८५. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १७७
लेखिका : उषा गुप्ता

८६. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – १९३
लेखिका : उषा गुप्ता

८७. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास – (।।) – ९
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

८८. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास – (।।) – १२१
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

८९. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत – २१५
लेखिका : उषा गुप्ता

९०. हीरक जयन्ती ग्रन्थ – (अष्टछाप संगीत एवं उसके वाद्ययंत्र–२०८)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक
+ अष्टछापिय भक्ति संगीत– : उदभव और विकास–(।।)– ९
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

९१, ९२, ९३, हीरक जयन्ती ग्रंथ
(अष्टछाप संगीत एवं उसके वाद्य यंत्र–२०७)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

९४. + अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास– ११७
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक
+ हीरक जयन्ती ग्रन्थ – (अष्टछाप संगीत एवं उसके वाद्य यंत्र–२०७)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

९५. + हिरक जयन्ती ग्रन्थ – (अष्टछाप संगीत एवं उसके वाद्य यंत्र–२०७)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक
+ पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ
(पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन प्रणाली – ८९)
लेखक : राकेशबाल सक्सेना

९६. अष्टछाप – परिचय – ३४९, ३५० लेखक : प्रभुदयाल मीत्तल

९७. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ (अष्टछाप की गान–वाद्य परम्परा– ८२)
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

९८. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रथ– (पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन प्रणाली– ८८,८९)
लेखक : राकेशबाल सक्सेना

९९. पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ
(अष्टछाप की गायिकी का वर्तमान स्वरूप – ७६)
लेखक : विश्वनाथ शुक्ल

१००. अष्टछाप – परिचय – ३५४, लेखक : प्रभुदयाल मीत्तल

१०१. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास– (।।) – ३८
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

१०२. अष्टछापीय भक्ति संगीत : उदभव और विकास– (।) – २०७
लेखक : चम्पकलाल छबीलदास नायक

१०३. पुष्टि पाथेय
(पुष्टि मार्ग की संगीत परम्परा – २२४)
लेखक : गोस्वामी द्वारकेशलाल जी

१०४. हीरक जयन्ती ग्रंथ (शास्त्रीय हवेली संगीत का क्रमिक विकास – ५२०)
लेखक : गंगाधर शास्त्री

१०५. इन भक्तों का विस्तृत वर्णन ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ता में मिलता है।

१०६. अष्टछाप और वल्लभं सम्प्रदाय : (।।) – ४२८
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

१०७. हीरक जयन्ती ग्रंथ (अष्टछाप संगीत एवं उसके वाद्य यंत्र – २०८)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

१०८. पुष्टि मार्धुय : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ (पुष्टिमार्ग कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेरणा भूमि – १५३)
लेखक : राजेन्द्र रंजन

१०९. पुष्टि मार्धुय : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ (अष्टछाप की गान–वाद्य परंपरा – ७९)
लेखक : प्रभु दयाल मीतल

११०. पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह की पुस्तकें मुझे श्री गुसाँई जी बैठक जी, खम्भात से एक सहृदय वैष्णव की सहायता से देखने को मिली थी।

१११. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ,
(वल्लभ सम्प्रदाय के ब्रजभाषा साहित्य की खोज–३६२)
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

******

Chap-4

# चतुर्थ अध्याय

# पुष्टिमार्गीय साहित्य

## १. मुख्य पुष्टिमार्गीय गध साहित्य :-

### 1. वार्ता साहित्य ::

### १. वार्ता शब्द की व्याख्या –

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में वार्ता साहित्य का अपना महत्व है। पुष्टिमार्ग में पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के अनुयायियों से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं का संकलन 'वैष्णवन की वार्ता' कहलाता है। 'वार्ता' शब्द के अर्थ में अनेक तर्क विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए जा चुके हैं, किन्तु आज 'वार्ता' का अर्थ केवल कहानी से है जिसमें मनोरंजन के साथ उपदेशात्मक ध्वनि होती है। वार्ता में तत्कालीन समाज की, रीति–रिवाज की, धार्मिक–भौगोलिक वर्णन तथा प्रांतीय वातावरण एवं भाषा का रूप आदि भी देखने को मिलता है। वार्ता कभी भी, कहीं भी, किसी भी समय पर सुनी एवं सुनाई जा सकती है। वार्ता के पात्र सामान्यतः सार्वजनिक पात्र होते हैं जैसे–मनुष्य और उसकी सभ्यता, संस्कृति व लोक व्यवहार का आचरण आदि। तात्पर्य यह है कि वार्ता आदर्श, सदाचार, सामाजिक, संस्कृति व धार्मिक भावानाओं को अपने में समेट कर चलती है। वार्ता साहित्य का प्राचीन रूप हमें धार्मिक कथाओं में तथा गाथाओं में देखने को मिलता है। प्राचीन समय में धर्मोपदेशक अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के लिए कथा का साकार रूप जन साधारण के सामने रखते थे। जिसका असर जन–मानस पर सीधा व सरल रूप में पड़ता था। वर्तमान हिन्दी साहित्य में आधुनिक कहानी को इसी गाथा का, साकार कथा का विकसित रूप कह सकते हैं।[1]

### २. वार्ता साहित्य का आरम्भ –

वार्ता साहित्य के आरम्भ के विषय में डॉ. हरिहरनाथ टण्डन का कहना इस प्रकार है–''वार्ता साहित्य का आरम्भ श्री वल्लभाचार्य जी के समय में उन्हीं के द्वारा मौखिक रूप में हुआ था। उसका विस्तार पीछे से दामोदर दास हरसानी एवं श्री विट्ठलनाथ जी द्वारा हुआ था। इसीलिए इन मौखिक प्रसंगों का उल्लेख गोस्वामी श्री गोकुलनाथ जी ने जो कि श्री विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र थे अपने संस्कृत ग्रन्थों की टीकाओं में भी किया है। जैसा कि 'वल्लभाष्टक' की टीका में कृष्णदास मेघन का अग्नि उठाने का प्रसंग।''[२] आगे डॉ. टण्डन का कहना है कि–'आचार्य जी ने अपने पुत्रों को समझाने के लिए मार्ग की सब वार्ता (अर्थात् चरित्र व सिद्धान्त) भक्ति की ज्ञानात्मक स्वरूप (और भगवत् लीला रहस्य) भावना को दामोदरदास के हृदय में रखा था। उनसे श्री गुसाँई जी ने ये बातें प्राप्त की थी।'[३] मौखिक वार्ता साहित्य का प्रमाण श्री गोपीनाथ जी और श्री पुरुषोत्तम जी के ग्रन्थों में भी मिलता है।[४] 'सम्प्रदाय प्रदीप' जिसकी रचना वि.सं. १६१० में हुई थी उसमें भी कुछ प्रसंगों का उल्लेख है। जिससे वार्ता साहित्य की प्राचीनता व प्रामाणिकता पर प्रकाश पड़ता है।[५] वार्ता सम्बन्धी अन्य प्रमाण 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' में मिलता है जो वि.सं. १७२९ में श्री हरिराय जी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट जी ने रचा है –'वल्लभ विट्ठल वार्ता प्रगट कीन नृप भान।'[६]

डॉ. जय किशन प्रसाद खण्डेल ने भी डॉ. टण्डन के मत की पुष्टि करते हुए कहा है कि ''वस्तुतः जब महाप्रभु ने मन में संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया तब श्री गोपीनाथ जी और श्री गुसांई जी दोनों बालक ही थे। इसलिए मार्ग की सब वार्ता महाप्रभु ने अपने अनन्य सेवक दामोदरदास हरसानी को समझाई ताकि वह वार्ता उनके पुत्रों को बड़े होने पर हरसानी जी से प्राप्त हो सके और आगे चलकर यही वार्ताएँ वार्ता साहित्य की जन्मदात्री सिद्ध हुई। इस रूप में महाप्रभु का महत्व अक्षुण्ण रहेगा और वे वार्ता साहित्य के विषय एवं रूप के उद्‌भावक माने जायेंगे।''[७]

## ३. पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य का हिन्दी साहित्य में स्थान –

हिन्दी साहित्य की गद्य परमम्परा में वार्ता साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वानों ने वार्ता साहित्य को प्रामाणिक न मानते हुए संदेह की दृष्टि से देखा है। साथ ही दूसरी ओर श्री द्वारिकादास परीख, श्री कण्ठमणि शास्त्री, श्री दीन दयालु गुप्त, श्री प्रभुदयाल मीतल कुछ ऐसे विद्वान है जिन्होंने वार्ता साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है और वे सब इसे प्रामाणिक मानते हैं। इस विषय में श्री प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि, इस साहित्य के यथासाध्य अवलोकन और मनन करने के उपरान्त मेरा निश्चित मत है कि–''यदि सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से इस साहित्य का अनुसंधान एवं अध्ययन किया जाय, तो इसमें से ऐसी अमूल्य सामग्री संकलित की जा सकती है, जो प्राचीन हिन्दी साहित्य के महत्व की वृद्धि कई गुना अधिक कर सकती है, साथ ही वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकती है।''[6]

इस प्रकार पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य के विद्वान श्री द्वारिका दास परीख ने '२५२ वैष्णवन की वार्ता' के विश्लेषणात्मक अध्ययन में अपने विचार कुछ इस प्रकार कहे हैं–''जिस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ की साम्प्रदायिक महत्ता है उसी प्रकार इसकी साहित्यिक महत्ता भी है। ब्रज भाषा हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम एवं सर्वोत्तम नंददास जी प्रभृति अनेक महाकवियों की जीवनियाँ एक मात्र इसी ग्रंथ से प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार उन कवियों के साहित्य का भी विशिष्ट परिचय इस वार्ता ग्रंथ से ही मिलता है। यही कारण है कि समस्त वार्ता साहित्य के प्रति शंका की दृष्टि से देखने वाले हिन्दी विद्वानों को भी इन ८४–२५२ वैष्णवन की वार्ता के ग्रंथों की शरण में आना ही पड़ता है। इन ग्रंथों के बिना सूरदास, नंददास प्रभृति महाकवियों का विस्तृत परिचय, उन बेचारों को नहीं मिल सकता है। इसी प्रकार ब्रज भाषा–हिन्दी के प्राचीनतम एवं परिष्कृत रूप का विस्तृत ज्ञान भी इन्ही वार्ता ग्रंथों से हिन्दी साहित्य को प्राप्त हो सकता है। इसलिए भी हिन्दी के वार्ता–विरोधी दल को हा–हा खा कर इन वार्ता ग्रंथों का आश्रय ढुंढ़ना पड़ता है। इस प्रकार

प्राचीन मध्यकालीन युग के ब्रज भाषा हिन्दी के महाकवियों एवं तत्कालीन भाषा विज्ञान के लिए हिन्दी साहित्य में ८४-२५२ वैष्णवन की वार्ताओं को अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि आज तक हिन्दी के किसी भी विद्वान प्राचीन मध्य युग के धार्मिक इतिहास व साहित्य के विषय में इन ग्रंथों को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं रख सका है और न रख सकता ही है। इस प्रकार इन वार्ता ग्रंथों की साहित्यिक महत्ता भी अप्रतिहत है। इसी प्रकार मध्यकालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक ज्ञान-प्राप्ति में भी ये ग्रंथ अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।''[९]

उपरोक्त विवेचन से वार्ताओं का साहित्यिक महत्व भी ज्ञात हो जाता है। अतः अति प्राचीन ब्रज भाषा गध के उत्कृष्ट नमूने के रूप में हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन वार्ताओं का स्थान अमर है। मिश्र बन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र तिवारी, डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रेम नारायण टण्डन तथा रामशंकर शुक्ल 'रसाल' सभी साहित्य इतिहासकारों ने अपने अपने इतिहासों में वार्ताओं का उल्लेख किया हैं और इसे उत्कृष्ट गद्य का नमूना बताया है।[१०]

## ४. वार्ता साहित्य की भाषा –

इन वार्ताओं में ब्रज भाषा के सम्पूर्ण रूप का दर्शन होता है। श्री द्वारिकादास परीख जी के शब्दों में तो 'वाताएँ ब्रज भाषा के मौलिक गद्य का स्वरूप प्रस्तुत करती हैं।' तथा 'ब्रज भाषा का सुव्यवस्थित और प्रौढ़ गद्यात्मक स्वरूप सर्वप्रथम इस वार्ता साहित्य में ही प्राप्त होता है।'[११]

श्री प्रभु दयाल मीत्तल का कथन है कि-'पुष्टि सम्प्रदाय का वार्ता साहित्य ब्रज भाषा साहित्य की अमूल्य निधि है। इससे ब्रज भाषा के आरम्भिक गद्य का स्वरूप ज्ञात होता है। इसके साथ ही इसमें १७ वीं एवं १८ वीं शतियों के उत्तरी भारत की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता

है। इस प्रकार वार्ताओं का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व स्वयं सिद्ध है।'[१२] शायद इसी कारण पुष्टि मार्गीय वैष्णव कहते हैं कि हमारे ब्रज बानी ही वेद हैं। पुष्टि मार्ग में ब्रज भाषा को 'पुरुषोत्तम भाषा' का सम्मान प्राप्त है।

## ५. पुष्टिमार्ग में वार्ता का महत्व –

पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य सार्वजनिक रूप से कथा कहने के अतिरिक्त अपने अंतरंग सेवकों के साथ एकान्त गोष्ठी भी किया करते थे। उस समय वे महत्वपूर्ण वार्ताएँ करते थे। उदाहरण के लिए वल्लभाचार्य जी दामोदर दास हरसानी से, विट्ठलनाथ जी चाचा हरिवंश आदि से, गोकुलनाथ जी कल्याण भट्ट आदि से और हरिरांय जी हरजीवनदास प्रभृति से इस प्रकार की एकान्त गोष्ठियाँ किया करते थे। उन एकान्त गोष्ठियों में जो वार्ताएँ होती थीं उनका महत्व सुबोधिनी आदि की कथा से भी अधिक समझा जाता था और उनके सुनने का सौभाग्य कतिपय अन्तरंग व्यक्तियों को ही प्राप्त होता था। निम्न लिखित उदाहरण से इन वार्ताओं का महत्व ज्ञात हो सकेगा–

''सो एक दिन श्री गोकुलनाथ जी चौरासी वैष्णवन की वार्ता करत कल्याण भट्ट आदि वैष्णवन के संग रसमगन होइ गये, सो श्री सुबोधिनी जी की कथा कहन की सुधि नांहि, सो अर्ध रात्रि होई गई। तब एक वैष्णव ने श्री गोकुलनाथ जी सों विनती करी, जो महाराजाधिराज ! आज कथा कब कहोगे ? अर्धरात्रि गई। तब श्री मुख से श्री गोकुलनाथ जी ने कही जो आज कथा फल कहत हैं। वैष्णवन की वार्ता में सगरो फल जानियो। वैष्णव उपरान्त और कछु पदारथ नाही हैं।''[१३]

विद्वानों के मतानुसार जब ये गुप्त वार्ताएँ भी लिपि–प्रतिलिपि के क्रम से प्रकट हो गयी तब गोकुलनाथ जी के आदेशानुसार हरिराय जी ने उनके संकलन, सम्पादन और लेखन की व्यवस्था की। तथा अपने अनुभव से जो अन्य सूचनाएँ एकत्रित की थी उनका भी इन वार्ताओं में उन्होने समावेश कर दिया था। इसके अतिरिक्त हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी के कथनों की पूर्ति और उनके गूढ भावों

के स्पष्टीकरण के लिए अपनी ओर से 'भाव' नामक टिप्पणियाँ भी जोड़ दी थी। इस प्रकार वार्ताओं का बृहद् संस्करण प्रस्तुत हुआ जो 'लीला भावना वाली' अथवा हरिराय जी कृत 'भाव प्रकाश' सहित वार्ताओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।[१४]

कोकिला अ़म्बाप्रसाद शुक्ल ने अपने शोध कार्य में यथेष्ट उदाहरणों द्वारा इस बात की पुष्टि की है कि वार्ता का प्रारम्भ एवं प्रचार श्री महाप्रभु जी के समय में हुआ और उसका सम्प्रदाय में सम्पूर्ण प्रचार श्री विट्ठलनाथ जी के समय में हुआ। श्री गोकुलनाथ जी ने इसको लिपिबद्ध किया तथा श्री हरिराय जी ने इस पर भाव प्रकाश का निर्माण किया तथा इसका प्रचार–प्रसार समस्त वैष्णव सेवक समाज में किया।

'पुष्टि प्रवाह मर्यादा' ग्रन्थ के आधार पर पुष्टि सृष्टि को वार्ता में भगवान के श्री अंग से उत्पन्न माना गया है।[१५] इस वार्ता साहित्य से हमें पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

## ६. पुष्टिमार्गीय वार्ता के प्रकार –

वार्ताएँ तीन प्रकार की प्राप्त होती हैं – प्रसंगात्मक, संख्यात्मक और भावनात्मक। डॉ. जयकिशन प्रसाद ने लिखा है कि –''वाताएँ प्रसंगात्मक रूप में तो महाप्रभु द्वारा मौखिक रूप में प्रचलित हुई किन्तु इनको संख्यात्मक एवं रचनात्मक रूप श्री गोकुलनाथ जी ने और भावनात्मक रूप श्री हरिराय जी ने दिया। इस प्रकार वार्ताएँ प्रसंगात्मक, संख्यात्मक तथा भावनात्मक तीन रूपों में मिलती हैं।''[१६]

## ७. वार्ता साहित्य का वगीकरण –

इन वार्ताओं को हम मुख्यतः चार दृष्टियों से देख सकते हैं–साम्प्रदायिक व धार्मिक दृष्टि से, ऐतिहासिक दृष्टि से, साहित्यिक दृष्टि से और सामाजिक दृष्टि से।

### १. साम्प्रदायिक व धार्मिक दृष्टि

इन वार्ताओं में पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की भक्ति भावना, भगवद् राह तथा जीवन में पुष्टि सिद्धान्तों के आचरण की शुद्धता को देखा जा सकता है। इन वार्ता से पुष्टिमार्गीय निधियों के स्वरूपों के प्राकट्य की कथा, सेवा के प्रकार, गुरु का महत्व इत्यादि पुष्टि सम्प्रदाय के सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। लोकभाषा अर्थात् ब्रज भाषा में लिखी होने के कारण ये वार्ताएँ शीघ्रता से जन साधारण के मानस को छु जाती हैं। अपने प्रभु को सर्वस्व समर्पित करने की भावना इन वार्ताओं में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। डॉ. सत्याकुमारी शर्मा ने कहा है कि – ''यदि यह कहा जाय कि पुष्टिमार्ग के दार्शनिक एवं साम्प्रदायिक भक्ति सिद्धान्तों का पोषण करने के लिये ही इनका प्रणयन, संरक्षण एवं प्रसार किया गया है तो यह कोई अत्युक्ति न होगी।''[१७] वार्ता के प्रत्येक प्रसंग में हमें पुष्टिमार्गीय अनुग्रह की भावना का दर्शन होता है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री का कथन है – 'कभी–कभी आधुनिक विचारक इस बात पर बहुत क्षोभ क्षेम करते हैं कि इनमें मिथ्या का सहारा लेकर आचार्यों की प्रभुता बतलाई हैं। मिथ्या का सहारा यों कि वार्ताओं में जगह–जगह भगवान को भक्तों से, आचार्यों से बोलते, उनके साथ उठते–बैठते और खाते–पीते बतलाया गया है। यह बात तार्किक मन को नहीं जँचती किन्तु इसका साम्प्रदायिक महत्व इसलिए है कि इस सम्प्रदाय में प्रभु के साथ इसी प्रकार की साहचर्य भावना और तादात्मय की अनुभूति प्रमुख है।'[१८]

'वार्ता ही भक्ति का फल है'–इस बात की और सभी आचार्य एवं संत संकेत करते हैं। इसीलिए पुष्टिमार्ग में वार्ता साहित्य का महत्व धार्मिक भाव से अधिक रहा है। तात्पर्य यह कि वार्ता साहित्य धार्मिक ग्रन्थ है।[१९] प्रत्येक वार्ता के मूल में धार्मिक भावना निहित रहती है। डॉ. जय किशन प्रसाद ने भी इसी तथ्य का निरूपण इस प्रकार किया है–'वार्ता साहित्य में जो धार्मिक प्रवृत्ति कार्य कर रही है वह है दैवी जीव को उनके मूल स्वरूप का ज्ञान कराते हुए उनको वृद्धवस्था से मुक्त कराने की भावना। दैवी जीवों का उद्धार ही वार्ता की मुख्य प्रवृत्ति है और यह मूलतः धार्मिक हैं।'[२०] डॉ. सत्या कुमारी शर्मा का कथन है–'इन

सभी वार्ता ग्रन्थों के प्रणयन के पीछे एक सुदृढ धार्मिक प्रेरणा ही विद्यामान है, इसी कारण ये सभी वार्ताएँ एवं वार्ता प्रसंग अथ से इति तक धार्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या को ही अपना प्रथम व अन्तिम लक्ष्य बनाए हुए हैं। विभिन्न भक्त चरित्रों का प्रमाण देते हुए इनमें किन्हीं ऐसे ही सिद्धान्तों, आचरणों एवं विचारों की मान्यता प्रदान की गई है, जो इनके प्रतिपादक धर्म के अनुरूप हो।'[२१]

अन्तः यह कहा जा सकता है कि वार्ता साहित्य का आरम्भ तो साम्प्रदायिक दृष्टि से हुआ है पर इसके निर्माण के पीछे धार्मिक भावना भी निहित रही है।

## २. ऐतिहासिक दृष्टि

इन पुस्तकों में दी हुई वार्ताओं में उस समय की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति पर भी बड़ा महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है इसलिए इनका ऐतिहासिक महत्व भी कुछ कम नहीं है।[२२] देवर्षि कलानाथ शास्त्री का कथन है कि–'शोधकर्ताओं ने इन वार्ताओं में निहित ऐतिहासिक तथ्यों को छानबीन कर स्पष्ट कर दिया है कि इनमें वर्णित अनेक घटनाएँ सत्य है और ऐतिहासिक महत्व की है। विशेष कर तत्कालीन सेवकों और विद्वानों के सन्दर्भों से उनके समय निर्धारण में और उनके कृतित्व के बारे में कई ऐतिहासिक तथ्य पुष्ट हो सकते हैं यह महत्व भी इन वार्ताओं का माना गया है। उदहरणार्थ २५२ वैष्णवों की वार्ता में कृष्ण दास, कुम्भन दास, गोविन्द दास आदि अष्टछाप के कवियों, तानसेन, बीरबल, रानी दुर्गावती, टोडरमल आदि व्यक्तियों के संदर्भ मिलते हैं जो इतिहास पुष्ट हैं। जोधपुर के राठौर राजा कल्याणसिंह के पुत्र पृथ्वीराज जी पीथल के नाम से राजस्थान के डिंगल कवि के रूप में विख्यात है और जिनका 'बेलि कृष्ण रुक्मणि री' राजस्थानी साहित्य में प्रसिद्ध है, इस वार्ता में वर्णित है। पीथल का कृष्ण भक्त होने के कारण गुसाँई जी से सम्पर्क होना स्वाभाविक था । वार्ताओं में भावात्मक एवं अलौकिक अतिशयोक्तियाँ तथा ऐतिहासिक तथ्यों का नीरक्षीर विवेक

करने के लिए शोधकों को परिश्रम अवश्य करना पड़ता है किन्तु इनसे उस समय के सांस्कृतिक इतिहास के अनेक बहुमूल्य तथ्य निकल सकते हैं।'[२३]

### ३. साहित्यिक दृष्टि

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में वार्ता साहित्य को अभूतपूर्व स्थान प्राप्त है। इन वार्ताओं में अनेक कवियों एवं लेखकों के जीवन वृत देखने को मिलते हैं। वार्ता साहित्य में हमें हिन्दी साहित्य के अनेक मूधन्य कवियों के अज्ञात जीवन इतिहास का भी पता चलता है। साथ ही ब्रज भाषा का उत्कृष्ट साहित्य भी हमें इन्हीं वार्ताओं से प्राप्त होता है। अन्तः इन वार्ताओं का विस्तृत साहित्यिक महत्व व वर्णन पिछले पृष्ठों में वर्णित कर चुकी हूँ।

### ४. सामाजिक दृष्टि

इन वार्ताओं में मानव जीवन की तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति व लोक जीवन का दर्शन होता है, जिस कारण इन वार्ताओं का सामाजिक महत्व बढ़ जाता हैं। पुष्टिमार्ग में सभी वर्णों हरिजन, हिन्दू–मुस्लिम, स्त्री–पुरुष सभी को समान अधिकार प्राप्त है। वल्लभाचार्य जी की इस सामाजिक एकता ने तत्कालीन समाज को फिर से संगठित करने का महत्वपूर्ण कार्य अपने भक्ति सम्प्रदाय के द्वारा किया था जिसका वर्णन हमें इन वार्ताओं से प्राप्त होता है। पुष्टि सम्प्रदाय में उन समस्त प्राणियों का स्वागत होता है जो अपना सब कुछ प्रभु के चरणों में समर्पित कर सकता है। इसके अनेक उदाहरण हमें इन वार्ता साहित्य से प्राप्त होते हैं। इसीलिए लगभग सभी पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के घरों में हमें वार्ता साहित्य प्राप्त होता है तथा उन वार्ताओं का पठन–पाठन भी किया जाता है।

## ८. मुख्य वार्ता ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय ::

### १. ८४ वैष्णवन की वार्ता –

इस वार्ता ग्रन्थ में महाप्रभु वल्लभाचार्य के उन शिष्य व भक्तों के चरित्र हैं जिनकी भक्ति अपने आप में एक आदर्श है। इस ग्रन्थ के अन्त में अष्टछाप के चार

कवि सूरदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, कुष्णदास की वार्तायें हैं। जो हिन्दी साहित्य के अमर कवि माने जाते हैं।

२. २५२ वैष्णवन की वार्ता –

इस वार्ता ग्रन्थ में गुसाँई विट्ठलनाथ जी के उन सेवक भक्तों के चरित्र हैं जिन्होने अपने पंद साहित्य से न केवल पुष्टिमार्ग के साहित्य को अपितु हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध किया है – नंददास, छीत स्वामी, चतुर्भुज दास, गोविन्द स्वामी इत्यादि।

३. निज वार्ता, घरु वार्ता और बैठक चरित्र –

इन तीनों वार्ताओं में महाप्रभु वल्लभाचार्य के तथा उनके पुत्र गुसाँई विट्ठलनाथ जी के विशेष चरित्र प्रसंग दिए गए हैं। इन चरित्र प्रसंगों द्वारा पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के इतिहास के साथ–साथ हिन्दी के मध्यकालीन धार्मिक इतिहास पर भी व्यापक प्रकाश पड़ता हैं।

४. श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्राकट्य वार्ता –

इस वार्ता ग्रन्थ में महाप्रभु वल्लभाचार्य के जीवन का क्रम बद्ध वर्णन प्राप्त होता है।

५. भाव सिन्धु की वार्ता –

इस वार्ता ग्रन्थ में ८४ और २५२ वैष्णवन में से कई ऐसे वैष्णवों के चरित्र प्रसंग दिए गए हैं जो साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के भावों का उद्‌बोधन करते हैं जिससे सामान्य जन पुष्टिमार्ग को समझ सके।

६. श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता –

इस वार्ता ग्रन्थ में श्री नाथ जी के प्राकट्य से लेकर उनके मेवाड़ पधारने तक का वर्णन अंकित है, जो वि.सं. १७२८ तक का ऐतिहासिक ढंग से किया हुआ वर्णन है जिससे तत्कालीन समय के इतिहास का पता चलता है तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का अनुमोदन भी हो जाता है।

७. अष्टसखान की वार्ता –

इस वार्ता ग्रन्थ में ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ता में रहे अष्टछाप के जीवन चरित्र को एकत्रित कर प्रस्तुत किया गया है।

इन वार्ताओं में सेवकों का जीवन ही नहीं अपितु उनकी भक्ति का ऐसा अविरल स्त्रोत है जिसमें डूब कर हर वैष्णव अपने को कृपार्थ मानता है। पुष्टि सम्प्रदाय की इन वार्ताओं में कोमलतम रसमयी भावनाओं का ऐसा समन्वय है जिससे मनुष्य संसार में रह कर ही इस संसार चक्र को पार कर जाता है। इन वार्ताओं में जीवनं की सच्चाई, आध्यात्मिक दर्शन, भगवद् राह पर अधिक जोर दिया गया है। ये वार्ताएँ अपने यथार्थ रूप में अधुनिक हिन्दी कहानी का आदि रूप कही जा सकती हैं।

## २. भावना साहित्य ::

पुष्टिमार्ग भावना प्रधान मार्ग है। अपने आराध्य के प्रति सच्ची भावना से सर्व समर्पण ही पुष्टिमार्ग का विधान है। पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के रहस्यों के उद्घाटन के लिए गोस्वामी हरिराय जी ने भाव–भावना का सृजन वैष्णवों के लिए किंया। हरिराय जी ने ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ता पर तीन जन्म की भावना लिख कर इस भाव–भावना वाले साहित्य का आरम्भ किया। इन वार्ताओं के मूल में तद् व्यक्तियों के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली तीन जन्म की कथाएँ दी गई हैं– शरण में आने से पहले का एक जन्म (आधि भौतिक जन्म), शरण में आने के बाद का दूसरा जन्म (आध्यात्मिक जन्म), तथा तीसरा जन्म जो मूल भूत आत्मा रूप है (आधि दैविक जन्म)।

गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रज भाषा में सेवाक्रम एवं उत्सव भावना, निकुंज रहस्य भावना, श्री जी की स्वरूप भावना, सात स्वरूप की भावना आदि कई भाव–भावना वाले ग्रन्थों की रचना की।

इस प्रकार के भाव-भावना वाले साहित्य द्वारा पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने पुष्टि सिद्धान्त की सरल व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

## ३. वचनामृत साहित्य ::

पुष्टिमार्ग के आचार्यों द्वारा अपने भक्तों के साथ की गई चर्चा, सत्संग, उपदेश आदि को 'आचार्य के वचनामृत' कहा जाता है। वार्ता साहित्य के मूल में वल्लभाचार्य और गुसाँई विट्ठलनाथ जी के वचनामृत की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

पुष्टिमार्ग में मुख्यत महाप्रभु वल्लभाचार्य, गुसाँई विट्ठलनाथ जी, गोस्वामी गोकुलनाथ जी, गोस्वामी हरिराय जी, श्री वल्लभ (काका), गिरधरलाल जी, गोवर्धनलाल जी आदि के वचनामृत प्रसिद्ध हैं। जो ब्रज भाषा, व गुजराती भाषा में प्राप्त होते हैं। इन वचनामृतों में वैष्णवों की महत्ता का दिग्दर्शन भी भली भांति हो जाता है।

## ४. अन्य गद्य साहित्य ::

इसके अलावा पुष्टिमार्ग के कई ग्रन्थों पर कई पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने अपनी टीकाएँ लिखी हैं।[२४]

महाप्रभु वल्लभाचार्य, गुसाँई विट्ठलनाथ जी, गोस्वामी गोकुलनाथ जी, गोस्वामी हरिराय जी आदि आचार्यो के बैठक चरित्र भी उपलब्ध हैं। जो कुल १४१ विभिन्न पुष्टिमार्गीय आचार्यों के बैठक चरित्र हैं।

गुसाँई विट्ठलनाथ जी के संस्कृत एवं ब्रज भाषा में कुछ पत्र साहित्य है। तथा गोस्वामी हरिराय जी द्वारा अपने अनुज (योगी गोपेश्वर) को लिखित शिक्षा पत्र साहित्य भी पुष्टिमार्ग में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

इनके अलावा कई महत्वपूर्ण यात्रा विवरण भी पुष्टिमार्ग में प्राप्त होते हैं जैसे 'श्री वल्लभ दिग्विजय' संस्कृत भाषा में यात्रा विवरण प्रस्तुत करता है। बैठक चरित्रों में भी पुष्टिमार्गीय आचार्यों के यात्रा विवरण सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

'श्री नाथ जी की नाथद्वारा यात्रा' आदि कई छोटे–छोटे यात्रा विवरण पुष्टिमार्ग में उपलब्ध हैं।

## ५. नई खोज से प्राप्त पुष्टिमार्गीय ब्रज भाषा के गद्य ग्रन्थ की सूची :: [२५]

१. महाप्रभु वल्लभाचार्य कृत – चौरासी अपराध

२. गोपीनाथ जी कृत–स्फुट वार्ता

३. गुसाँई विठ्ठलनाथ जी कृत–कोसी (ब्रज) की वार्ता तथा सफुट वार्ताएँ।

४. गोस्वामी गोकुलनाथ जी कृत–८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्ताएँ. श्री गुसाँई जी और दामोदर दास को संवाद, स्फुट वचनामृत, श्रीवर वाक्यांमृत, रस रत्न कोष, बनयात्रा, खट्रितु की वार्ता, भावना वचनामृत, उत्सव भावना, नित्य सेवा प्रकार, श्री जी के स्वरुप की भावना, श्री वल्लभाचार्य जी की ८४ बैठकन के चरित्र, श्री गुसाँई जी की २८ बैठकन के चरित्र, श्री गिरिधर जी की बैठकन के चरित्र, रहस्य भावना, घरु वार्ता, चरण चिन्ह की भावना, भाव सिंघु की वार्ता।

५. गोस्वामी हरिराय जी कृत–द्वादश निकुंज की भावना, चौसठ अपराध वर्णन, निज वार्ता, सात स्वरूपन की वार्ता, श्री महाप्रभु और भी गुसाँई जी के स्वरूप का विचार, महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की प्रागट्य वार्ता, ८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता पर 'भावना' (टीका), महाप्रभु की प्रागट्य वार्ता पर भावना, निज वार्ता तथा घरु वार्ता की भावनाएँ, चरण चिन्ह की भावना (द्वितीय), सात स्वरूपन की भावना (द्वितीय); बसंत होरी, छप्पन भोग, छाक, बीडी–सेवा–नित्य लीला–उत्सव–बनयात्रा–श्री नाथ द्वारा; नवग्रह; सात बालकन के स्वरूप की भावना, श्री नाथ जी के चरण चिन्ह वर्णन, भावना त्रय (मूल लीला), समर्पण गधार्थ, रास प्रसंग, श्री गोकुलनाथ जी की बैठकन के चरित्र, ८४ भाषा शिक्षा के पत्र, जय प्रकार, ग्रंथात्मक भगवत्सवरूप–निरूपण, दास मर्म, मार्ग स्वरूप सिद्धान्त, पुष्टि पृढाव, श्री

स्वामिनी जी के चरण चिन्हों की भावना, द्विदलात्मक स्वरूप विचार, समर्पण गधार्थ (द्वितीय) और स्फुट वचनामृत।

इनके अलावा भी कई पुष्टिमार्गीय आचार्यों का गद्य साहित्य उपलब्ध है।

## २. पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य :-

**१. पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य ::** यह तो सर्व विदित है कि पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य अष्टछाप काव्य के रूप में हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें अष्टछाप के कवियों ने श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है जो वात्सल्य, साख्य, दास्य, माधुर्य भावों की उत्कृष्ट रस धारा के रूप में आज भी प्रवाहित हो रहा हैं। अष्टछाप के अलावा बयालीस गोस्वामी आचार्यों का पद्य साहित्य प्राप्त होता है। साथ ही आठ गोस्वामी महिलाओं का नामाल्लेख भी मिलता है। अष्टछाप के अलावा अन्य **१०६** कवियों की काव्य कृतियों का वर्णन द्वारकादास परीख के शोघ कार्य से प्राप्त होता हैं। इनके सांथ आधुनिक काल में भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र का पुष्टिमार्गीय साहित्य के सृजन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

२. **पुष्टिमार्गीय मुख्य भक्त कवियों की तालिका ::** द्वारकादास परीख के शोध से प्राप्त ब्रज भाषा के पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों की ग्रन्थ तालिका –[२६]

१. **अष्टछाप कवियों के नाम –**

सूर दास, परमानन्द दास, कुम्भन दास, कृष्ण दास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुज दास, नन्द दास।

२. **गोस्वामी आचार्य गण –**

महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोपीनाथ जी, गुसाँई विट्ठलनाथ जी, गोकुलनाथ जी, रघुनाथ जी, घनश्याम जी, कल्याणराय जी, हरिराय जी, वल्लभ जी काका, वल्लभ जी (यदुनाथ जी के पुत्र), वल्लभ जी (चन्द्रमाजी के घर के), गिरिधर जी (तृतीय गृह के), ब्रजभूषण (दो–तृतीय गृह के), ब्रजराय जी (सूरत), द्वारकेश जी

(पंचम गृह के), गोपीकालंकार जी (मट्ट जी महाराज), द्वारकेश जी (गन्नू जी), गिरिधरलाल जी (तृतीय गृह के) भक्त छाप, गोपेश्वर जी (हरिराय जी के भाई– द्वितीय गृह के ), ब्रजाभरण जी, रमणलाल जी (मथुरा), बालकृष्ण लाल जी (तृतीय गृह), पुरुषोत्तम जी (ख्यालवाले), पुरुषोत्तम जी (तृतीय गृह), विट्ठलनाथ जी (तृतीय गृह), ब्रजपति जी (जोधपुर), ब्रजाधीश जी (जोधपुर), गोपाल लाल जी (कांकरौली), लल्लू जी (तृतीय गृह–सूरत से), गोपन गोविन्द जी, गोविन्दराय जी (तिलकायत), गोवर्द्धन लाल जी (वेरावल), कल्याणराय जी (मथुरा), गिरिधर जी (काशी), लाल गिरिधारी (नाथद्वारा), कन्हैया लाल जी (गोकुल), जीवन जी महाराज जी (बम्बई), गोकुलाधीश जी (बम्बई), मुकुन्दराय जी, गोवर्द्धनेश (नाथद्वारा)।

**३. गोस्वामी स्त्री वर्ग –**

सुन्दरवंता बहूजी, चंद्रावली बहूजी, जसोदा बेटी जी, कृष्णावती जी, चन्द्र बेटी जी, भामिनी बहूजी, कमलप्रिया बहूजी, शोभा माजी

अन्य १०६ कवि गण भी हैं।

मैंने पुष्टिमार्गीय साहित्य के अन्तर्गत संक्षिप्त में पुष्टिमार्ग के गद्य व पद्य साहित्य को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

******

## :: संदर्भ सूची ::


१. वार्ता साहित्य के सन्दर्भ में पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास–
(शोघ प्रबन्ध) ७९, लेखिका : कोकिलाबेन अम्बाप्रसाद शुक्ल

२, ३, श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश –(II)
(पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य और उसका महत्व – १३७)
लेखक : डॉ. कृष्णवल्लभ शर्मा

४, ५, ६, वार्ता साहित्य के सन्दर्भ में पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास – ४१ (शोघ प्रबन्ध)
लेखिका : कोकिलाबेन अम्बाप्रसाद शुक्ल

७. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (II)
(पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य और उसका महत्व–१३७)

लेखक : डॉ. कृष्णवल्लभ शर्मा

८. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ
(वल्लभ सम्प्रदाय के ब्रज भाषा साहित्य की खोज – ३६१)
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

९. २५२ वैष्णवन की वार्ता– (भाग–३) (विश्लेषणात्मक अध्ययन–२) ले. द्वारकादास परीख

१०. गोस्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ
(वार्ता साहित्य और २५२ वैष्णव की वार्ता – २९३) लेखक : देवर्षि कलानाथ शास्त्री

११. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धांत और संदेश –(II)
(पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य और उसका महत्व–१८०)
लेखक : डॉ. कृष्णवल्लभ शर्मा

१२. अष्टछाप परिचय – ७४
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

१३. पुष्टि पाथेय (वार्ता साहित्य की भावभूमि – १७३)
लेखक : डॉ. हरिहरनाथ टण्डन

१४. अष्टछाप परिचय – ८७, ८८
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

१५. वार्ता साहित्य के सन्दर्भ में पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास (शोध प्रबन्ध) – (भूमिका–५)
लेखिका – कोकिलाबेन अम्बाप्रसाद शुक्ल

१६. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश– (II)
(पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य और उसका महत्व–१३८)
लेखक : डॉ. कृष्णवल्लभ शर्मा

१७. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश– (II)
(पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य और उसका महत्व–१३९)
लेखक : डॉ. कृष्णवल्लभ शर्मा

१८. गोस्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ
(वार्ता साहित्य और २५२ वैष्णवन की वार्ता – २९२)
लेखक : देवर्षि कलानाथ शास्त्री

१९. वार्ता साहित्य के सन्दर्भ मे पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास – (शोध प्रबन्ध) – (भूमिका–४)
लेखिका : कोकिलाबेन अम्बाप्रसाद शुक्ल

२०, २१, श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (II)
(पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य और उसका महत्व– १३९)
लेखक : डॉ. कृष्णवल्लभ शर्मा

२२. अष्टछाप परिचय

लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२३. गोस्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ
(वार्ता साहित्य और २५२ वैष्णवन की वार्ता – २९२)
लेखक : देवर्षि कलानाथ शास्त्री

२४. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ,
(ब्रज भाषा का गध साहित्य– ४७९)
लेखक : श्री शीवनाथ

२५. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ,
(ब्रज भाषा का गध साहित्य– ४८९) लेखक : श्री शीवनाथ

२६. पुष्टि पाथेय, (ब्रज भाषा के पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों की ग्रंथ तालिका–१३७)
लेखक : द्वारकादास परीख

******

Chap-5

**पंचम अध्याय :**

# पुष्टिमार्ग के प्रमुख रचनाकारों का परिचयात्मक विवरण

## १. पुष्टिमार्ग के गोस्वामी आचार्य वर्ग :-

### १. वल्लभाचार्य ::

पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य का विवरण प्रथम अध्याय के अन्त में दिया जा चुका है।

### २. गोपीनाथ जी ::

गोपीनाथ जी वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र थे इनका जन्म संवत १५६८ में अश्विन कृष्ण द्वादशी को अड़ेल में हुआ था। गोपीनाथ जी की शिक्षा – दीक्षा पिता वल्लभाचार्य की देख–रेख में सम्पन्न हुई थी अतः पिता का इनके जीवन पर विशेष प्रभाव था। गोपीनाथ जी उच्चकोटि के विद्वान और तेजस्वी आचार्य थे। वल्लभाचार्य के गोलकवास के पश्चात् गोपीनाथ जी पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य हुए।

गोपीनाथ जी प्रतिदिन श्रीमद् भागवत का पाठ करने के उपरान्त ही प्रसाद ग्रहण करते थे। यह देख महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत में से भगवान् के एक हजार नाम एकत्र कर 'श्री पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम स्त्रोत्रम्' की रचना की तथा गोपीनाथ जी से कहा कि नित्य इसका पाठ करें, जिससे श्रीमद् भागवत के सम्पूर्ण पाठ का फल प्राप्त होगा।

गोपीनाथ जी भी पिता के समान सम्प्रदाय के प्रचार–प्रसार हेतु यात्राएँ किया करते थे। इनके यात्रा का मुख्य क्षेत्र गुजरात प्रान्त था। अपनी यात्राओं में जो भी धन व भेंट प्राप्त होती थी उसे गोपीनाथ जी श्री नाथ जी को समर्पित कर देते थे।

गोपीनाथ जी का केवल एक ही ग्रन्थ प्राप्त है – साधन दीपिका।

गोपीनाथ जी के एक पुत्र पुरुषोत्तम जी तथा दो कन्याएँ सत्यभामा जी और लक्ष्मी जी थी।

गोपीनाथ जी का गोलोकवास संवत १५९९ में जगन्नाथ पुरी में हुआ था।

## ३. गुसाँई विट्ठलनाथ जी ::

विट्ठलनाथ जी वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र हैं। विट्ठलनाथ जी का जन्म संवत् १५७२ की पोष कृष्ण नौ, शुक्रवार को चरणाट नामक स्थान में हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा काशी में सम्पन्न हुई थी। कुशाग्र बुद्धि के धनी विट्ठलनाथ जी ने अल्पआयु में ही वेद, वेदान्त, दर्शनशास्त्र, उपनिषद, पुराण–साहित्य एवं विविध कलाओं का अध्ययन किया था। विट्ठलनाथ जी ने दो विवाह किए थे। जिनसे सात पुत्र और चार पुत्रियाँ थी पहली पत्नी का नाम रुकमणी था – गिरिधर जी, गोविन्दराम जी, बालकृष्ण जी, गोकुलनाथ जी, रघुनाथ जी, यदुनाथ जी, शोभा जी, कमला जी, देवकी जी और यमुना जी। दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती था इनसे एक पुत्र घनश्याम जी थे।

अग्रज गोपीनाथ जी एवम् तद्पुत्र पुरुषोत्तम जी की मृत्यु के पश्चात् विट्ठलनाथ जी पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य के पद पर आसिन हुए। विट्ठलनाथ जी ने भी पिता की भाँति देश की यात्रा की। इन यात्राओं से जो द्रव्य प्राप्त होता था उसे श्री नाथ जी की सेवा में लगाया जाता था। वल्लभाचार्य ने श्री नाथ की सेवा का कार्य बंगाली ब्राह्मणों को सौंपा था किन्तु कालान्तर में विट्ठलनाथ जी ने श्री नाथ जी की सेवा का कार्य साँचौरा ब्राह्मणों को सौंपा, जो आज भी यथावत् है। विट्ठलनाथ जी ने छः बार गुजरात की यात्रा की, ब्रज मंडल की यात्रा की, जगन्नाथ पुरी की यात्रा की। इन सभी यात्राओं में विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया तथा अनेक लोगों को अपना शिष्यत्व प्रदान कर कृतार्थ किया।

जगन्नाथ पुरी की यात्रा के दौरान हो रहे रथोत्सव को देख कर यह परम्परा विट्ठलनाथ जी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय में भी प्रारम्भ की, जो आज यथावत् रूप से मनाई जाती हैं।

पुष्टिमार्गीय साहित्य से ज्ञान होता है कि तत्कालीन शासन वर्ग पर विट्ठलनाथ जी का अपूर्व प्रभाव था। सम्राट अकबर विट्ठलनाथ जी के प्रकाण्ड पांडित्य व अनुपम व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित थे।[१] अकबारी दरबार के कई महानुभाव आपके सेवक बन गए थे–राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, राजा बीरबल, संगीतकार तानसेन। सम्राट अकबर ने विट्ठलनाथ जी को कई राजकीय सम्मान व सुविधाएँ दी थी। इनमें ब्रज के आस–पास की भूमि भेंट स्वरूप दी गई थी। जिस पर विट्ठलनाथ जी ने वर्तमान गोकुल गाँव बसाया था। सम्राट अकबर तथा कई उच्च राजकीय अधिकारीयों द्वारा पटे–परबाने और फरमान जारी किए गए थे जिनका विवरण हमें कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी द्वारा प्रकशित पुस्तक में मिलता है।[२]

वल्लभाचार्य जी की भाँति विट्ठलनाथ जी की भी बैठकें हैं जो 'गुसाँई जी की बैठक' के नाम से पुष्टि सम्प्रदाय में जानी जाती है। इन बैठकों की संख्या २८ है।

विट्ठलनाथ जी के कई शिष्य सेवक थे जिनमें सभी–जाति और वर्ण के व्यक्ति थे। इन शिष्यों में मुख्य २५२ शिष्य सेवक थे जिनका विवरण दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में मिलता है।

वल्लभाचार्य द्वारा शुरू की गई ब्रज परिक्रमा को विट्ठलनाथ जी ने भी यथावत् रखा है। विट्ठलनाथ जी ने गोकुल से मथुरा विश्राम घाट पर आकर, महाप्रभु वल्लभाचार्य की बैठकों में भोग लगा कर ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा का नियम लेकर सन् १५४४ की भाद्र पद शुक्ल द्वादशी को ब्रज यात्रा प्रारम्भ की थी जो आज भी निरबाध रूप से चल रही है। आज देश–विदेश से लाखों हिन्दू लोग सीधे ब्रज पहुँच कर, ब्रज यात्रा और गिरिराज जी की परिक्रमा करते हैं तथा यमुना नदी में स्नान कर अपने को धन्य मानते हैं।

विट्ठलनाथ जी ने संगीत का भी भगवत् सेवा में विनियोग किया है। विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता से आगे बढ़कर श्री नाथ की सेवा विस्तार के अनुसार, ऋतु-उत्सवों के अनुरूप अलग-अलग राग-रागिनियों में बद्ध गायन करने का विधान किया है जिसे पुष्टि सम्प्रदाय में 'कीर्तन' के नाम से जाना जाता है। इस हेतु विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की जिनमें चार कवि अपने पिता के तथा चार कवि अपने समय के लिए थे-कुम्भनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंद दास, गोविंददास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंनदास। ये आठों महानुभाव श्रेष्ठ कवि, गायक एवम् संगीतज्ञ थे। इन आठों भक्तों के द्वारा किए गए भगवद् लीला गान से ब्रज भाषा की उन्नति की तथा हिन्दी साहित्य को अनुपम भेंट दी। साथ अन्य साम्प्रदायिक शिष्य-सेवकों की रचनाओं का भी अपना विशिष्ट स्थान हैं।[३,४]

विट्ठलनाथ जी अत्यन्त विद्वान आचार्य थे अपने पिता की भाँति आपने भी कई ग्रन्थों की रचना की। जिनमें कुछ पिता के अपूर्ण ग्रन्थ पूर्ण किए, कुछ टीकाएँ लिखी और कुछ स्वतंन्त्र ग्रन्थ रचे। विट्ठलनाथ जी ने संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों भाषाओं में ग्रन्थ रचना की है। विद्वानों के मतानुसार विट्ठलनाथ जी रचित लगभग ५० ग्रंथ हैं। जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं।[५]

अणुभाष्य के अन्तिम डेढ़ अध्याय, सुबोधिनी की पूर्ति और टिप्पाणी, विद्वन्मंड़न, शृंगार रस मण्डन, निबन्ध प्रकाश टीका, भक्ति हंस, भक्ति हेतु, भक्ति निर्णय, विज्ञाप्ति, षोडश ग्रन्थ पर टीका, निर्णय ग्रन्थ, स्फुट स्त्रोतादि ग्रन्थ और टीकाएँ आदि।

अपने अंतिम समय में विट्ठलनाथजी ने अपनी समस्त चल-अचल सम्पति व श्री नाथ जी के सभी सेव्य स्वरूप अपने सात पुत्रों में बाँट दिए थे। इन सातों पुत्रों की पृथक परम्परा आज भी पुष्टि सम्प्रदाय में विद्यामान है जिसे 'सप्त गृह' के नाम से जाना जाता है। अधिकतर विद्वानों ने विट्ठलनाथ जी का तिरोधान संवत १६४२ से माना है। विट्ठलनाथ जी गिरिराज की कन्दरा में श्री नाथ जी भगवान

की सेवा करते समय सदेह लीन हो गए थे । कन्दरा में विट्ठलनाथ जी का उतरीया वस्त्र मिला जिससे गिरिधर जी ने (विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र) विट्ठलनाथ जी की उत्तर क्रिया की।

**विट्ठलनाथ जी का महत्व**

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग को चार चाँद लगाने का श्रेय विट्ठलनाथ जी को जाता है। भारत भ्रमण कर विट्ठलनाथ जी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। तत्कालीन समय के उत्तर भारत को श्री कृष्ण भगवान के रंग में रंगने का अत्यधिक कार्य विट्ठलनाथ जी ने किया। विट्ठलनाथ जी ने अपने जीवन में साहित्य, संगीत एवं विविध ललित कलाओं को भगवतार्थ समर्पित करके इन्हें लौकिकता से अलौकिकता में परिवर्तित कर दिया। विट्ठलनाथ जी ने सम्प्रदाय में कीर्तनकार, चित्रकार, संगीतज्ञ, शिल्पी, जौहरी, पाक कला विशेषज्ञ एवं अन्य कला विदों को अपने साम्र्थय व उपदेश के द्वारा श्री नाथ जी की सेवा का उत्तम अवसर दिया। साथ ही विट्ठलनाथ जी ने लोक कलाओं को भी भगवत् सेवा में लिया जैसे-चौक पूरना, रंगोली सजाना, सांझी कला और अनेक प्रकार की पर्वोत्सव प्रणाली जो आज भी सम्प्रदाय का एक भाग बनी हुई है। इस प्रकार विट्ठलनाथ जी ने भारतीय संस्कृति में निहित 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम' की भावना को जन-जन में जगाया तथा सामान्य मनुष्य जीवन में पहुँचाया। विट्ठलनाथ जी ने वर्ग भेद रहित समाज की स्थापना की और नवीन मानव मूल्यों का निर्धारण कर, यह सिद्ध कर दिया कि पुष्टि सम्प्रदाय की भक्ति भावना किसी एक वर्ग या जाति की धरोहर नहीं है बल्कि समाज के सभी मनुष्यों का इस पर समान अधिकार है। विट्ठलनाथ जी ने समाज एवं धर्म द्वारा उपेक्षित स्त्री, शूद्र व म्लेच्छ जाति के लोगों को भी शरण में लिया। विट्ठलनाथ जी की भावना 'सर्वभूत हिते रतः' की थी। विट्ठलनाथ जी के शिष्य सेवकों में राजा-महाराजाओं से लेकर भिक्षुक, धुरन्धर विद्वानों से लेकर मूर्ख एवं कुलीन जाति के व्यक्ति से लेकर क्षुद्र अन्त्यज एवं म्लेच्छ तक के सभी लोग हैं। यहाँ तक कि

इस्लाम धर्म के भी कई मुसलमानों को विट्ठलनाथ जी ने दीक्षा दी थी। सर्वजन सुलभ इस पुष्टि सम्प्रदाय में संसार का कोई भी प्राणी आकर अपना आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

विट्ठलनाथ जी ने अपने समय के तत्कालीन अन्य सम्प्रदाय के महानुभावों व आचार्यों का भी योग्य सम्मान किया था जैसे–स्वामी हरिदास, हीत हरिवंश, तानसेन आदि का साहित्य भी भगवत् सेवा में स्वीकार किया था। भारत के धर्माचार्यो में विट्ठलनाथ जी का स्थान अनुपम एवम् बेजोड़ है। कई विद्वानों ने पुष्टि सम्प्रदाय का वैभव देख कर विट्ठलनाथ जी पर आडम्बर, विलासता का दोषारोपण किया था। विट्ठलनाथ जी धन वैभव को भगवत् सेवा के द्वारा सर्वथा उपयुक्त बना देना चाहते थे। तत्कालीन इस्लामी (मुगल) शासन युग में जिस प्रकार धन–सम्पती और कला साधनों का दुरुपयोग भोग विलास में हो रहा था, उससे वैष्णव समाज को दूर रख कर और राग–भोग–शृंगार के द्वारा उन सबका भगवत् सेवा में विनियोग किया जाए, यही धन–सम्पति और कला की सार्थकता को विट्ठलनाथ जी ने प्रतिष्ठित किया।

अन्तः विट्ठलनाथ जी एक कुशल प्रशासक, नीतिज्ञ, न्यायकर्ता, कला पारखी, धर्माचार्य,. श्रेष्ठ संगीतज्ञ, साहित्याचार्य एवम् सामाजिक और राष्ट्रीय अखण्डता व एकता के प्रतीक कहे जा सकते हैं।

### ४. गोकुलनाथ जी ::

गोकुलनाथ जी विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र थे। गोकुलनाथ जी का जन्म विक्रम संवत् १६०८ में मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी को अड़ैल में हुआ था। इनका जन्म नाम वल्लभ था। कर्नाटक के विद्वान नारायण भट्ट से गोकुलनाथ जी ने वेद, वेदान्त, दर्शन आदि का अध्ययन किया था। तद् पश्चात् साम्प्रदायिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया तथा अष्टछाप के कवि गोविन्द दास से संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। गोकुलनाथ जी का विवाह विक्रम संवत् १६२४ के अषाढ कृष्ण द्वितीया,

गुरुवार को पार्वती देवी से हुआ था। इनसे गोकुलनाथ जी की चार संतानें थीं– गोपाल जी, विट्ठलेश जी, ब्रजरत्न जी तथा पुत्री रोहिणी जी। पारिवारिक बँटवारे में गोकुलनाथ जी को 'श्री गोकुलनाथ जी ठाकुर जी' का स्वरूप मिला था जो आज गोकुल में ही विद्यामान है। विट्ठलनाथ जी के सात पुत्रों में गोकुल नाथ जी की ख्याति सबसे अधिक थी। गोकुलनाथ जी को सम्प्रदाय में 'महाप्रभु' अथवा 'प्रभुचरण' कहा जाता है। तद्काल में पुष्टि सम्प्रदाय में गोकुलनाथ जी सार्वाधिक प्रतिभाशाली व प्रभावशाली आचार्य थे। यधपि गोकुलनाथ जी अपने अग्रजों का व शिष्य-सेवकों का पर्याप्त सम्मान करते थे। विट्ठलनाथ जी की भाँति गोकुलनाथ जी ने भी यात्राएँ कर पुष्टि सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। इनके शिष्य सेवक भड़ूची (भरूची) वैष्णव के नाम से जाने जाते हैं। गोकुलनाथ जी के शिष्य सेवक ठाकुर जी की स्वरूप सेवा से अधिक गोकुलनाथ जी की गद्दी की सेवा को ही अपना सर्वस्व मानते हैं। जबकि अन्य पुष्टिमार्गीय पीठों में ठाकुर जी की स्वरूप सेवा का ही प्राधान्य है। सम्प्रदाय में ऐसा कहा जाता है कि जब गोकुलनाथ जी का जन्म हुआ तो विट्ठलनाथ जी ठाकुर जी की सेवा में तल्लीन थे। पुत्र जन्म के समाचार से विट्ठलनाथ जी को विवश होकर सेवा स्थगित करनी पड़ी। इस कारण विट्ठलनाथ जी ने कहा कि–इस बालक के कारण ठाकुर जी की सेवा में बाधा पड़ी है अतः इसके अनुयायी ठाकुर जी की स्वरूप सेवा से वंचित रहेंगे।[६] गोकुलनाथ जी के शिष्य सेवकों में (७८) अठ्तर प्रमुख हैं।

गोकुलनाथ जी के जीवन की सर्वाधिक प्रसिद्ध घटना है–माला–तिलक–प्रसंग। बादशाह जहाँगीर ने चिद्रुप या जद्रुप नाम सन्यासी के प्रभाव में आकर यह राजकीय हूकम दिया था कि कोई भी वैष्णव तुलसी माला नहीं पहनेगा और तिलक नहीं लगाएगा। जो भी वैष्णव ऐसा करते उन्हें दण्ड दिया जाता था। इस कारण वैष्णव समाज में अत्यन्त भय और आतंक व्याप्त हो गया था। जब गोकुलनाथ जी को इस बात का पता चला तो उन्होंने राजकीय अधिकारियों से इस हूकम को वापस लेने की विनती की किन्तु कालान्तर में गोकुलनाथ जी ही ब्रज भूमि का

त्याग करत ऐटा जिले के गंगा तटवर्ती के समीप सोरों गाँव में रेहने चले गए। तद्पश्चात तिलक–माला–प्रसंग की बात इतनी आगे बढ़ी की हिन्दू वैष्णवों व मुसलमानों में विद्रोह होने लगा। परिस्थिति को जान कर गोकुलनाथ जी नें बादशाह जाँहगीर से भेंट कर उन्हें तुलसी–माला व तिलक का महत्व समझाया तथा राज आज्ञा वापस लेने के लिए प्रार्थना की। सम्राट जहाँगीर गोकुलनाथ जी के व्यक्तित्व व पांडित्य से प्रभावित हुआ तथा उसने यह कठोर राज आज्ञा वापिस ली। इस प्रसंग से समस्त ब्रज में गोकुलनाथ जी की जय जय कार हो गयी।

गोकुलनाथ जी भी अपने पूर्वजों की भाँति उच्च कोटि के लेखक, कवि और वक्ता थे। गोकुलनाथ जी ने गद्य–पद्य दोनों में विद्याओं में ग्रन्थ रचना की है। इनके ग्रन्थ संस्कृत भाषा और ब्रजभाषा में प्राप्त होते हैं। गोकुलनाथ जी के प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार है–सर्वोतम स्तोत्र विवृति, वेणुगीत की सुबोधिनी टीका पर स्वतन्त्र लेख, गुप्त रस टीका, षोडष ग्रन्थ की टीका, श्रीमद् वल्लभाष्टक व्याख्या, समर्पण गद्यार्थ आदि।

गोकुलनाथ जी की कुल १३ बैठकें हैं। गोकुलनाथ जी का तिरोधान विक्रम संवत् १६९७ की फाल्गुन कृष्ण नवमी को गोकुल में हुआ था।

**गोकुलनाथ जी महत्व**

वल्लभाचार्य जी के जिस पुष्टिमार्ग का विट्ठलनाथ जी ने भारत के कोने – कोने तक पहुँचाया था उसकी जड़ों को और मजबूत करने का कार्य गोकुलनाथ जी ने किया। सम्राट जहाँगीर से मिल कर तिलक–माला पर लगे प्रतिबन्ध को उठवा कर सम्प्रदाय़ का वर्चस्व बढ़ाया। गोकुनलाथ जी ने मौखिक रूप में वार्ता साहित्य का प्रतिवादन किया जिसे लिपि बद्ध करने का कार्य हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी के अन्तिम समय में किया। गोकुलनाथ जी ने व्याख्याता के रूप में पुष्टि भक्ति, सेवा सिद्धान्त और वैष्णवों के आचारण को निरूपित किया। प्रभुदयाल मीतल जी ने वार्ताओं के बारे में लिखा है–'वार्ता पुस्तकें ब्रज भाषा साहित्य के प्राचीन महाकवियों के जीवन वृतान्त प्रकट करने के कारण महत्वपूर्ण हैं ही किन्तु

इनका महत्व इसलिए और भी अधिक है कि ये ब्रजभाषा की प्रारम्भिक गद्य रचनाएँ हैं। इनमें सत्रहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा गद्य का रूप ज्ञात होता है। इन पुस्तकों में दी हुई वार्ताओं में उस समय की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति पर भी बड़ा महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है–इसलिए इसका ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं हैं।'[७]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि ये वार्ताएँ गोस्वामी गोकुलनाथ जी के श्री मुख से निसृत हुई थी। उन्होंने अपने पूज्य पिता गुसाँई विट्ठलनाथ जी और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य सेवकों, भक्तों तथा तत्कालीन महापुरुषों का ऐसा व्यवस्थित, प्रभावी एवं सटीक विवरण लोगों के समक्ष रखा जिससे वे उनके उच्च चरित्रों से शिक्षा ग्रहण कर सके। ये ही चरित्र वार्ताओं के रूप में प्रसिद्ध हुए। अपनी अनवरत लम्बी यात्राओं और स्थान विशेष पर चरित्र–चित्रण के कार्यों से इन वार्ताओं को गोस्वामी जी लिपिबद्ध नहीं कर सके। उनके तत्कालीन शिष्यों, जिनमें कल्याण भट्ट प्रमुख हैं, ने समय–समय पर इन्हें लेखबद्ध अवश्य किया। तत्पश्चात् गोस्वामी जी के तत्वावधान में उनके सुपौत्र हरिराय जी ने इन वार्ताओं का संकलन एवं सम्पादन किया।[८]

## ५. हरिराय जी ::

वल्लभाचार्य की चौथी पीढ़ी में हरिराय जी का जन्म हुआ था। हरिराय जी का जन्म संवत् १६४७ आश्विन कृष्ण पंचमी को गोकुल में हुआ था।[९] हरिराय जी सम्प्रदाय में विट्ठलनाथ जी के प्रतिरूप में जन्मे माने जाते हैं। हरिराय जी को गोकुलनाथ जी ने दीक्षा दी थी। अतः गोकुलनाथ जी के मार्गदर्शन में ही हरिराय जी ने समस्त वेद,. वेदान्तादि ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों तथा सेवा का मार्गदर्शन भी प्राप्त किया। हरिराय जी का विवाह सुन्दरवती देवी से हुआ था। हरिराय जी के चार पुत्र थे जिनका असमय देहावसान हो चुका था।

हरिराय जी की सात बैठकें हैं। हरिराय जी ने देश व्यापी यात्राएँ कर पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार किया है। हरिराय जी ने अपनी यात्राओं में वल्लभाचार्य जी, विट्ठलनाथ जी आदि पूर्वजों के शिष्य सेवकों की जीवन गाथाओं को ढूंढने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। हरिराय जी ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में ग्रन्थ रचना की है। हरिराय जी ने संस्कृत, हिन्दी–ब्रज भाषा, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं का प्रयोग अपनी ग्रन्थ रचना में किया है। अपने छोटे भाई को लिखे शिक्षा–पत्र हरिराय जी की सर्वाधिक सुप्रसिद्ध साम्प्रदायिक रचना है।[१०] इसके अलावा चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पर 'भावना टीका' की रचना, साथ ही महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता, श्री गोवर्धन नाथ जी प्राकट्य वार्ता, निजवार्ता, महाप्रभु श्री गुसाँई जी के स्वरूप कौ विचार, श्री नाथ जी के चरण चिन्ह, श्री गोकुलनाथ जी की बैठक चरित्र, शरण मंत्र और मार्ग शिक्षा, नव ग्रह आचार, वैष्णव नित्य कृत्य आदि। हरिराय जी ने लगभग २०० से भी अधिक ग्रन्थों की रचना की है। हरिराय जी ने हरिदास, हरिधन, रसिक, रसिकराय, रसिक प्रीतम आदि नामों से पद्यात्मक रचनाएँ की हैं। हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी की उपस्थिति में ही उनके वचनामृतों का सम्पादन करते हुए समस्त वार्ता साहित्य पर भाव टीकाएँ लिखी। जिनसे वार्ता साहित्य के समझने में सुविधा होती है और उसका महत्व प्रकट होता है।

हरिराय जी के सेवकों में हरिजीवन दास, विट्ठलनाथ भट्ट, प्रेम जी आदि प्रमुख थे। हरिराय जी का तिरोधा संवत् १७७२ मे खमनोर गाँव (राजस्थान) में हुआ था।

## हरिराय जी का महत्व

हरिराय जी प्रकाण्ड पंडित, विशिष्ट विद्वान, धुरंधर धर्म वेता थे। पुष्टि सम्प्रदाय के विद्वानों ने साहित्य रचनाएँ तो की हैं किन्तु सभी रचनाएँ मुख्यतः देव भाषा संस्कृत में हैं जो विद्वान पंडितों के लिए सहज है। परन्तु हरिराय जी ने

संस्कृत भाषा के साथ लोक भाषा ब्रज भाषा में भी ग्रन्थ रचनाएँ कीं जिसके कारण पुष्टि सम्प्रदाय के गूढ़ सिद्धान्तों को साधारण जन मानस तक पहुँचाया जाए। हरिराय जी पुष्टि साहित्य के प्राण हैं इनके ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा समस्त पुष्टि सम्प्रदाय का सारा स्वरूप जाना जा सकता है। हरिराय जी मानो पुष्टि सम्प्रदाय के अचल स्तम्भ हैं। वल्लभाचार्य जी, विठ्ठलनाथजी, गोकुलनाथ जी की तरह हरिराय जी को भी पुष्टि सम्प्रदाय में 'महाप्रभु' व 'प्रभुचरण' के गरिमामय सम्बोधनों से सम्मानित किया गया है।

श्री विष्णु विराट चतुर्वेदी का कथन है कि 'वे हिन्दी गध के पितामह थे और काव्य कौमुदी के सुधाकर। वे पुरोधा आचार्य थे और एक कुशल उपदेशक। वे विनम्र भक्त, सहृदय कवि, निष्णात कलाविद् तथा ब्रज भाषा–साहित्य के क्षेत्र में एक इतिहास पुरुष थे।'[११] 'ब्रजभाषा ने हिन्दी साहित्य को गोरवान्वित किया है तो गो. हरिराय जी ने ब्रज भाषा को गोरवान्वित किया है। ब्रज भाषा के सात शताब्दी दीर्घकालिन इतिहास में गोस्वामी हरिराय जी जैसी प्रांजल प्रज्ञात्मक चेतना से संपृक्त अन्त व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता है, जिसने अपनी १२५ वर्ष की आयु में लगभग २५० ग्रन्थों का प्रणयन किया हो।'[१२] अपने 'भक्त चरिताकं' नामक विशेषांक में गोस्वामी जी के बारे में कल्याण का उल्लेख इस प्रकार है 'पुष्टि सम्प्रदाय के विकास में श्री हरिराय जी ने बड़ा योग दिया। उनका सबसे बड़ा कार्य वार्ता–साहित्य का संकलन था। ....वे संस्कृत, गुजराती और ब्रजभाषा साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान और मर्मज्ञ थे। उन्होंने निरूपण, निराकरण, रहस्य, तात्पर्य, विवेक, विवेचन, विवृति, लक्षण सम्बन्धी पुष्टि ग्रन्थों की रचना की। उनकी अष्टपदी में श्री वल्लभ, श्री कृष्ण और राधा रानी के प्रति दृढ भक्ति का परिचय मिलता है।'[१३]

## २. पुष्टिमार्ग के भक्त कवि-अष्टछाप ::

पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान अष्टछाप कवियों का है। जैसा कि पहले लिख चुकी हूँ कि अष्टछाप की स्थापना गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने वि.सं. १६०२ में की थी जिसमें चार कवि शिष्य अपने पिता वल्लभाचार्य के थे ओर चार कवि शिष्य अपने थे जिनके नाम इस प्रकार हैं कुम्भनदास, परमानन्द दास, सूरदास, कृष्णदास, चतुर्भजदास, गोविन्द दास, नंद दास, छीत स्वामी। इन आठों भक्त कवियों ने गोवर्धन पर्वत पर स्थित प्रभु श्री नाथ जी मंदिर में कीर्तन सेवा का कार्य किया था। श्री कृष्ण के जीवन के विविध रूपों को लेकर प्रेम और भक्ति से ओत–प्रोत काव्य की रचना इन अष्टछाप कवियों ने की है वह संसार में व साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अष्टछाप के पदों में भावों की अभिव्यक्ति और संगीत की ध्वनि का अनन्य सामंजस्य देखने को मिलता है। इन अष्टछाप कवियों का काव्य लौकिकता से अलौकिक आध्यात्मिकता की अनुभूति करता हुआ हमारी आत्मा को झकझोर देता है। इन अष्टछाप कवियों का संक्षिप्त जीवन–वृत्तांत इस प्रकार है –

## १. कुम्भनदास –

कुम्भनदास जी का जन्म संवत् १५२५ की कार्तिक कृष्ण एकादशी को गोवर्धन के समीप जमुनावतौ गाँव में हुआ था। कुम्भनदास गोरवा क्षत्रिय जाति के थे। परसौली चन्द्रसरोवर के समीप थोड़ी पैतृक भूमि थी वही कृषि कार्य करते हुए अपने 'परिवार का जीवन यापन' करते थे। कुम्भनदास के कुटुम्ब में उनके चाचा धर्मदास का नाम ही मिलता है जो भगवद् भक्त थे जिनका पर्याप्त प्रभाव कुम्भनदास पर था। कुम्भनदास अवकाश के समय थोड़ा बहुत भगवद् गायन किया करते थे, उनका कण्ठ मधुर था। कुम्भनदास की पत्नी जैत गाँव के पास बहुलावन की रेहने वाली थीं। कुम्भनदास के सात पुत्र थे। खेती ही एक मात्र आय का स्त्रोत था जिससे परिवार का पालन पोषण होता था।

वल्लभाचार्य ने प्रभु 'श्री नाथ जी' को गोवर्धन पर छोटा सा मंदिर बनवा कर उसमें पधराया तभी कुम्भनदास, रामदास चौहान, सदू पाण्डे आदि को शिष्य बनाया और श्री नाथ जी सेवा का कार्य सौंपा, जिसमें कुम्भनदास को कीर्तन का कार्य सौंपा गया। अपने गुरु वल्लभाचार्य के आशीर्वाद से कुम्भनदास को प्रभु श्री कृष्ण की लीलाओं की स्मृति हुई और नित्य नये पद रच कर कीर्तन कर श्री नाथ जी को सुनाते थे। यूँ कीर्तन सेवा में सर्वप्रथम नाम कुम्भनदास का है। संगीत कला का ज्ञान कुम्भनदास को कैसे प्राप्त हुआ इसका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

कुम्भनदास की कीर्ति उनके समय में ही दूर–दूर तक फैल गई थी। एक बार बादशाह अकबर ने कुम्भनदास जी को फत्तेहपुर सीकरी बुलाया, बड़ा सम्मान किया और कहा–कुम्भनदास जी आप बड़े सुंदर पदों की रचना करते हैं कोई नवीन पद सुनाइए। कुम्भनदास जी का मन भगवान की सेवा छोड़ कर आने से बड़ा खिन्न था फिर भी कुम्भनदास ने यह पद गाया –

'भक्तन कौ कहा सीकरी सों काम।
आवत जात.पन्हैयां टूटी, बिसर गयौ हरिनाम।।
जाकौ मुख देखै दुख लागै, ताको करन परी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठौ धाम।।'

यह पद सुन कर अकबर ने कुम्भनदास को स–सम्मान लौटा दिया। कुम्भनदास श्री नाथ जी के मंदिर पहुँचे, प्रभु के दर्शन किये तो सारी अप्रसन्नता दूर हो गाई।

फिर एक बार राजा मानसिंह श्री नाथ जी के दर्शन करने गोवर्धन आए जहाँ उन्होंने कुम्भनदास का कीर्तन सुना। राजा मानसिंह दूसरे दिन कुम्भनदास से मिलने उनके घर जमुनावतौं गाँव पहुँचे, कुम्भनदास की निर्धनता देखकर राजा मानसिंह ने उन्हें कुंछ द्रव्य भेंट देना चाहा किन्तु कुम्भनदास ने कुछ भी लेने से इनकार कर दिया। यह देख राजा मानसिंह ने कहा–मैंने विरक्त त्यागी तो बहुत देखे किन्तु ऐसा गृहस्थ त्यागी पहली बार देखा है।

फिर एक बार गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने कुम्भनदास को अपने साथ द्वारिका की यात्रा पर चलने को कहा ताकि कुम्भनदास को वैष्णवों से कुछ भेंट मिले और उनका आर्थिक कष्ट थोड़ा दूर हो। कुम्भनदास गुसाँई जी के साथ तो चल दिए किन्तु उनका मन श्री नाथ जी प्रभु में लगा रहा। थोड़ी दूर जाने पर ही कुम्भनदास श्री नाथ जी प्रभु के विरह में विवह्ल हो गए और उनके आँखों से अश्रु बहने लगे। तब कुम्भनदास ने यह पद गाया–

'किते दिन है जु गए बिनु देखे।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखे।।
वह सोभा, वह काँति बदन की कोटिक चंद विसेखे।
वह चितवन, वह हास्य मनोहर, वह नटवर बपु भेषें।।
स्यामसुंदर संग मिल खेलन की आवत जिये अमेखें।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन जीवन जन्म अलेखें।।'

कुम्भनदास जी की यह दशा देख कर विट्ठलनाथ जी ने कहा–कुम्भनदास तुम्हारी यात्रा हो चुकी। मंदिर में जाओ और श्री नाथ जी के दर्शन और कीर्तन की सेवा करो।

निर्धन होते हुए कुम्भन दास ने कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। सम्मान पूर्वक दिए गए द्रव्य को भी कुम्भनदास ने स्वीकार नहीं किया। फिर एक बार वृंदावन के अनेक भक्त महानुभाव कुम्भनदासका उत्कृष्ट काव्य और कीर्तन की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने आए, और कहा–तुम्हारे युगल स्वरूप के कीर्तन बहुत सुने, परि कृपा करि के कोई पद श्री स्वामिनी जी का सुनाओ। तब कुम्भनदास जी ने यह पद सुनाया–

'कुंवरि राधिका तु सकल सौभाग्य सींव,
बदन पर कोटि सत चंद्र वारों।।'

कुम्भनदास जी का यह पद कीर्तन सुन कर हरिदास जी और हित हरिवंश जी बहुत प्रसन्न हुए और उनके काव्य की भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे।

इन घटनाओं से कुम्भनदास जी की दृढ़ भक्ति, ईश्वर में पूर्ण विश्वास, हृदय की निर्भीकता तथा निस्पृहता का परिचय मिलता है।

कुम्भनदास जी का गोलोकवास लगभग संवत् १६३९/१६४० में हुआ था अपने अंतिम समय में कुम्भनदास ने यह पद गाया था–

'रसिकनी रस में रहत गडी।
कनक बैलि बृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी।
विहरत श्री गिरिधरन लाल संग कोने पाठ चढ़ी।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर रति रस केलि बढ़ी।'[१४]

कुम्भनदास ने कोई ग्रन्थ रचना नहीं की। उनके केवल २०० फुटकल पद मिलते हैं जो पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन साहित्य में देखने को मिलते हैं।

संवत् १६०२ में अष्टछाप की स्थापना हुई थी जिसमें विट्ठलनाथ जी ने कुम्भनदास जी तथा उनके पुत्र चतुर्भज दास को सम्मिलित किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कुम्भनदास जी के बारे में कहा है–'पूरे विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे।'[१५]

## २. **सूरदास –**

सूरदास का जन्म संवत् १५३५ की वैशाख सुदी पंचमी को हुआ था। सूरदास दिल्ली के निकट सीहीं नामक गाँव के रहनेवाले थे। सूरदास जी सारस्वत ब्राहमण थे। सूरदास जन्मांध थे या अमुक अवस्था में अन्ध हुए इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। विद्वानों का मत है कि सूरदास विरक्त होकर घर से निकल पड़े और १८ वर्ष तक गाँव से कुछ दूर एक तालाब के पास पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे। सूरदास के विवाहित होने का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। धीरे–धीरे सूरदास की ख्याति फैलने लगी और लोग उन्हें स्वामी जी कहने लगे।

एकान्त स्थान की तलाश में सूर ब्रज की ओर चल पड़े, जहाँ आगरा और मथुरा के बीच यमुना के किनारे पर स्थित गऊघाट नामक स्थान पर रहने लगे। विद्वानो का मत है संत–महात्माओं तथा विद्वानों के सत्संग में सूर ने काव्य, संगीत और गायन का ज्ञान प्राप्त किया। ३१ वर्ष तक सूर गऊघाट पर रहते थे एक भक्त महात्मा के रूप में सूर की ख्याति फैलने लगी थी।[१६] सूर सदा विनय, वैराग्य के पद गाते थे।

एक बार यात्रा करते हुए वल्लभाचार्य गऊघाट पर रुके, यही सूरदास वल्लभाचार्य की शरण में आए। वल्लभाचार्य ने सूर को अपने पास बिठाया और कुछ गाने को कहा। तब सूर ने यह पद सुनाया –

'हों हरि सब पतितन को नायक'

यह पद सुनकर वल्लभाचार्य ने कहा प्रभु श्री कृष्ण की लीला का, यश का वर्णन करो। सूर ने कहा–महाराज मैं लीला का रहस्य नहीं जानता। तब वल्लभाचार्य ने सूर को पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा दी और अपनी सुबोधिनी का बोध कराया। फिर सूर ने अपने गुरु की आज्ञानुसार ही पद रचना की। कुछ समय गोकुल में नवनीतप्रिय जी के सम्मुख भगवद् कीर्तन करने के बाद वल्लभाचार्य ने सूर को गोवर्धन स्थित श्री नाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने की सेवा दी। गोवर्धन आने पर सूर ने अपना स्थायी निवास चन्द्रसरोवर के समीप, परासोली में बनाया था और यहीं से प्रतिदिन श्री नाथ जी के मंदिर में जा कर कीर्तन सेवा करते थे।

एक बार तानसेन ने सूर का एक पद अकबर को सुनाया। वह पद सुन अकबर सूर से मिलने आया। अकबर ने सूर को कुछ सुनाने को कहा, तो सूर ने वैराग्य और भक्ति से भरा यह पद गाया–'मना रे ! तु कर माधा सो प्रीत।' फिर अकबर ने उसका यश वर्णन करता हुआ पद गाने को कहा तो सूर ने यह पद गाया –

'नाहिंन रहौ मन में ठौर।

नंदनंदन अछत कैसे आनिऐ उस और चलत,

चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत रति।

हृदय ते वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।।

कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लाभ दिखाय।

कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समाय।।

स्याम गात, सरोज आनन ललित अति मृदु हास।

सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।'

यह पद सुन कर अकबर सूर की निस्पृहता पर चकित हो गया। सूर के मन में श्री कृष्ण भगवान के अतिरिक्त किसी के लिए कोई स्थान नहीं है।

सूर प्रभु के शृंगार का यथावत वर्णन करते थे। एक दिन विट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरिधर लाल जी ने सूर की परीक्षा ली। उन्हों ने प्रभु नवनीत प्रिया जी को केवल मोतियों का शृंगार किया। जब दर्शन खुले तो सूर ने यह पद गाया–[१७]

'देखे री हरि नंगम नंगा।

जल सुत भूषण अंग बिराजत बसन हीन छबि उठत तरंगा।

अंग अंग प्रति अमित माधुरी निरषि लजित रति कोटि अनंगा।

किलकत दधि सुत मुष ले मन भरि सूर हंसत ब्रज जुवतिन संगा।।'

पुष्टि सम्प्रदाय में आने से पूर्व ही सूर विनय के पद बना कर गाया करते थे। विद्वानों का मत है कि सूर ने एक लाख पद रचनाएँ की हैं। हरिराय जी का कहना है कि सूरदास ने चार नामों से पद रचनाएँ की हैं–सूर, सूरदास, सूरजदास तथा सूर स्याम। [१८] सूरदास की रचना से उनके गम्भीर ज्ञान एवं प्रकाण्ड पांडित्य का परिचय प्राप्त होता है साथ ही यह भी विदति होता है कि वे ब्रज भाषा और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने यह अपार ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया, किन भाग्यवान पुरुषों को इस महा कवि के विद्या गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त है इन बातों का कही कोई भी उल्लेख नहीं है। सूर सागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी–सूरदास की प्रमुख रचनाएँ है। सूरदास का गोलोकवास संवत् १६४० में हुआ था। विट्ठलनाथ जी ने सूर के बारे में कहा था–आज पुष्टिमार्ग का जहाज जाने वाला है

जिसको जो कुछ लेना हो, वह लेले।[19] अपने अंतिम समय में सूर ने यह पद गाया था–

'खंजन नैंन रूप रस माते अति सै चारु चपल अनियारे,
पल पिंजरा न समाते।।
चलि–चलि जात निकट स्त्रवनन के, उलटि पलटि ताटक फँदाते।
सूरदास अंजन–गुन अटके नतरु अबहि उड़ि जाते।।'

इसके पश्चात् सूरदास ने अपने गुरु वल्लभाचार्य के लिए यह पद गाया–

'भरासो दृढ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु, सब जग माझ अंधेरो।।
साधन नाहिं और या कलि में, जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहे द्विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो।।'

विट्ठलनाथ जी ने सूर को सं. १६०२ में अष्टछाप में सम्मलित किया। इन आठों कवियों में सूर सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं।

### ३. परमानंद दास –

परमानंद दास का जन्म संवत् १५५० की मार्गशीर्ष सुदी सप्तमी को हुआ था। इनका जन्म स्थान कन्नौज था। ये कान्यकुब्ज ब्राहमण थे। इनके पिता को दानादि से जो प्राप्त होता था उसी से जीवन निर्वाह होता था। जब बालक का जन्म हुआ तो एक शेठ ने प्रसन्न होकर इनके पिता को बहुत सा द्रव्य दिया, जिसके अपार आनंद के कारण बालक का नाम परमानंद रखा गया।[20] परमानंद ने आजीवन विवाह नहीं किया था। परमानंद बाल्य काल से ही वैरागी थे इनका मन भगवत भक्ति में रमा हुआ था। साधु–संगति में रेहने के कारण कविता करना और गाना सहज हो गया था। परमानंद एक कवीश्वर और गवैये के रूप में प्रसिद्ध होने लगे थे इनका कीर्तन समाज बहुत बड़ा था तथा लोग इन्हें परमानंद स्वामी कहने लगे थे। मकर संक्रान्ति के स्नान करने के अवसर पर परमानंद कन्नौज से प्रयाग

आए। प्रयाग में भी परमानंद के भजन–कीर्तन का कार्यक्रम यथावत चलता रहता था वहीं यमुना के दूसरी ओर अड़ेल में वल्लभाचार्य जी का निवास था। परमानंद के भजन–कीर्तन की प्रसिद्धि सेवकों द्वारा वल्लभाचार्य तक भी पहुँच गई थी। एकादशी की रात्रि भजन–कीर्तन करने के पश्चात् परमानंद की आँख लग गई और स्वप्न में उनको वल्लभाचार्य के दर्शन की प्रेरणा हुई। दूसरे दिन परमानंद अड़ेल वल्लभाचार्य के पास पहुँचे। वल्लभाचार्य ने परमानंद को भगवत् यश वर्णन करने को कहा। परमानंद ने यह पद गाया–

'जिय की साधन जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देखि नहीं पाए बिलपत कुंज अहीरी।।
इक दिन सोंज समीप ये मारग, बेचन जाता दहीरी।
प्रीत के लिए दान मिस मोहन, मेरी बाँह गहीरी।।
बिन देखें घड़ी जाता कलप सम, विरहा अनल दहीरी।
परमानंद स्वामी बिन दरसन नैन न नींद बहीरी।।'

फिर वल्लभाचार्य ने प्रभु की बाल लीला का वर्णन करने को कहा, तो परमानंद ने कहा–मुझे बाल लीला का बोध नहीं है। तब वल्लभाचार्य ने परमानंद को शरण में लिया संवत् १५७६/१५७७ की ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी।[२१] फिर वल्लभाचार्य जी के साथ ही परमानंद ब्रज की ओर चले। रास्ते में परमानंद का गाँव कन्नौज आता है यहाँ पर परमानंद ने अपने गुरु वल्लभाचार्य तथा सभी साथी सेवकों का यथा योग्य सत्कार किया। यही पर परमानंद ने वल्लभाचार्य जी को यह पद सुनाया – 'हरि तेरी लीला क़ी सुधि आवै।' इस पद को सुन कर वल्लभाचार्य तीन दिन तक मूर्च्छा में रहे। फिर कन्नौज से सभी लोग ब्रज में गोकुल में कुछ दिन रेह कर फिर गोवर्धन पर स्थित श्री नाथ जी के मंदिर पर पहुँचे। अपनी तमाम उम्र परमानंद ने श्री नाथ जी की कीर्तन सेवा की। परमानंद गोवर्धन के समीप सुरभी कुण्ड के पास श्याम तमाल वृक्ष के नीचे रहा करते थे।

परमानंद दास की मृत्यु संवत् १६४१/१६४० में हुई थी।[२२] आपने अन्त में युगल लीला का स्मरण कर परमानंद ने यह पद गाया था – 'राधे बैठी तिलक सभारति।'[२३]

परमानंद की मृत्यु के पश्चात् विठ्ठलनाथ जी ने कहा था पुष्टिमार्ग के दो सागर नहीं रहे – सूरदास और परमानंद दास। इस तरह अष्टछाप के कवियों में विठ्ठलनाथ जी ने परमानंद दास जैसे उच्चकोटि के भक्त, कवि, संगीतज्ञ व कीर्तनकार का समावेश किया।

पुष्टिमार्ग में आने से पूर्व ही परमानंद दास–परमानंद स्वामी, परमानंद, परमानंद दास और परमानंद प्रभु के नाम से पद रचना किया करते थे। परमानंद ने बहुसख्यक पदों की रचना की है। परमानंद की रचनाओं में परमानंद सागर का नाम मुख्य है।

## ४. कृष्णदास अधिकारी –

विद्वानों के मतानुसार कृष्णदास का जन्म संवत १५५२/१५५३ में गुजरात के चलोतर (चिलोत्तर) नामक गाँव में हुआ था। ये कुनबी पटेल थे। इनके पिता गाँव के मुखिया थे। कृष्णदास के पिता धनलोलुप व्यक्ति थे और धनोपार्जन के लिए असत्य का आचरण करते थे, इसी कारण एक बार बालक कृष्णदास ने पिता के विरुद्ध राजा के सामने गवाही दी, तो कृष्णदास को घर से निकाल दिया गया। इस समय कृष्णदास की आयु तेरह वर्ष की थी। घर से निकलने के बाद कृष्णदास तीर्थों में पर्यटन करते हुए ब्रज में आए। फिर गोवर्धन पर देवदमन के दर्शन के लिए आए। यही पर वल्लभाचार्य से भेंट हुई और वल्लभाचार्य ने बालक कृष्णदास को दीक्षा देकर शरण में लिया। कृष्णदास का शरणागत संवत् १५६६/१५६७ था।[२४] कृष्णदास को वल्लभाचार्य ने पहले श्री नाथ जी की भेंट एकत्रित करने का कार्य सौंपा था और फिर श्री नाथ जी मंदिर का अधिकारी बनाया था। कृष्णदास मंदिर का हिसाब–किताब गुजराती भाषा में ही करते थे।

कृष्णदास की कुशाग्र और व्यवहारिक बुद्धि से सभी लोग प्रभावित थे। कृष्णदास के साम्प्रदायिक जीवन में अनेक घटनाएँ घटित हुई जिनमें से एक है बंगाली सेवकों को मंदिर से निकालना। इसके पश्चात् कृष्णदास ने मंदिर के विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिए अनेक कर्मचारियों को नियुक्त किया। इस प्रकार श्री नाथ जी के अधिकारी की मर्यादाएँ कायम हुई और उनका वैभव और प्रभाव खूब बढ़ा।

इसके बाद पारिवारिक कलह में कृष्णदास ने विट्ठलनाथ जी के आचार्य पद का विरोध करते हुए उन्हें छः महीने तक श्री नाथ जी भगवान के दर्शन से वंचित रखा था। विट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरधर लाल जी ने राज आज्ञा से कृष्णदास को बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया था किन्तु जब विट्ठलनाथ जी को इस बात का पता चला तो उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया और कृष्णदास के लौट कर आने की राह देखी। इसके पश्चात् कृष्णदास ने विट्ठलनाथ जी से माफी मांगी और उनके परम भक्त बन गए।

मंदिर के कार्य करने के साथ-साथ जब कृष्णदास को समय मिलता वे साम्प्रदायिक सिद्धान्त और सेवा का ज्ञान प्राप्त करते थे और साथ ही सूर, कुम्भन आदि महानुभावों के भगवत् सत्संग से गान और काव्य कला का ज्ञान भी प्राप्त करते थे। इसी भक्ति के आवेश में बह कर कृष्णदास ने भी अपने आराध्य श्री कृष्ण की लीलाओं का गान किया। किशोर अवस्था से ही श्री नाथ जी प्रभु की कृपा से और गुरु वल्लभाचार्य के आशीर्वाद से कृष्णदास ने धीरे-धीरे काव्य और संगीत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सुन्दर भक्ति पूर्ण पदों की रचना कर अपने प्रभु को रिझाया। कृष्णदास की भक्ति भाव को देखकर और उनके कीर्तन को जान कर ही विट्ठलनाथ जी ने कृष्णदास का अष्टछाप में सम्मिलन किया। कुशल प्रबन्धक होने के साथ-साथ, सुन्दर और अद्वितीय कवि एवं कीर्तनकार के रूप में भी कृष्णदास का महत्व कम नहीं है।

कृष्णदास की मृत्यु कुएँ में गिर जाने के कारण हुई थई। कृष्णदास की मृत्यु का संवत १६३२ से १६३८ के बीच का है।[२५] प्रभुदयाल मीत्तल ने कृष्णदास की मृत्यु का संवत १६३६ कहा है।[२६]

कृष्णदास ने अधिकांशतः शृंगार रस भावना प्रधान पदों की रचना की है। कृष्णदास के लगभग ६७६ पदों का संग्रह प्राप्त है।

## ५. गोविन्द दास –

गोविन्द दास का जन्म संवत १५६२ है। गोविन्द दास का जन्म भरतपुर राज्य के अन्तर्गत आँतरी गाँव में हुआ था। गोविन्द दास का जन्म सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। गोविन्द दास की एक लड़की का उल्लेख वार्ता साहित्य से प्राप्त होता है अत गोविन्द दास पहले गृहस्थ थे और उनकी सन्तान में एक लड़की तो थी ही।[२७] कुछ समय पश्चात् संसार से विरक्त हो कर गोविन्द दास ब्रज के महावन में रहने लगे। फिर कुछ समय के बाद गोकुल और महाबन के बीच टीले पर बैठ कर भगवद् गुण–गान गाया करते थे। गोविन्द दास उच्चश्रेणी के संगीताचार्य एवं उत्तम गायक और कवि थे। कुछ ही समय में इनके अनेक शिष्य बन गये थे जो इन्हें 'स्वामी' कहने लगे थे। गोविन्द दास से सीखे पद कुछ लोग विठ्ठलनाथ जी को सुनाया करते थे गुसाँई जी प्रसन्न हो कर उन लोगों को ठाकुर जी का प्रसाद देते थे। इस प्रकार गोविन्द दास और विठ्ठलनाथ जी एक–दूसरे से कुछ परिचित अवश्य थे किन्तु मिले नहीं थे। इस समय ब्रज में विठ्ठलनाथ जी का प्रभाव बहुत बड़ा था। उनकी भगवद् भक्ति से आकर्षित हो कर गोविन्द दास ने सम्प्रदाय में दीक्षा ली। गोविन्द दास जी संवत १६९२ में विठ्ठलनाथ जी की शरण में आए थे। गोवर्धन में गिरिराज की कदम खण्डी में गोविन्द दास का स्थायी निवास था। यहीं से ये श्री नाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने जाते थे। गोविन्द दास संगीत शास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे। अकबर के संगीतज्ञ तानसेन गोविन्द दास से संगीत सीखने आता था। गोविन्द दास की भगवद भक्ति और कीर्तन गान

को जान कर विट्ठलनाथ जी ने उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित किया। संवत् १६४२ में गोविन्द दास की मृत्यु हुई थी। गोविन्द दास रचित २५२ पदों का एक संग्रह ही प्राप्त होता है।

## ६. नंद दास –

नंद दास का जन्म संवत् १५९० है, नंद दास रामपुर गाँव के रेहने वाले थे। नंद दास सनाढ्य ब्राह्मण थे। तुलसीदास और नंद दास चचेरे भाई थे दोनों भाईयों ने पण्डित नरहरि से शिक्षा प्राप्त की थी। नंद दास संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान थे। एक समय नंद दास काशी से एक संघ के साथ द्वारिका रणछोड़ भगवान के दर्शन करने चल दिए। कुछ दिनों के लिए संघ मथुरा में रुक गया तो नंद दास अकेले ही आगे बढ़ गए। कुछ आगे जा कर नंद दास रास्ता भटक गए तथा सिंहनद नामक गाँव में जा पहुँचे। वहाँ नंद दास ने एक रुपवती स्त्री देखी और उस पर आसक्त हो गए। नंद दास की हरकतें देख उस स्त्री का परिवार ब्रज की यात्रा को चल पड़ा। नंद दास भी इनके पीछे चल दिए और गोकुल पहुँच गए। यहीं नंद दास विट्ठलनाथ जी से मिले और उनका मोह दूर हो गया। नंद दास ने विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गए। नंद दास संवत १६१६ में विट्ठलनाथ जी की शरण में आए। नंद दास का मोह उन्हें गृहस्थी में फिर खींच ले गया। कुछ समय पश्चात् नंद दास फिर संसार से विरक्त हो कर प्रभु श्री नाथ जी की शरण में आ गए और जीवन पर्यन्त उनकी सेवा की। नंद दास का निवास गोवर्धन पर स्थित मानसी गंगा पर था। अपने शेष जीवन नंद दास ने भजन कीर्तन कर प्रभु सेवा में हीं व्यतीत किया। नंद दास की मृत्यु संवत १६३९/१६४० में हुई थी। जब विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की तब नंद दास उसमें नहीं थे सात सखाओं के साथ विष्णुदास छीपा कीर्तन करते थे। जब नंद दास आए तो उनको अष्टछाप में सम्मिलित किया गया।

नंद दास की काव्य रचनाओं में रास पंचाध्यायी, भ्रमर गीत, रुक्मिणी मंगल, स्याम सगाई, अनेकार्थ मंजरी आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। विद्वानों ने नंद दास के लिए कहा है – 'और कवि गढिया नंद दास जड़िया' – इस उक्ति से ही हम नंद दास की काव्य प्रतिभा की विद्वत्ता का पाण्डित्य देख सकते हैं।

## ७. चतुर्भुज दास –

चतुर्भुज दास के जन्म संवत को लेकर विद्वानों में काफी मत भेद है। प्रभु दयाल मीत्तल ने चतुर्भुज दास का जन्म संवत १५७५ माना है। विद्वान दीन दयालु गुप्त ने संवत १५९७ लिखा है।[२८] चतुर्भुज दास कुम्भनदास जी के सातवें पुत्र थे। चतुर्भुज दास का जन्म स्थान जमुनावतौं गाँव था। ये गोरवा क्षत्रिय थे। चतुर्भुज दास बाल्य काल से ही अपने पिता के साथ प्रभु श्री नाथ जी की भक्ति कीर्तन करने जाते थे। चतुर्भुज दास के छः और भाई थे, पाँच भाई इनसे अलग रहते थे। छठा भाई श्री नाथ जी की गाय चराने जाता थे जहाँ एक दिन सिंह ने उसे मार डाला। चतुर्भुज दास जी की एक चचेरी बहन भी थी जो विट्ठलनाथ जी की शिष्या थी। चतुर्भुज दास की पहली पत्नी का निधन हो गया था। फिर विट्ठलनाथ जी की प्रेरणा से एक विधवा से इन्होंने दूसरा विवाह किया था। इनसे इनका राघवदास नामक एक पुत्र था। चतुर्भुज दास जी की शिक्षा पिता कुम्भनदास और विट्ठलनाथ जी की देख रेख में हुई थी। संगीत तथा काव्य का ज्ञान चतुर्भुज को पिता से प्राप्त होता है। जन्म के ४१ वें दिन ही चतुर्भुज दास को सम्प्रदाय की दीक्षा दी थी।

विट्ठलनाथ जी ने जब अष्टछाप की स्थापना की तब उसमें सभी वयोवृद्ध कवि, भक्त, कीर्तनकार सम्मिलित थे। बालक चतुर्भुज दास भी अपनी प्रतिभा के कारण अपने पूज्यं पिता तथा अन्य वयोवृद्ध भक्त गण के साथ अष्टछाप में सम्मिलित किए गए। यह चतुर्भुज दास के लिए अत्यन्त सम्मान की बात थी।

चतुर्भुज दास का मृत्यु संवत १६४२ था। चतुर्भुज दास ने स्फुट पदों की रचना की थी।

## ८. छीतस्वामी –

प्रभु दयाल मीत्तल के अनुसार छीतस्वामी का जन्म संवत १५७२ था। दीन दयालु गुप्त ने छीतस्वामी का जन्म संवत १५६७ में कहा है।[२९] छीतस्वामी मथुरा के रेहने वाले थे ये मथुरिया चौबे थे। छीतस्वामी बीरबल के पुरोहित थे। उनकी वार्षिक वृति बँधी हुई थी जिससे उनके परिवार का पालन–पोषण होता था। एक दिन छीतस्वामी मस्करी करने के इरादे से एक खोटा रुपया और थोथा नारियल लेकर विठ्ठलनाथ जी के पास पहुँचे। किन्तु विठ्ठलनाथ जी की प्रतिभा से प्रभावित हो कर उनके शिष्य बन गए। छीतस्वामी का शरणागत संवत १५९२ था। इसके बाद वे श्री नाथ जी के कीर्तन करने में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। चौबे होने के कारण ये गान विद्या और कविता के शौक़ीन थे किन्तु श्री नाथ जी के दर्शन के पश्चात् ये सम्पूर्ण रूप से भगवदीय भक्ति में लीन हो गए। छीतस्वामी का निधन संवत १६४२ में गोवर्धन के समीप पूँछरी नामक स्थान पर हुआ था। छीतस्वामी के रचे २०० पद मिलते हैं। विठ्ठलनाथ जी के दर्शन व ज्ञान के बाद छीतस्वामी की संगीत कला और काव्य कला में और निखार आया। और विठ्ठलनाथ जी उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित किया।

## ९. अष्टछाप का महत्व –

वार्ता साहित्य में वर्णित इन भक्त कवियों की जीवन घटनाओं से कई महत्वपूर्ण और रोचक जानकारी मिलती है। सम्प्रदाय में दीक्षित होनें से पूर्व इनमें से कई भक्त कवियों का जीवन हीन कोटि का था।[३०] किन्तु भगवान की शरण में आकर हीन चरित्र वाले व्यक्ति का भी उद्धार हो जाता है। ये आठों भक्त कवि विभिन्न जातियों औंर वर्गों के थे। अतः परम भगवदीय पद पाने वाले अष्टछाप के ये

कवि साधारण कोटि के मनुष्य होने के साथ ही सहज मानवीय दुर्बलताओं से भी युक्त थे किन्तु अपने गुरु वल्लभाचार्य और तद्पुत्र विट्ठलनाथ जी की असीम कृपा से श्री नाथ जी प्रभु के अनन्य व अन्तरंग सेवक बन गए।

विट्ठलनाथ जी ने सम्प्रदाय हेतु ब्रज में स्थायी निवास किया तथा श्री नाथ जी मंदिर में सेवा व्यवस्था का क्रम निश्चित किया, दैनिक आठ सेवाओं तथा वार्षिक व्रतोत्सव की व्यवस्था की, सम्प्रदाय हेतु संगीत, साहित्य और ललित कलाओं का अपूर्व समन्वय कर अपने आराध्य को समर्पित किया। इन आठों भक्त कवियों ने गुरु कृपा से साक्षात् श्री कृष्ण की लीलाओं की अनुभूति कर उसे सुन्दर पदों में रचित किया। ये आठों महानुभाव व्यक्ति पहले भक्त थे कवि बाद में क्योंकि इनकी समस्त काव्य रचना अपने आराध्य को रिझाने के लिए उन्हें प्रसन्न करने के लिए की गई थी। ये आठों भक्त कवि प्रतिदिन श्री नाथ जी की सेवा में उपस्थित हो कर अपनी ओरं से उनकी झाँखियों में कीर्तन सेवा किया करते थे। इन आठों कीर्तनकारों के साथ आठ सहकारी कीर्तनकार भी थे जो कीर्तन में उन्हें सहयोग देते थे तथा अवकास के समय में अष्टछाप के कीर्तन लिख लिया करते थे।

साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार ये आठों भक्त कवि श्री नाथ जी के अष्ट सखा है। जो दिन में सखा रूप में बन लीला का आनंद प्राप्त करते हैं और रात्रि में सखी रूप में श्री नाथ जी और स्वामिनी जी के साथ निकुन्ज लीला सुखानुभव करते हैं। इन अष्टछाप के अष्ट सखा – अष्ट सखी रूप के नाम इस प्रकार हैं –

| | | **सखा रूप** | | **सखी रूप** |
|---|---|---|---|---|
| कुम्भनदास | – | अर्जुन | – | विशाखा |
| सूरदास | – | कृष्ण | – | चम्पक लता |
| परमानंद दास | – | तोष | – | चन्द्र भागा |
| कृष्णदास | – | ऋषभ | – | ललिता |
| गोविन्द दास | – | श्री दामा | – | भामा |
| नंद दास | – | भोज | – | चन्द्र लेखा |

चतुर्भुज दास – विशाल – विमला

छीत स्वामी – सुबल – पद्मा

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

इन आठों भक्त कवियों ने प्रत्यक्ष तो पुष्टिमार्ग या शुद्धाद्वैत दर्शन का कहीं विवेचन नहीं किया। किन्तु सम्प्रदाय के मर्म को अपने गुरु ज्ञान द्वारा हृदयंगम जरूर किया था। लोक भाषा ब्रज भाषा में पुष्टिमार्गीय भक्ति को जन जन तक पहुँचाने का कार्य इन अष्टछाप कवियों ने अवश्य किया। इन अष्टछाप कवियों को संगीत शास्त्र का गहन ज्ञान था। इनके विभिन्न राग–रागिनियों में रचे पद आज भी संगीत कला में अद्वितीय हैं। अपने समय के ये प्रख्यात संगीतज्ञ थे। ये कवि अपनी प्रतिभा के बल पर सर्वत्र विख्यात और सम्मानित हो चुके थे। इन कवियों का कीर्तन सुनने के लिए सम्राट अकबर, राजा बीरबल, तानसेन, राजा मानसिंह, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश जैसे महानुभाव आते थे। इन कवियों की वाणी का माधुर्य आज भी सुनने वालों को अन्दर से भाव विभोर कर देता है।

विट्ठलनाथ जी द्वारा सम्प्रदाय के हित में की गई अष्ठछाप की स्थापना, कालान्तर में साहित्य और संगीत के क्षेत्र में अविस्मरणीय घटना बन कर रह गई। विद्वानों के मतानुसार यदि हिन्दी साहित्य में से अष्टछाप का साहित्य निकाल दिया जाए तो शेष पर गर्व नहीं किया जा सकता है। पुष्टिमार्गीय मंदिरों में आज भी इन अष्टछाप कवियों के पदों का कीर्तन निश्चित समयानुसार विभिन्न दर्शनों में किया जाता हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा हैं – 'अष्टछाप के कवियों का हिन्दी साहित्य के लिए बहुत ही महत्व है। उत्तर भारत के लोक मानस से निर्गुण की परम्परा हटाकर उनमें सगुण भावों के प्रति आस्था भरने का बहुत अधिक श्रेय अष्टछाप के महामान्य कवियों को है।'[३१] आचार्य रामुचन्द्र शुक्ल का कहना है – 'आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्री कृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन कर उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूर की वीणा कि था।'[३२]

श्री ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में कहें तो – 'इन कवियों का अधिक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इन्होंने जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में मानवता के नवीन मूल्यों की स्थापना की तथा मनुष्य का ध्यान पार्थिवता व लौकिकता से हटाकर नहीं अपितु उसका उचित उपभोग करके, उसके प्रति एक तटस्थता तथा निरपेक्षता का दृष्टिकोण बनाकर उसके परे जो सत्य और सुन्दर है, उस ओर लगा दिया। मनुष्य की सौन्दर्य वृत्ति न तो दमनीय है न उपेक्षणीय, इस सत्य का प्रमाण स्वयं अष्टछाप कवियों की जीवन गाथाएँ हैं।'

अन्तः इतना ही कहूँगी कि अष्टछाप भक्त कवि अपने आप में अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे जो आज भी यथावत् रूप से विद्यामान है चाहे साहित्य क्षेत्र में हो, संगीत क्षेत्र में हो या साम्प्रदायिक क्षेत्र में। अष्टछाप की काव्य कला देन आज विश्व में अपना सर्वोच्च स्थान रखती है जो भारतीय संस्कृति के लिए दिव्य वरदान है।

******

## :: संदर्भ सूची ::


१. वार्ता साहित्य के अनुसार सम्राट अकबर कि इच्छानुसार विठ्ठलनाथ जी ने सूरत के एक साहूकार की पुत्रवधू का न्याय बड़ी कुशलतापूर्वक किया था इस कारण सम्राट अकबर ने विठ्ठलनाथ जी को गोसाँई का पद तथा न्यायाधीश का अधिकार देकर सम्मानित किया था।
हीरक जयंती परिशिष्टांक
(वल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी का महत्व–१४७)
लेखक : विठ्ठल परीख

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय–(।)–७९, लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

३. देखिए कीर्तन साहित्य (अध्याय–३)

४. पूरवोक्त मुस्लमानी शासन काल में ध्वस्त हुए हिन्दू मंदिरों की अमूल्य संगीत धरोहर को विठ्ठलनाथ जी ने अष्टछाप के स्वरूप में फिर से जीवित किया और सम्प्रदाय में शास्त्रीय संगीत का स्थान मजबूत किया।
हीरक जयंती परिशिष्टांग
(वल्लभ सम्प्रदाय में विठ्ठलनाथ जी का महत्व–१५०) लेखक : विठ्ठल परीख

५. अष्टछाप परिचय–४०, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

६. हीरक जयंती ग्रन्थ–
(वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–५२),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

७. हीरक जयंती ग्रन्थ– (वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–५७),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

८. हीरक जयंती ग्रन्थ
(वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–५७),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

९. वल्लभाचार्य–विट्ठलनाथ जी–(द्वितीय पुत्र)–गोविन्द राय जी – कल्याणराय जी –हरिराय जी

१०. शिक्षा पत्र संख्या ४१ है इसमें ६१३ श्लोक है।

११, १२, गोस्वामी हरिराय जी और उनका ब्रज भाषा साहित्य–३४७, ३४९
लेखक : विष्णु विराट् चतुर्वेदी

१३. हीरक जयंती ग्रन्थ (वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–६६),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

१४. कुम्भनदास की मृत्यु के पर्यन्त विट्ठलनाथ जी ने कहा था 'ऐसे भगवदी अन्तर्ध्यान हो गए। अब पृथ्वी पर भगवद् भक्तों का तिरोधान होने लगा हैं।'
– वार्ता साहित्य

१५. हिन्दी साहित्य का इतिहास– १७२
लेखक : रामचन्द्र शुक्ल

१६. अपनी ३१ वर्ष की अवस्था तक सूर गऊघाट पर रहे।
यहाँ पर रहते हुए उन्होंने संगीत, काव्य एवं गायन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और शास्त्र पुराणदि विविध ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन किया।
अष्टछाप परिचय–१३५
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

१७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय– (१)– २०३
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

१८. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय– (१)– २०५
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

१९. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय– (१)– २०९
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता
+ अष्टछाप परिचय–१४०
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२०. अष्टछाप परिचय – १७७,
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२१ + अष्टछाप परिचय – १७९
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
+ हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) – ७७,
नागरी प्रचारणी सभा
+ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।)–२२२
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

२२, २३ + अष्टछाप परिचय – १८०,
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
+ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।)–२३०/२२८
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

२४. कृष्ण दास के विवाह या गृहस्थ जीवन का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

२५. + अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।)–२६३
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता
+ हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) – ८७,
नागरी प्रचारणी सभा

२६. अष्टछाप परिचय – २२५
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२७. गोविन्द दास की बहिन कान बाई भी उनके साथ रहती थई जो विट्ठलनाथ जी की शिष्या थी। – वार्ता साहित्य

२८. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) – ९९,
नागरी प्रचारणी सभा

२९. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास – (५) – १०५, नागरी प्रचारणी सभा

३०. जैसे छीत स्वामी, नंद दास।

३१, ३२, अष्टछाप स्मृतिग्रन्थ – ३५,
साहित्य मण्डल, नाथद्वारा

******

Chap-6

## षष्ठ अध्याय :

# पुष्टिमार्गीय हिन्दी कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन

## १. पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी गद्य कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन :-

### १. पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी गद्य कृति ::

पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी गद्य कृतियों मे 'वार्ता साहित्य' का नाम पहले आता है.। विद्वानों ने पुष्टिंमार्गीय गद्य साहित्य पर अनेक संशोधन कार्य किए हैं जिसके फल स्वरूप आज हम वार्ता साहित्य के साहित्यिक रूप को देख पाते हैं। 'आज से ५०० वर्ष पहले गद्य और पद्य पर ब्रज भाषा का अधिकार था तथा हिन्दी भाषा के रूप में ब्रज भाषा का अधिक प्रचार था। अनुसंधान कर्ताओं का विशेष ध्यान ब्रज भाषा गद्य पर ज्यादा रहा। हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि ब्रज भाषा का प्रौढ़ और सुव्यवस्थित गधात्मक स्वरूप सर्व प्रथम इसी वार्ता साहित्य में प्राप्त होता है। इसकी दो विशेषताएँ हैं – एक तो इसमें प्राचीन महाकवियों की जीवनी का दर्शन होता है तथा दूसरा इन कवियों का साहित्य इसी भाषा में प्राप्त होता हैं।'[१]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है वल्लभाचार्य ने अपने भक्तों को ब्रज भाषा में कृष्णलीला गान करने की प्रेरणा दी थी। वल्लभाचार्य के पश्चात् अन्य पुष्टिमार्गीय आचार्यो विट्ठलनाथ जी, गोकुलनाथ जी, हरिराय जी ने भी ब्रज भाषा हिन्दी को अत्यधिक समृद्ध बनाया और स्वयं तो साहित्य सृजन किया ही, साथ ही अपने शिष्यों – भक्तों को भी प्रेरित किया। यहां तक कि भगवद् सेवा में भी संस्कृत के श्लोकों या वेद मंत्रों के स्थान पर ब्रज भाषा के पदों का गान किया जाने लगा।

विद्वानों के मतानुसार मुख्य पुष्टिमार्गीय ब्रज भाषा गद्य साहित्य में वार्ता साहित्य है, जिससे जुड़ा भावना साहित्य है टीका साहित्य, वचनामृत साहित्य, बैठक चरित्र आदि भी है।

वार्ता साहित्य में वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ जी के अनुयायी भक्तों से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं का संकलन है, साथ ही वल्लभाचार्य जी का जीवन चरित्र, श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता आदि का संकलन भी है। जो ब्रज भाषा हिन्दी के प्राचीन गद्य के नमूने के रूप में हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

## २. ब्रज भाषा हिन्दी का साहित्यिक मूल्यांकन ::

वास्तव में ब्रज बोली है जिसके साहित्यिक महत्व के कारण उसे 'ब्रज भाषा' शब्द का प्रयोग कर सम्मानित किया गया है। विद्वानों के मतानुसार हिन्दी की सभी बोलियों की अपेक्षा ब्रज भाषा में सबसे अधिक साहित्य है जिसका मुख्य कारण है वैष्णव आचार्यों का सम्पूर्ण समर्थन, जो भगवान् श्री कृष्ण की भाषा'ब्रज भाषा'की श्री वृद्धि करते रहे हैं। श्री कृष्ण भगवान् की भक्ति के कारण ब्रज भाषा का प्रचार दूर-दूर तक हुआ जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, मेवाड़ आदि क्षेत्रों में ब्रज भाषा के मधुर गीतों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। जो आज भी यथावत् है।

वार्ता साहित्य में ब्रज भाषा गद्य का जो रूप है वह दैनिक बोल-चाल की भाषा का है। वार्ता साहित्य में हमें हिन्दी की आधुनिक कहानी का आदि रूप देखने को मिलता है। कहानी का प्राचीन रूप हमें धार्मिक कथाओं में देखने को मिलता है जिसमें धर्म गुरु अपनें सिद्धान्तों का साकार स्वरूप ऐसी वार्ताओं के द्वारा जन- समाज के सामने रखते थे। जिसका असर कथा के कारण शीघ्र ही जन मानस पर होता है।

पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य यधपि धार्मिक व साम्प्रदायिक धरोहर है किन्तु हिन्दी साहित्य की गद्य परम्परा में इस वार्ता साहित्य का अपना एक विशिष्ट व महत्वपूर्ण स्थान है। वार्ता साहित्य विशेषज्ञ श्री द्वारका दास परीख के मतानुसार ब्रज भाषा का सुव्यवस्थित और प्रौढ गधात्मक स्वरूप सर्व प्रथम इस वार्ता

साहित्य में ही प्राप्त होता है। इन वार्ताओं में ब्रज भाषा का सम्पूर्ण रूप उपलब्ध होता है जिसमें ग्रामीण तथा साहित्यिक शब्दों का प्रयोग हुआ है साथ ही संस्कृत तथा अन्य तत्कालीन प्रचलित भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो लोग बोल-चाल के दैनिक क्रम में उपयोग करते थे। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य की वार्ताएँ साहित्यिक दृष्टि से घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, अनुभूति प्रधान, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा धार्मिक आदि अनेक श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं। विद्वानों के मतानुसार वार्ताओं का जो भावनात्मक संस्करण हरिराय जी कृत उपलब्ध है उसमें जातकों की शैली का अंश देखने को मिलता है जिसमें इस जन्म के साथ पूर्व जन्म का हाल जुड़ा हुआ है। इन वार्ताओं में व्यक्ति के जीवन की तीन जन्म की कथा दी गई है-शरण में आने से पहले (आधिभौतिक), शरण में आने के बाद (आध्यात्मिक) तथा मूलभूत आत्म रूप जन्म (आधि दैविक)।

इस वार्ता साहित्य में कई कवियों, भक्तों, महानुभावों के जीवन वृत तथा ग्रन्थों आदि का भी पता चलता है जिसमें उनके जीवन चरित्र की कड़ीया मिलती हैं। यधपि ये सब पुष्टिमार्ग के धार्मिक रंग में रंगा हुआ ही प्राप्त होता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के जीवनी परक साहित्य का आदि रूप इन वार्ताओं में देखने को मिलता है। तथापि शुद्ध जीवनियों का इनमें अभाव है।

इन वार्ताओं में व्यंग होता है जो सुनने वाले को चोट के साथ सीख देता है। वार्ता में साम्प्रदायिक उपदेश के द्वारा मानवता की दृढ नींव डाली गई है जो मनुष्य, सभ्यता, संस्कृति तथा लोक व्यवहार के सम्बन्ध के प्रतिबिम्ब सा प्रतीत होता है। यह पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य ब्रज भाषा हिन्दी गद्य के ग्रन्थ हैं जिनमें चरित्र प्रसंगों के साथ-साथ पुष्टि सम्प्रदाय का प्रारम्भिक इतिहास तथा हिन्दी के मध्यकालीन धार्मिक इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है।

वार्ता साहित्य जन साहित्य है इसमें जन जीवन की ऊँची-नीच सभी श्रेणियों का वर्णन है। जब अधिकांश साहित्य पध में रचा जा रहा था तब यह हिन्दी ब्रज भाषा साहित्य गद्य रूप में, वह भी जनता की बोली में लिखा गया जो

अधिक स्वाभाविक और जीवन के निकट रहा है। इन वार्ताओं में तत्कालीन समाज, रीति–रिवाज, धार्मिक–भौगोलिक वर्णन तथा प्रान्तीय वातावरण एवं भाषा का रूप देखने को मिलता है।

इन वार्ताओं में पुष्टि सम्प्रदाय का सम्पूर्ण स्वरूप देखने को मिलता है जैसे भगवद् स्वरूपों के प्राकट्य की कथा, सेवा का प्रकार, आचार्यों का महत्व, भक्तों की अगाध भक्ति आदि। इन वार्ताओं को लोक भाषा में लिखने का तात्पर्य यही था कि इन वार्ताओं से जन समाज को पुष्टि सम्प्रदाय का बोध मिले। विद्वानों के मतानुसार इन वार्ताओं में वर्णित कई घटनाएँ सत्य व ऐतिहासिक महत्व रखती हैं।

अतः साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है और समाज साहित्य का प्रतिबिम्ब होता है। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग ने ब्रज भाषा हिन्दी को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिसे हिन्दी साहित्य का इतिहास सदैव याद रखेगा। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य का साहित्यिक महत्व उसकी ब्रज भाषा शैली, लेखन का ढंग, जीवन वृत की सामग्री के संबन्ध में मिलता है। मुख्यतः सभी विद्वान इतिहासकारों ने इन वार्ताओं को ब्रज भाषा हिन्दी के उत्कृष्ट गध का नमूना माना है।

## २. पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी पद्य कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन :-

### १. पुष्टिमार्गीय मुख्य हिन्दी पद्य कृति ::

पुष्टिमार्गीय हिन्दी पद्य साहित्य में मुख्य रूप से अष्टछाप कवियों का काव्य आता है जो हिन्दी साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखता है। अष्टछाप कवियों का काव्य भक्ति भाव से पूर्ण अपने आराध्य भगवान् श्री कृष्ण की ब्रज लीलाओं का गान है। जिसमें मुख्यतः वात्सल्य, साख्य, माधुर्य और दास्य भावों की रस धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है। विद्वानों के मतानुसार सभी भाषाओं में काव्य अधिकतर धार्मिक परिवेश में ही जन्मा, पला और पुष्पित हुआ है। अतः हिन्दी काव्य का सर्वांगीण विकास भी धर्म से जुड़ा हुआ है।

अष्टछाप के पूर्ववर्ती कवि गण जैसे जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास ने क्रमशः संस्कृत, मैथील और बंग भाषाओं में कृष्ण चरित्र का गान किया था किन्तु भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों की रचनाएँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अष्टछाप में मुख्यतः सूरदास ने अपने कृष्ण काव्य में नई मौलिक उद्भावनाओं को जन्म दिया, जिसका अनुकरण समकालीन सहयोगियों ने तथा परवर्ती कवियों ने भी किया।

'जयदेव के काव्य में संगीत लहरी और कोमल कान्त पदावली का गौरव तो है, किन्तु इसमें सूरदास की सी कथन की विविधता नहीं है। विद्यापति ने राधा कृष्ण को केवल नायिका–नायक के रूप में चित्रित कर विलासिता को अधिक प्रश्रय दिया है। वे सूरदास की तरह राधा–कृष्ण को अलौकिक धरातल पर स्थापित नहीं कर सके हैं। चंडीदास के काव्य में राधा–कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का दर्शन तो होता है, किन्तु इसमें सूरदास की सी लीला–भावना का अभाव है।'[२]

अष्टछाप कवियों का काव्य अपने प्रभु श्री कृष्ण की तल्लीनता की अवस्था के हर्षाश्रु का परिणाम है जो हिन्दी साहित्य जगत् की अनुपम सम्पति कहा जा सकता है। अतः ये अष्टछाप महानुभाव भक्त पहले हैं कवि बाद में।

इन अष्टछाप कवियों का समस्त काव्य 'ब्रज भाषा' में है। इन अष्टछाप कवियों ने ब्रज भाषा को शब्द भण्डार दिया, छन्द दिए, अलंकार दिए, एक जागरूक कल्पना दी, अभिव्यक्ति को अभिव्यंजना दी, जिससें आधुनिक युग तक अनेक विद्वानों ने प्रेरणा लेकर अपने शोध ग्रन्थ प्रस्तुत किए। ब्रज बोली को साहित्यिक ब्रज भाषा के रूप में शक्ति प्रदान करने का कार्य वास्तव में इन अष्टछाप कवियों ने किया। भाषा, भाव, विषय और शैली की दृष्टि से इन अष्टछाप कवियों की रचनाएँ एक सी प्रतीत होती हैं। किन्तु अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन सबका अपना पृथक–पृथक व्यक्तित्व व महत्व है। जिस भक्त की मानसिक वृति जिस लीला में रची है उसी का उसने अपने काव्य में तन्मयता के

साथ चित्रण  किया है। इसीलिए डॉ. श्री सोमनाथ गुप्त ने कहा है–'कृष्ण मंदिर के इन पुजारियों के क़ाव्य में एक बड़ी भारी विशेषता है उनका काव्य विश्व काव्य है। इनका प्रत्येक शब्द उठकर ताल देकर कृष्ण का चरित्र गा रहा है। परन्तु उस गान में एक अनोखापन है। बाल कृष्ण के शैशव में, श्री कृष्ण के मचलने में, यशोदा मैया के दुलार में हम विश्व व्यापी माता पुत्र का प्रेम देखते है। राधा और कृष्ण के मिलन में, ईश्वरोन्मुख प्रेम की कल्पना है। गोपियों के विलाप और क्रन्दन में मनुष्य जाति के अन्तरस्थ करुण भाव के रस की व्यंजना है। उन्होंने बाल कृष्ण के चरित्र में आदर्श हिन्दू गृहस्थ की भावना ही प्रकट की है। समाज से सम्बन्ध रखने वाली बडी समस्याओं वर्ण विभाग आदि की ओर ये नहीं जाते। जा भी नहीं सकते–'हरि को भंजे सो हरि का होई' ये सब होते हुए भी ये कवि अपने क्षेत्र के सम्राट हैं सर्वोत्कृष्ट महारथी हैं–विश्व कवि हैं।'[3] अपनी काव्य रचनाओं में प्रेम की बहुरूपणी अवस्थाओं का जो चित्र इन अष्टछाप कवियों ने प्रस्तुत किया है वह वास्तव में अद्भुत है। इन अष्टछाप कवियों के काव्य में हृदय को स्पर्श करने वाली द्रावक शक्ति है। इन आठों कवियों ने समान रूप से प्रेम भाव का ही चित्रण अपने काव्य में किया है।

विद्वानों के मतानुसार अष्टछाप का काव्य मुक्तक काव्य है और यह काव्य गेय होने के कारण गीति काव्य के अन्तर्गत आता है। अष्टछाप के काव्य में शब्दों की सजावट, भावों की अभिव्यक्ति और ताल स्वरों की संयोजना बड़ी अनुपम है। पुष्टिमार्ग की सेवा भावना के अनुसार सभी अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण की बाल लीला का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। वात्सल्य रस से पूर्ण कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का वर्णन संयोग–वियोग दोनों पक्षों में इन कवियों ने किया है। बाल कृष्ण की क्रीड़ाओं में नंद–यशोदा के सुखानुभव में संयोग पक्ष का निरूपण हुआ है तो कृष्ण के मथुरा गमन पर नंद–यशोदा के विलाप में वियोग पक्ष का वर्णन हुआ है।

'महामुनि भरत ने शृंगार रस के व्यापक महत्व का वर्णन किया है। उनके मतानुसार जगत् में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्वल और दर्शनीय है वह सब शृंगार रस के अन्तर्गत है। इसी दृष्टिकोण से अष्टछाप के कवियों ने अपनी शृंगार रस पूर्ण रचनाएँ की हैं। इन् रचनाओं से इनका अभिप्राय अपने इष्ट देव की भक्ति भावना का प्रदर्शन करना था।'[४] शृंगार रस के भी दो प्रकार है–संयोग और वियोग पक्ष। संयोग शृंगार में समस्त स्त्री पुरुष के रति भाव का वर्णन मिलता है। अष्टछाप के कवियों ने राधा–कृष्ण के पारस्परिक अनुराग के क्रमिक विकास, उनके संयोग एव वियोग की अनेक चेष्टाओं तथा उनके मान, उपालम्भ, मिलन आदि का वर्णन किया है। अष्टछाप के भक्त कवियों ने काल, अवस्था और परिस्थिति के अनुसार राधा–कृष्ण की रूप माधुरी के अनेक शब्द चित्र अंकित किए हैं। इन अष्टछाप कवियों ने प्रिया–प्रियतम के विहार विषयक विविध प्रसंगों का मनोहर वर्णन किया है.। गोपियों के विरंह वर्णन में वियोग की समस्त दशाओं का मूर्तिमान स्वरूप दिखलाया गया है–'भ्रमर गीत' (भँवर गीत) इसी प्रकार की रचना है। सूर ने तीन भ्रमर गीतों की रचना की है जिनमें से एक भागवत का अनुवाद है और दो उनकी मौलिक रचनाएँ है। नंददास का भ्रमर गीत कथोपकथन की मनोरंजकता, शब्दों की सजावट, संगीत की झंकार और वाक् चातुरी के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। अपने काव्य के माध्यम से समग्र साहित्य जगत को भ्रमर गीत परम्परा इन अष्टछाप कवियों ने प्रदान की है। सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा तथा निर्गुण का खण्डन भ्रमर गीत की विशेषता है।

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है। और विद्वानों ने अष्टछाप काव्य को रसों का निचोड़ कहा है। अष्टछाप कवियों ने मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है। अष्टछाप कवियों ने अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिस्योक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

प्रभु दयाल मीत्तल के मतानुसार 'सूरदास, परमानंददास और नंददास की रचनाएँ काव्य परिमाण और काव्य महत्व दोनों दृष्टियों से बढ़ी-चढ़ी हैं। गोविंद दास और छीत स्वामी की रचनाएँ जितने कम परिमाण में मिलती हैं, उतना ही कम उनका काव्य महत्व भी है। कुम्भनदास, कृष्णदास और चतुर्भुजदास की रचनाएँ काव्य परिमाण और काव्य महत्व दोनों दृष्टियों से मध्यम श्रेणी की हैं।'[५]

अन्तः आज भी अष्टछाप का काव्य साहित्य जगत् का स्वर्ण मुकुट है। जो आज भी शिक्षण तथा संगीत क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान यथावत बनाए हुए है।

## २. संक्षिप्त में अष्टछापीय कवियों की मुख्य कृतियों का साहित्यिक विवरण ::

### १. सूरदास –

सूरदास की मुख्य तीन रचनाएँ मानी गई है – सूर सागर, साहित्य लहरी और सूर सारावली।

सूर सागर में वास्तव में श्रीमद् भागवद् के दशम स्कन्ध की कथा विस्तार से दी गई है शेष स्कन्धों की कथा संक्षेप में इति वृत्त के रूप में कह दी गई है। साहित्य लहरी में सूरदास के दृष्टि कूट पदों का संग्रह है। इसका वर्ण्य विषय कई रूपों में व्यक्त राधा-कृष्ण का अनुराग है।

सूर सारावली-सूर सागर की ही सारांश सहित भूमिका है। इसमें भागवत के बारहों स्कन्धों का सार एक साथ दिया गया है।

सूर के काव्य में वात्सल्य भाव, दास्य भाव, समर्पण भाव का रस सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। सूर का काव्य पुष्टिवादी भक्ति का प्रतिपादन करता हुआ सा प्रतीत होता है। अपने काव्य द्वारा सूर ने भारत में वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय संदेश को घर-घर पहुँचाया और जीवन को प्रेम व समर्पण की ओर मोड़ दिया है। सूर का अपने आराध्य श्री कृष्ण के प्रति दास्य भाव सर्वोच्चता के शिखर का स्पर्श करता है। वात्सल्य और श्रृंगार दोनों क्षेत्रों में सूर ने अपना अपूर्व सामर्थ्य दिखाया है-बाल लीला, दान लीला, माखन लीला, चीर हरण लीला, रास लीला

आदि अपने काव्य में भ्रमर गीत परम्परा का आरम्भ कर सूर ने सगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से, हृदय की अनुभूति के आधार पर किया है। सगुण–निर्गुण का यह प्रसंग सूर अपनी ओर से लाए थे। सूर ने काव्य में रूपक, उत्पेक्षा, प्रतीप, दृष्टान्त, अतिस्योक्ति, विभावना, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। सूर ने अपनी काव्य भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी किया है और प्रचलित विदेशी शब्दों को भी स्वीकार किया है। सूर के काव्य में मुहावरों और कहावतों के प्रयोग भी देखने योग्य है–

''मेरी बात गई इन आगैं अबहिं करत बिनुपानी
जे बुनियै सोई पुति लुनियैं
साँची प्रीति जानि मन मोहन तेरहिं हाथ बिकाने
सूर श्याम तेरैं बस राधा कहति लीक में खाँची
चतुराई अंग अंग भरी है पूरन ज्ञान न बुद्धि की मोठी।
फूँकि फूँकि धरनी पग धारौ
तुम ही बडे महर की बेटी कुल जनि नाऊँ धरैहौं।''[६]

लेखक का मत है कि भाषा का जितना सबल भण्डार अंधे सूर के पास है उतना घनानंद को छोड़ कर ब्रज भाषा के अन्य किसी कवि के पास नहीं है।[७]

**उदाहरण पदा**

''अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल !
काम–क्रोध कौ पहिरि चोलाना, कंठ विषय की माला।।
महा मोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल।
भरम भरयौ मन भयौ पखावज, चलन कुसंगत चाल।।
तृस्ना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फैंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दै भाल।।
कोटिक कला काँछ देखराई, जल–थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविधा, दूरि करौ नँदलाल।।''

''मैया ! मैं नहि माखन खायौ।
ख्याल परें ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ।।
देखि तुही छींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।
तुही निरखि नान्हें कर अपनैं मैं कैसें कर पायौ।।
मुख–दधि पोंछ बुद्धि इक कीन्हीं दौना पीठ दुरायौ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा स्यामहि कंठ लगायौ।।
बाल बिनोद मोद मन मोहौ भक्ति–प्रताप दिखायौ।
'सूरदास' यह जसुमति कौ सुख सिव विरंचि नहिं पायौ।।''

''मैया ! मोहि दाऊ बहुत खिजायौं।
मोसों कहत मोल कौ लीनौ, तोहि जसुमति कब जायौ।।
कहा कहों एहि रिस के मारै खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि–पुनि कहत कौन हैं माता, को है तुम्हारौं तातु।
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै–दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर।।
तू मोही कौं मारना सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझैं।
मोहन कौ मुख रिस समेंत लखि, जसुमति सुन–सुन रीझैं।।
सुनहु कान्ह ! बलबद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
'सूर स्याम' मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।।''

''नटवर–भेष धरै ब्रज आवत।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कुटिल अलक मुख पर छवि पावत।
भ्रकुटी बिकट, नैन अति चंचल, यहि छवि पर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खंजन बिवी डरपत, उड़ि न सकत, उड़िनें अकुलावत।।

अधर अनूप मुरलि सुर–पूरत गौरी–राग अलापि बजावत।
सुरभी बृंद गोप–बालक सँग गावत, अति आनंद बढ़ावत।।
कनक–मेखला कटि पीतांबर, नृत्तत, मंद–मंद सुर गावत।
'सूर स्याम' प्रति अंग माधुरी निरखत ब्रज जन के मन भावत।।''

''मेरे कमल नैंन प्रान तैं प्यारे।
इनकौ कौन मधुपुरी बैठत, राम–कृष्ण दोऊ जन बारे।।
जसुदा कहति सुनहु सफलक–सुत ! मैं पय–पान जतन करि पारे।
ए कहा जानहिं सभा राज की, ए गुरुजन विप्रहु न जुहारे।।
मथुरा असुर–समूह बसत हैं, कर कृपान जोधा हत्यारे।
'सूर दास' स्वामी ये लरिका, इन कब देखे मल्ल अखारे।।''

''ऊधौ ! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस–सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं।।
वे सुरभी, वे बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाँचत गहि–गहि बाही।।
ये मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं।।
अनगत भाँति करी बहु लीला, जसुदा–नंद निबाहीं।
'सूर दास' प्रभु रहे मौन हैं, यह कहि–कहि पछिताहीं।।''

''नृत्यत स्याम नाना रंग।
मुकुटि लटकनि भृकुटि मटकनि धरे नटवर अंग।।
चलत गति कटि रुनित किंकिनि घुंघुरु झनकार।
मनों हंस रसाल बानी अरस–परस बिहार।।

लसति कर पहुँची सो पुंजय मुद्रिका अति ज्योति।
भाव सों भुज फिरति जबहीं तबहिं सोभा होति।।
कबहुँ नृत्यत नारि गति पर कबहुँ नृत्यत आप ।
'सूर' के प्रभु रसिक की मनि रच्यौं रास प्रताप।।''

## २. परमानंद दास –

मुख्यतः पुंष्टिमार्ग के कीर्तन संग्रह से मिले पदों का संग्रह कर विद्वानों ने 'परमानंद सागर' ग्रंथ तैयार किया है जो कांकरौली विद्या विभाग से प्रकाशित है।

परमानंद दास ने भी श्री कृष्ण की बाल लीला का सुन्दर वर्णन किया है। परमानंद का काव्य संयोग–वियोगात्मक प्रेम चित काव्य रस की दृष्टि से भी सरस है। परमानंद का काव्य बाल, कान्त और दास भाव की भक्ति से पूर्ण है।

परमानंद ने भी पद रचना में दोहा–चौपाई का प्रयोग किया है। परमानंद ने उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। परमानंद के काव्य की भाषा भावत्मकता, चित्रमयता, सजीवता जैसे गुणों से ओतप्रोत है। भाषा की सजीवता के लिए परमानंद ने मुहावरों का प्रयोग भी किया है।

अन्तः परमानंद दास का काव्य भाव, भाषा, वर्णन सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट जान पड़ता है।

**उदाहरण पद**

''मनिमय आँगन नंद के, खेलत दोऊ भैया।
गौर–स्याम जोरी बनी, बल कुँवर कन्हैया।।
नूपुर, कंकन, किंकिनी, रुनझुन–झुन बाजै।
मोहि रही ब्रज सुंदरी मनसा सुत लाजैं।।
संग–संग जसोमति रोहिनी, हितकारन मैया।
चुटकी दै–दै नचावहीं, सुत जानि कन्हैया।।
नील–पीट पट ओढ़नी, देखत मोहि भावै।

बाल लीला बिनोद सौ, 'परमानंद' गावै।।''

''तेरौ लाल मेरौ माखन खायौ।
घौस दुपहरी देखि घर सून्यौ, ढोरि–ढँढोरि अबहिं घर आयौ।।
खोलि कपाट पैठि मंदिर में, सब दधि अपने सखनि खवायौ।
छीकैं हूँ तें चढ़ि ऊपर पर, अनभावतौ घरनि ढरकायौ।।
दिन–दिन हानि कहाँ लौ सहिए, ए ढोटा जू भले ढँग लायौ।
'परमानंद प्रभु' बहुत बचति हौं, पूत अनैखौ तैं ही जायौं।।''

''मेरौ माई माधौ सों मन लाग्यौ।
मेरे नैंन और कमलनैंन को इकठौरौ करि मान्यौ।।
लोक वेद की कानि तजी मैं, न्यौती अपनैं आन्यौ।
इक गोविंद चरन के कारन, बैर सबन सों ठाम्यौ।।
अब क्यों भिन्न होय मेरी सजनी ! दूध मिल्यौ जैसै पान्यौ।
'परमानंद' मिली गिरधर सों, है पहली पहचान्यौ।।''

''ब्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढे, अति दुर्बल तन हारे।।
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ सकारे।
जो कोउ कान्ह–कान्ह कहि बोलत, अँखियन बहत पनारे।।
ये मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे।
'परमानंद स्वामी' बिन ऐसै, जैसे चंदा बिंतु तारे।।''

''कौन बेर भाई चलैरी गोपालै।
हौं ननसार गई ही न्यौते, बार–बार बोलत ब्रज बालै।।

तेरौ तन कौ रूप कहाँ गयौ भामिनि ! अरु मुख कमल सुखाय रहौ।
सब सौभाग्य गयौ हरि के सँग, हृदय सों कमल बिरह दहौ।।
को बोलै, को नैंन उघारै, को प्रति–उत्तर देहि बिकल मन।
जो सर्वस्व अक्रूर चरायौ, 'परमानंद स्वामी' जीवन धन।।''

''कहा करौं बैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहीं नंद, जहाँ न जसोदा, जहाँ नहीं गोपी–ग्वाल, न गाय।।
जहाँ नहीं जल जमुना कौ निर्मल और नहीं कदमन की छाय।
'परमानंद प्रभु' चतुर ग्वालिनी, ब्रज–रज तजि मेरी जाय बलाय।।''

३. **कुम्भनदास –**

कुम्भनदास के केवल फुटकल पद ही मिलते हैं जो पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह में सुरक्षित हैं। कुम्भनदास ने विशष रूप से राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप के पद ही गाए हैं। इन पदों मे मधुर भक्ति का भाव विध्यमान है।

विद्वानों ने कुम्भनदास का काव्य साधारण श्रेणी का माना है किन्तु उसमें सरसता और भक्ति भावना की प्रचुरता है।

**उदाहरण पद**

''आवत मोहन मन जु हरयौ हौ।
हौं गृह अपनें सचु सों बैठी, निरखि बदन अस्वरा बिसरयौ हौ।।
रूप निधान रसिक नँदनंदन, निरखि बदन धीरज न धरयौ हौ।
'कुम्भनदास प्रभु' गोवर्धनदास, अँग–अँग प्रेम–पियूष भरयौ हौ।।''

''देखौ री माई कैसी है ग्वालनि उलटी रई मथनिया बिलोवै।
बिनु नैंना कर चंचल पुनि–पुनि नवनीतै टकटोवै।।
निरखि स्वरूप चोहटि चित लाग्यौ एकै टक गिरधर मुख जोवै।

'कुम्भनदास' चितै रही अकबक औरें भाजन धोवै ।।''

''गाय खिलावत स्याम सुजान।
कूँकें ग्वाल टेरि दै ही–ही, बाजत बेंनु बिषान ।।
कियौ सिगाँऱ घेंनु सगरिनि कौ, को करि–करि सकै बखान।
फिर–फिर फिरत पूँछ उन्नत कै, करि–करि सूधे कान ।।
पाँइ पेंजनी, म्हेंदी राजति, पींठि पुरट के पान।
'कुम्भनदास' खेली गिरधर पै, जिहि विधि उठी उठान ।।''

''हमारौ दान देउ गुजरेटी।
बहुत दिना चोरी दधि बेच्यौ आजु अचानक भेटी ।।
अति सतराति कहा करि हौ तुम बडे गोप की बेटी।
'कुम्भनदास' प्रभु गोवर्धन–धर भुज ओढ़नी लपेटी ।।''

''कृष्न तरनि–तनया तीर रास मंडल रच्यौ,
अधर कल मुरलिका वेणु बाजैं।
जुवती जन जूथ संग, निर्तत अनेक रंग,
निरखि अभिमान तजि कामा लाजैं ।।
स्याम तन पीत कौसेय शुभ पद नखनि,
चंद्रिका सकल कलिमल हर भुव भाजैं।
ललिता अवतंस संभु धनुष लोचन चपल,
चितवनि मानों मदन–वान साजैं ।।
मुखर मंजीर कटि–किंकिनी कुनित रव,
वचन गँभीर जनु मेघ गाजैं।
दास 'कुम्भनदास' कुम्भ दास हरिदास वय,

घरनि नख–सिख स्वरूप अद्भुत विराजैं।।''

४. नंद दास –

विद्वानों के मतानुसार नंद दास की समस्त रचनाओं में भ्रमरगीत और रास पंचाध्यायी विशेष प्रसिद्ध है।

नंद दास के काव्य की दो विशेषताएँ मुख्य हैं–भाषा की मधुरता और शब्दों की सजावट। मुहावरों, कहावतों तथा ब्रज भाषा के ठेठ शब्दों का प्रयोग नंद दास ने अपने काव्य में किया है। नंद दास ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, स्मरण, दृष्टान्त, अतिस्योक्ति आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। नंद दास की काव्य कृतियों में पद तथा दोहा, चौपाई, रोला आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। नंद दास काव्य शास्त्र के ज्ञाता, संस्कृत भाषा के पंडित तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्त के आचार्य थे इसका परिचय नंद दास की रचनाओं से मिलता है।

रास–पंचाध्यायी में श्री कृष्ण–गोपियों की रस लीला संबंधि वर्णन है। भ्रमर गीत में गोपी–उद्धव संवाद है जिसमें गोपियों के प्रेमा भक्ति सगुण ब्रह्म का तथा उद्धव के ज्ञान, योग और कर्म मार्ग के साथ निर्गुण ब्रह्म का वर्णन है। यहाँ सगुण–निर्गुण के विवाद में अन्त में सगुण की, गोपियों की विजय बताई गई है।

प्रभु दयाल मीत्तल का कथन है–'भाषा की कोमलता, शब्दों की सजावट और भावों की सरसता के साथ साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की पुष्टि इन रचनाओं में ऐसी सफलता के साथ हुई है कि वे ब्रज भाषा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इनमें धार्मिकता और साहित्यिकता का सम्मिश्रण गंगा–यमुना के मिश्रित प्रवाह की तरह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।'[८]

**उदाहण पद**

''जगावति अपने सुत कों रानी।
उठो मेरे लाल मनोहर सुंदर, कहि–कहि मधुरी बानी।।
माखन, मिश्री और मिठाई, दूध मलाई आनी।

छगन–मगन तुम करहु कलेऊ, मेरे सब सुख दानी।।
जननि बचनं सुनि तुरत उठे हरि, कहत बात तुतरानी।
'नंददास' कीन्हौ बलिहारी, जसुमति मन हरषानी।।''

''कान्ह कुँवर के कर–पल्लव पर मानों गोवर्धन नृत्य करै।
ज्यों–ज्यों तान उठत मुरली की, त्यों–त्यों लालन अधर धरै।।
मेघ मृदंगी मृदंग बजावत, दामिनि दमक मानों दीप जरै।
ग्वाल ताल दै नीके गावत, गायन के सँग सुर जु भरै।।
देत असीस सकल गोपी–जन, वरषा कौ जल अमित झरै।
अति अद्‌भुत अवसर गिरिधर कौ, 'नंददास' के दुःख हरै।।''

''देखो–देखो री नागर नट, निर्तत कालिंदी तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकुट लटक।
काछनी किंकिनी कटि, पीतांबर की चटक,
कुंडल की रति, रवि रथ की अटक।।
ततथेई, ताताथेई सबद करन उघट,
उरप–तिरप गति, परै पग की पटक।
रास में राधे–राधे, मुरली में एक रट,
'नंददास' गावै, तहँ निपट निकट।।''

''जो गिरि रुचै तो बसौ श्री गोवर्धन, ग्राम रुचै तो बसौ नंदगाम।
नगर रुचै तो बसौ श्री मधुपुरी सोभा सागर अति अभिराम।।
सरिता रुचै तो बसौ श्री यमुना तट, सकल मनोरथ पूरन काम।
'नंददास' काननहिं रुचै तौ, बसौ भूमि वृंदावन धाम।।''

५. **गोविन्द दास –**

गोविन्द दास के रचे पद पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह में मिलते हैं। गोविन्द दास ने गोपी–कृष्ण की किशोर और यौवन लीलाओं का ही वर्णन अधिक किया है। गोविन्द दास ने श्री कृष्ण की बाल लीला, गोचारण, राधा–कृष्ण की कुँज लीला आदि से संबंधित पदों की रचनाएँ की है।

विद्वानों का मत है–गोविन्द दास गायक तो परमोच्च श्रेणी के थे किन्तु उनका काव्य साधारण श्रेणी का है।

**उदाहरण पद**

''प्रात समय उठि जसोमति, दधि मंथन कीन्हों।
प्रेम सहित नवनीत लै, सुत के मुख दीन्हों।।
औटि दूध घैया कियौ, हरि रुचि सों लीन्हों।
मधु मेवा पकवान लै, हरि आगें कीन्हों।।
इहि विधि नित क्रीडा करें, जननी सुख पावै।
'गोविंद प्रभु' आनंद में, आँगन में धावै।।''

''अब हौ या ढोटा तें हारि।
गोरस लेत अटक जब कीनीं, हँसत देत फिर गारी।।
निसि–दिन घर–घर फेरौ करत है, बैलक–जूथ मँझारी।
'गोविंद' बलि, इमि कहति ग्वालिनी, ये बातें कैसें जाता सहारी।।''

''आजु गोपाल रच्यौ है रास, देखत होत जिय हुलास,
नाँचत वृषभान–सुता संग रंगभीने।
गिडि–गिडि तक, थंग–थंग, तत तत तत, थेई–थेई,
गावत केदारौ राग, सरस तान लीने।।
फूले बहु भाँति फूल, परम सुभग जमुना कूल,

मलय पवन बहत गगन, उडुपति गति छीने।
'गोविंद प्रभु' करत केलि, भामिनि रस सिंधु मेलि,
जै–जै सुर सब्द करत, आनंद रस कीने ।।''

''कहा करें बैकुंठहिं जाया।
जहाँ नहीं कुंज–लता, अलि, कोकिल, मंद सुगंध न वायु बहाय ।।
नहीं वहाँ सुनियत स्त्रवनन बंसी धुन, कृष्ण न मूरत अधर लगाय।
सारस हंस मोर नहीं बोलत, तहँ कौ बसिवौ कौन सुहाय ।।
नहीं वहाँ ब्रज, वृंदाबन–बीथिन, गोपी, नंद, जसोदा माय।
'गोविंद प्रभु' गोपी चरनन की, व्रजरज तजि वहाँ जाय बलाय।।''

''ब्रज जन–लोचन ही कौ तारौ।
सुनि जसुमति तेरौ पूत सपूत अति, कुल दीपक उजियारौ ।।
धेंनु चरवन जात दूरि जब, होत भवन अति भारौ।
घोष सँजीवन मूरि हमारौ, छिन इत–उत जिन टारौ ।।
सात धौस गिरिराज धरयौ कर, सात बरस कौ बारौ।
'गोविंद प्रभु' चिरजीवौं रानी ! तेरौ सुत गोप–बंस रखवारौ ।।''

## ६. कृष्ण दास –

मुख्य रूप से कृष्ण दास के रचे फुट कल पद ही मिलते है जो पुष्टिमार्ग के कीर्तन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

कृष्ण दास ने भी राधा–कृष्ण के प्रेम को लेकर शृंगार रस के पद गाए हैं। कृष्ण दास ने राधा–कृष्ण की प्रेम लीला, रास लीला और खंडिता के पदों की रचनाएँ की हैं। कृष्ण दास का काव्य शृंगार –भावना प्रधान है। विद्वानों के मतानुसार कृष्ण दास का काव्य साधारण श्रेणी का है।

**उदाहरण पद**

''भादों सुदि आठैं उजियारी, आनँद की निधि आई।।
रस की रासि, रूप की सीमा, अँग–अँग सुंदरताई।
कोटि बदन वारों मुसिकानि पर, मुख छवि वरनि न जाई।।
पूरन सुख पायौ ब्रज–वासी, नैंनन निरखि सिहाई।
'कृष्णदास' स्वामिन ब्रज प्रगटी, श्री गिरिधर सुखदाई।।''

''वृंदाबन अद्भुत नभ देखियत, बिहरत कान्हर प्यारौ।
गोवर्धनधर स्याम चंद्रमा, जुबतिन–लोचन तारौ।।
सुखद किरन रोमावलि वैभव, उर नव मनिगन हारौ।
ललन जूथ पर भेष विराजत, सुरति स्रमित अनुसारौं।।
ब्रज–जन–नैंन–चकोर मुदित मन, पान करत रसधारौ।
'कृष्णदास' निरखि रजनीकर, जल निधि हुलसौ बारम्बारौ।।''

''परम कृपाल श्री नंद के नंदन, करी कृपा मोहि अपुनौ जानि कै।
मेरे सब अपराध निबारे, श्री वल्लभ की कानि मानि कै।।
श्री जमुनाजल–पान करायौ, कोटिन अध कटवाए प्रान कै।
पुष्टि तुष्टि मन नेम अहर्निसि, 'कृष्णदास' गिरिधरन आन कै।।''

''रास रस गोविंद करत बिहार।
सूर सुता के पुलिन रम्न महँ, फूले कुंद मँदार।।
अद्भुत सत दल निकसति कोमल, मुकुलित कुमुद कछार।
मलय पौन बहै, सरद पूर्णिमा चंद्र मधुप झंकार।।
सुघर राय, संगीत–कला–निधि, मोहन नंद कुमार।
ब्रज भामिनि सँग प्रभुदित नाँचत, तन चर्चित धनसार।।

उभय स्वरूप सुभगता सीमा, कोक–कला सुखसार।
'कृष्णदास' स्वामी गिरिधर पिय, पहिरे रस मय हार।।''

## ७. छीत स्वामी –

छीत स्वामी के रचे स्फुट पद ही पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह में मिलते हैं। इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रज भूमि के प्रति प्रेम व्यंजना भी अच्छी पाई जाती है। इनकी काव्य भाषा सीधी–सरल है। इनका काव्य साधारण कोटि का है।

**उदाहरण पद**

''प्रात भयौ, जागो बल–मोहन सुखदाई।
जननी कहै बार–बार, उठो प्रान के आधार,
मेरे दुखहार, स्यामसुंदर कनहाई।।
दूध, दही, माखन, घृत, मिश्री, मेवा, बदाम,
पकवान भाँति–भाँति, विविध रस मलाई।
'छीत स्वामी' गोवर्धनधरि, लाल भोजन करि,
ग्वालन के संग बन, गोचारन जाई।।''

''राधिका, स्याम सुंदर को प्यारी।
नख–सिख अंग अनूप विराजत, कोटि चंद दुति बारी।।
एक छिन संग न छाँडत मोहन, निरखि–निरखि बलिहारी।
'छीतस्वामी' गिरिधर बस जाके, सो बृषभानु दुलारी।।''

''आयौ रितुराज साज, पंचमी बसंत आज,
मोरे द्रुम अति अच्युत, अब रहे फूली।
बेलि लपटीं तमाल, सेत पीत कुसुम लाल,
उदवत सब स्याम भान, भ्रमर रहे झूली।।

रजनी अति भई स्वच्छ, सरिता सब विमल यच्छ,
उडुगन पति अति प्रकास, बरसत रस मूली।
जती–सती सिद्ध–साध, जित–तित भाजे समाज,
विमल जटिल तपसी भये, मुनि–मन गति भूली।।
जुवति–जूथ करत केलि, स्याम सुख सिंधु मेलि,
लाज लीक दई पेलि, परसि पगन मूली।
बाजत आवंज उपंग, बांसुरी मृदंग चंग,
यह सुख सब छीत निरखि, ईछा भई लूली।।''

''राधिकारमन, गिरिधरन, श्री गोपीनाथ, मदन मोहन, कृष्ण, नटवर, बिहारी।
रासलीला–रसिक, ब्रज–जुवति, प्रानपति सकल दुख हरन, गोप गायन चारी।।
सुखकरन, जग तरन, नंदनंदन नवल, गोपपति, नारी वल्लभ, मुरारी।
छीतस्वामी हरि सकल जीव उद्धार–हित, प्रकट वल्लभ–सदन दनुजहारी।।''

## ८. चतुर्भुज दास –

चतुर्भुज दास के रचे स्फुट पद पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह में मिलते हैं। इन्होंने अपने पदों में कृष्ण जन्म से लेकर गोपी विरह तक की ब्रज लीला का वर्णन किया है। इनकी काव्य भाषा सुव्यवस्थित और सरस है। इनका काव्य साधारण श्रेणी का है।

**उदाहरण पद**

''महा महोत्सव गोकुल ग्राम।
प्रेम मुदित गोपी जस गावत्, लै–लै स्यामसुँदर कौ नाम।।
जहाँ, तहाँ लीला अवगाहत, खरिक खोरि दधि मंथन धाम।
परम कुतूहल निसि अरु वासर, आनंद ही बीतत सब जाम।।
नंद गोप–सुत सब सुखदायक, मोहन मूरति, पूरन काम।

'चतुर्भुज प्रभु' गिरिधर आनँद निधि, नख–सिख रूप सुभग अभिराम।।''

''ग्वालिनि तोहि कहत क्यों आयौ।
मेरौ कान्ह निपट बालक, क्यों चोरी माखन खायौ।।
बूझि, विचार देखि जिय अपने, कहा कहों हौं तोहि।
कंचुकि–बंद तोरै ये कैसैं सौ, समुझि परति नहिं मोहि।।
'चतुर्भुजदास' लाल गिरिधर सों, झूठी कहति बनाय।
मेरौ स्याम सकुच कौ लरिका, पर घर कबहुँ न जाय।।''

''प्यारी भुज ग्रीवा मेलि, नृत्यत पीय सुजान।
मुदित परस्पर, लेत गति में सुगति,
रूप–रासि राधे, गिरधरन गुन–निधान।।
सरस मुरली–धुनि सों मिले सप्त सुर,
रास रंग भीने गावैं और तान बंधान।
'चतुर्भुज प्रभु' स्याम–स्यामा की नटनि देखि,
मोहे खग मृग अरु थकित व्योम विमान।।''

''रतन जटित पिचकारी कर लियें, भरन लाल कों भावै।
चोबा, चंदन, अगर, कुमकुमा, विविध रंग बरसावै।।
कबहुँक कटि पट बाँधि निसंक है, लैंन बलासी धावै।
मानों सरद–चंदमा प्रगट्यौ, ब्रज–मंडल तिमिर नसावै।।
उड़त गुलाल परस्पर आँधी सों, रहौ गगन सब छाई।
'चतुर्भुज प्रभु' गिरधरनलाल छवि, मोपै बरनि न जाई।।''

******

## :: संदर्भ सूची ::


१. वार्ता साहित्य के सन्दर्भ में पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास (शोध प्रबन्ध) – (भूमिका–१)
लोखिका : कोकिलाबेन अम्बाप्रसाद शुक्ल

२. अष्टछाप परिचय – ३३२, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

३. पुष्टि पाथेय–(ब्रज की लोक कलाएँ–३१०), लेखक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

४. अष्टछाप परिचय – ३३६, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

५. अष्टछाप परिचय – ३४८,
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

६. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास – (५) – ७४
– नागरी प्रचारणी सभा

७. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास – (५) – ८१
नागरी प्रचारणी सभा

८. अष्टछाप परिचय – ३१४, ३१८
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल


******

Chap-7

# सप्तम अध्याय

# उपसंहार

अपने शोध के अध्ययन से जो मैंने पाया हैं उसी का निष्कर्ष मैं यहाँ उपसंहार रूप में प्रस्तुत कर रही हूँ।

मानव व्यक्तित्व के विकास की अद्दभुत गाथा हमारी भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर रही है, ज्यों मानव प्रकृति से प्रेरित हुआ त्यों–त्यों वह जीवन के सत्य की खोज में परब्रह्म परमात्मा की ओर अग्रसर हुआ। कालान्तर में आवश्यकता पड़ने पर मानव स्वयम् के अन्तर व बाह्य परिवेश में निरन्तर संशोधन व परिर्वतन करता हुआ मुख्यतः धार्मिक, सामाजिक रूप से आगे बढ़ता रहा है।

## १. प्रथम अध्याय :

अपने शोध अध्ययन के प्रथम अध्याय में पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की परिस्थितियों का अध्ययन करते हुए मैंने पाया कि इस काल में बड़े युगान्तकारी धार्मिक परिवर्तन हुए थे।

इसी काल में कुमारिल भट्टाचार्य और शंकराचार्य जैसे मनुष्यों ने श्रुति–स्मृति–पुराण प्रतिवादित 'हिन्दू धर्म' की नींव डाली थी। जिससे वेदानुकूल भागवत धर्म ने वैष्णव धर्म के नाम से नया कलेवर प्राप्त किया था। इसी काल की सबसे बड़ी घटना थी इस्लाम धर्म के अनुयायी विदेशियों का यहाँ पर आक्रमण करना और बल पूर्वक अपने इस्लामी धर्म का प्रचार करना। मूर्तिपूजा का विरोध करना, हिन्दू धर्म सम्प्रदायों की मूर्तियों को तोड़ना, मंदिर–देवालयों को नष्ट–भ्रष्ट करना। विदेशी मुसलमान शासकों ने जहाँ ब्रज की परम्परागत धार्मिक संस्कृति को समाप्त करने का क्रूरता पूर्ण प्रयास किया था उनकी इसी मज़हबी तानाशाही की चुनौती को वैष्णव धर्माचार्यों और उनके अनुगामी संतों तथा भक्तों ने बड़े साहस एवं धैर्य के साथ स्वीकार किया। इन महानुभाव वैष्णवाचार्यों ने सहृदय,

सहानुभूतिपूर्ण भक्ति मार्ग का निर्देशन किया, जिसके प्रतीक बने राम और कृष्ण। ऐसे धर्माचार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है सर्व श्री रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य, रामानंद, वल्लभाचार्य, चैतन्य देव, हित हरिवंश, स्वामी हरिदास के नाम विशेष उल्लेखनीय है। राधा–कृष्ण की विविध ब्रज लीलाओं के साथ ही साथ रामोपासक रामानंदी सम्प्रदाय भी यहाँ फला–फूला।

अपने शोध अध्ययन से मैंने पाया कि इन सभी महात्माओं की अलौकिक क्षमावृति और मानव मात्र के प्रति उनकी समदृष्टि की भावना ने तत्कालीन ब्रज वासियों का मनोबल सुदृढ़ कर उनकी धार्मिक आस्था को जगाया। परिणामतः देश के कोने–कोने से अनेक कष्ट व कठिनाइयों का सामना कर लोग ब्रज की यात्रा को आने लगे और ब्रज में निवास करने लगे। ब्रज के इन सभी धर्म सम्प्रदायों और मतान्तरों का यथा सम्भव संक्षिप्त वृतान्त इस अध्याय में देने का मैंने प्रयास किया है।

अपने उपरोक्त अध्ययन से मैंने स्थापित किया है कि अपने युग विशेष के श्रेष्ठ भक्ताचार्य, दार्शनिक धर्माचार्य 'वल्लभाचार्य' अपने सभी पूर्व व तत्कालीन महात्माओं से अधिक आगे रहे हैं। वल्लभाचार्य ने अपने जीवन काल का आधे से अधिक भाग पृथ्वी परिक्रमा कर, समाज और जन–जीवन के जागरण में लगा दिया था। तत्कालीन सुलतान सिकंदर लोदी के अमानवीय आदेशों के विरूद्ध वल्लभाचार्य ने अहिंसात्मक संघर्ष किया और राजकीय आदेशो की सविनय अवज्ञा कर 'श्री नाथ जी' की सेवा के रूप में मूर्ति पूजा का व्यवधान बनाया, मंदिर निर्माण पर कठोर पाबन्दी होते हुए भी निर्भय होकर पुरनमल खत्री द्वारा गोवर्धन पर श्री नाथ जी का मंदिर बनवाया था। वल्लभाचार्य भगवद् प्रेम संदेश वाहक थे, व्यक्तिगत भक्ति के माध्यम से घर, परिवार को तो ईश्वर का शान्तिमय प्रेम मंदिर बना दिया पर साथ ही समाज और राष्ट्र को भी मंगलमय भगवद् धाम बना दिया। वल्लभाचार्य ने अपने भक्तिमार्ग पुष्टिमार्ग के माध्यम से साधारण जन जीवन, जन मानस के राग–भोग इत्यादि को प्रभु सेवा में नियोजित कर धार्मिक, आत्मिक,

अध्यात्मिक, सामाजिक सभी ओर से सबकी उन्नति की प्रशस्ति की। वल्लभाचार्य वैष्णवाचार्य की परम्परा के अन्तिम आचार्य थे जो अत्यन्त उच्चकोटि के तत्ववेता, धर्म शास्त्र के मर्मज्ञ व्याख्याता व भारत वर्ष के प्रथम पंक्ति के दार्शनिक धुरंधर विद्वानाचार्य थे; जो दार्शनिक क्षेत्र में 'शुद्धा द्वैत वाद' तथा व्यवहारिक क्षेत्र में 'वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग)' नामक प्रेम मय भक्ति सम्प्रदाय द्वारा भारतीय समाज, संस्कृति को नई उज्जवल प्रकाशित दिशा चिरकाल तक दे गए।

अतः यही कहना चाहुँगी कि तत्कालीन सुलतानी तानाशाही के माहौल में, उस काल की विषम धार्मिक परिस्थितियों में भी मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले उपरोक्त सभी महानुभावों के सहृदय साहस व धैर्य की कहा तक प्रशंसा करू।

## २. द्वितीय अध्याय :

अपने शोध अध्ययन के द्वितीय अध्याय में पुष्टिमार्ग का विस्तृत परिचय देते हुए मैंने पाया है कि पुष्टि सम्प्रदाय में पुष्टि–अनुग्रहात्मक आत्मनिवेदन द्वारा प्रेम स्वरूप सगुण भक्ति पर प्रकाश डाला गया है। 'पुष्टि' भगवान की वह शक्ति है जिससे मन, भाव, इन्द्रियादि सब भगवद् पोषण से ही पुष्ट होते है। भारतीय धर्माचार्यो ने कर्म, ज्ञान और भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया है। वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय में भक्ति को प्रधानता दी है। पुष्टिमार्ग युगानुकुल परिस्थितियों में समाज को धारण करने वाला व पोषण देने वाला प्रशस्त मार्ग रहा है। पुष्टिमार्ग प्रेम भावना प्रधान मार्ग है जहाँ भक्ति की प्राप्ति भगवान् के विशेष अनुग्रह से, कृपा से ही सम्भव होती है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के पालन के लिए यह आवश्यक है कि उसके प्रति पूर्ण आस्था और श्रद्धा होनी चाहिए। पुष्टिमार्ग का साधक अपने को भगवान के चरणों में समर्पित कर देता है

और भगवद् अनुग्रह से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध कर लेता है।

पुष्टिमार्ग की शिक्षा है कि सांसारिक राग, भोग और शृंगार की भावना को भगवान की ओर मोड़ के उसका उन्नयन और परिष्कार करें। मनुष्य की भौतिक दुनिया जगत्–संसार है और आध्यात्मिक दुनिया ब्रह्म है। मानव की अपनी मानसिक वृतियों के विकास के द्वारा जगत से ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग पुष्टिमार्ग सगुम व सरल बना देता है। मानव की भौतिक–सांसारिक वासना–की प्रवृति का सहज में भगवद् विनियोग करना पुष्टिमार्ग की अपनी विशिष्टता है। यथा सर्वस्व समर्पित कर पूर्ण शरणागति की भावना ही पुष्टिमार्ग की पुण्य प्रेरणा है जिसने मानव जीवन के यथार्थों को प्रभु सेवा में जोड़ कर मनुष्य को अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति, परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोच्च मार्ग बनाया है। पुष्टिमार्ग के द्वारा अखिल विश्व के सभी प्राणीयों के लिए खुले है। पुष्टिमार्ग का प्रचार जीव मात्र के कल्याण के लिए वल्लभाचार्य द्वारा आरम्भ हुआ था। इन जीवों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, राजा–रक, पुण्यात्म–दुष्यात्मा, सभी वर्ण, वर्ग और प्रकृति विशेष के व्यक्तियों का समावेश होता है। यही नहीं पशु–पक्षी, जीव–जन्तु आदि का भी उद्धार पुष्टिमार्ग में होता है जिसके उदाहरण हमें पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य में मिलते है।

पुष्टिमार्ग में भगवान श्री कृष्ण को परब्रह्म परम आराध्य देव माना गया है। पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप 'श्री नाथ जी' साक्षात् श्री कृष्ण भगवान का स्वरूप माने गऐ है, जिनका प्राकट्य ब्रज के अन्तर्गत गोवर्धन ग्राम की गिरिराज पहाड़ी पर हुआ था। श्री नाथ जी का स्वरूप श्री कृष्ण के गोवर्धन धारण करने के भाव का है, अतः श्री नाथ जी को 'श्री गिरिरारज गोवर्धन नाथ जी' भी कहा जाता है। साथ ही श्री कृष्ण से संबंधिंत गिरिराज, यमुना, अष्टसखा इत्यादि की उपासना भी पुष्टिमार्ग में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

पुष्टिमार्ग में ब्रह्म संबंध की दीक्षा का व्यवधान है। संसार की अहंता–ममता त्याग कर परब्रह्म श्री कृष्ण के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर दीनता पूर्वक उनका अनुग्रह प्राप्त करने को ब्रह्म संबंध कहते है। ब्रह्म संबंध द्वारा सभी जीवों को आत्मा के एक सुत्र में बाँध कर समाज को स्थिर कर सफल शान्ति युक्त तथा सद्भावना मय बनाने का पथ पुष्टिमार्ग की अग्रणी विशेषता है। सभी जाति वर्ण–वर्ग आदि के मनुष्य अपनी–अपनी योग्यता और मानसिकता के आधार पर तनुजा, वितजा व मानसी सेवा करने के अधिकारी है मुस्लिम समाज भी पुष्टिमार्ग में भगवद् सेवा करता है। भारत के विभिन्न भक्ति मार्गों के देवालयों में पूजा का व्यवधान है जबकि पुष्टिमार्ग में सेवा की जाती है। सेवा जो शुद्ध स्नेहात्मक भाव से की जाती हैं, जबकि पूजा शास्त्रोक्त विधि–विधान अनुसार की जाती है। पुष्टिमार्ग में नंदालय की भावना से माता यशोदा के भाव से बालकृष्ण की सेवा की जाती है क्योंकि वात्सल्य भाव सबसे निर्मल और पवित्रभाव माना जाता है। इस भगवद् सेवा के दो क्रम है नित्य सेवा और वर्षोत्सव सेवा। नित्य सेवा में मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती और शयन की आठ झाँकियों का उल्लेख है तथा वर्षोत्सव सेवा में सम्प्रदाय के अन्तर्गत मनाये जाने वाले छः ऋतुओं के उत्सवों की विशेष सेवा का उल्लेख है। श्रृंगार, राग, भोग प्रकार की पुष्टिमार्गीय सेवा गृहस्थ में रहता हुआ व्यक्ति भी अपने परिवार, समाज, राष्ट्र व मानव जाति के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करता हुआ, जीवन मुक्त हो सकता है।

पुष्टिमार्ग ने ललित कलाओं द्वारा भक्ति और अध्यात्म की आराधना का मार्ग प्रशस्त किया है। कला अपने अलौकिक रूप में बिना किसी भेद–भाव के समस्त मानव को समान रूप से सुनाती है। जीवन में जितनी भी कलाएँ है वे उन्ही सौन्दर्य के निधि और रस के समुद्र प्रभु श्री कृष्ण को रिझाने के लिए ही है, अतः पुष्टिमार्ग ने कला के इसी सेवा उपयोगी स्वरूप से भगवान एवं समाज की समान रूप से सेवा करने की प्रेरणा प्रदान की है। पुष्टिमार्गीय कला शैली में मुख्यतः उत्तर भारत (ब्रज), राजस्थान, गुजरातादी अन्य कला शैलियों का मंजुल सामंजस्य

देखने को मिलता है। कालान्तर में गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने श्री नाथ जी की सेवा व्यवस्था की उन्नति के साथ ही साथ सम्प्रदाय के कवियों, गायकों, संगीतज्ञों, वाद्य–विशेषज्ञों, चित्रकारों, पाक शास्त्रियों एवं अन्य कला विद्या का संगठन कर; उनकी कलाओं द्वारा सम्प्रदाय की, मानव मात्र की उन्नति का, भक्ति–आध्यात्म का मनोरम मंगलकारी मार्ग प्रशस्त किया है।

अन्तः यही केहना चाहुँगी पुष्टिमार्ग मानव जीवन की समस्त सत्य–शिव–सुन्दर भावनाओं को भगवान में अर्पित कराकर उनके सदुपयोग करने का मार्ग दिखलाता है। पुष्टिमार्ग कृष्ण प्रेममयी गोपियों का, ब्रजांगनाओं का मार्ग है, गोपियाँ शुद्ध प्रेम की ध्वजा है प्रेम मार्ग की गुरु है। हिन्दू समाज की सुरक्षा, समुत्थान, संस्कृति व सुधर्म के लिए पुष्टिमार्ग की यह अमूल्य देन है जो वस्तुतः अद्वितीय और अपूर्व है। पुष्टिमार्ग द्वारा ही सुख–शान्ति का परम लक्ष्य हमारे आत्म कल्याण का मार्ग है जिसे आज तक भारतीय परम्परा ने अपने आंचल में सम्भाल कर रखा है। वल्लभाचार्य जी की तपस्या और त्याग पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की आधार शिला है, जो विश्व मान्य मानव धर्म का सर्वश्रेष्ठ सजीव एवं सरस रूप है।

## ३. तृतीय अध्याय :

अपने शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में मैंने पुष्टिमार्गीय कीर्तन साहित्य के प्रारम्भ और विस्तार का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मैंने पाया है कि भक्ति मार्गों में भक्ति संगीत की कीर्तन प्रणाली पुष्टिमार्ग की ही देन है। केवल पुष्टिमार्ग में ही भगवद् सेवा वैदिक मंत्रों की जगह तत्कालीन लोक भाषा में (ब्रज भाषा में) कीर्तन पद गान द्वारा आज भी होता है जो अन्य किसी धर्म सम्प्रदाय में देखने को नहीं मिलती। पुष्टिमार्गीय कीर्तन साहित्य का अध्ययन करते हुए मैंने पाया कि साधारण दैनिक जीवन में भी संगीत की महता और लोक प्रियता सर्व विदित है। संगीत के स्वर हर प्राणी–पशु–पक्षी–मनुष्य सभी को वशीभूत करने की ताकत रखते है। विद्वानों का मत है–संगीत को सुनकर हम उस देश, जाति की सांस्कृतिक समृद्धि

का पता पा सकते हैं। प्रत्येक देश, जाति का संगीत वहाँ की जलवायु और वातावरण से प्रभावित होकर अपनी अलग विशेषता रखता है। निराशा, अवसाद, दुःख के क्षणों में तथा आशा, उल्लास, आकांक्षा की पूर्ति में भी स्वभाविक आह्लाद मन से प्रस्फुरित होकर संगीत के रूप में परिवर्तित हो जाता है जिससे आत्मिक सौन्दर्य का बोध होता है इसी से आगे चल कर शान्ति व परमानंद प्राप्ति का मार्ग भी संगीत ने मानव के लिए सुलभ बना दिया है। कृष्ण का चरित्र आदिकाल से ही परम आकर्षण का केन्द्र रहा है। श्रीमद् भागवत् इत्यादि के माध्यम से प्रस्फुरित हुई मधुर भक्ति के अंकुर जन–जन में फूट पड़े।

मानव का लौकिक प्रेम से अलौकिक ईश्वरोन्मुख दिव्य प्रेम ही अखिल विश्व के साहित्य और संगीत की कृतियों के अनन्य भावों तथा संवेदनाओं का कारण रहा है क्योकि इसीसे आस्था, स्थापित्व व आत्मिक शांति पाई जाती है।

यह सत्य है कि साहित्य और संगीत पृथक–पृथक भी सच्चे आनंद को प्रदान करने वाले है। बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के संगीत का सृजन तो हो सकता है किन्तु ऐसी अवस्था में एक के बिना दूसरा अपूर्ण सा ज्ञात होता है। साहित्य और संगीत कला अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी एक–दूसरे के पूरक रहे है। सुन्दर स्वरों में बद्ध संगीत के राग किसी भाषा, जाति या देश विशेष के गान न होकर सृष्टि के अमर संकेत होते हैं जो अपने माधुर्य के सहारे जड़–चेतन दोनों को आत्मविभोर व लीन कर देने की अपूर्व क्षमता रखते है। इस प्रकार अपने प्रेमाधिक्य से हृदयगत अनुभूति को संगीत और काव्य मय नव स्वर में झंकृत कर कृष्ण भक्ति कालीन कवियों ने संगीत और साहित्य के समन्वय की सुन्दर धारा को परम वेगवती कर दिया।

मैंने अपने अध्ययन से पाया है कि हमारे भारतीय संगीत कला के अंग–प्रत्यंग पर धर्म–आध्यात्मिकता की अमिष्ट छाप है। हमारे यहाँ संगीत का उच्चतम ध्येय आत्मा से परमात्मा का मिलन, परब्रह्म से शान्ति व मोक्ष की प्राप्ति का साधन रहा है। संगीत के स्वर मन को एकाग्र कर, हृदय की समस्त चंचल वृतियों को

केन्द्रीभूत कर भक्ति में तन्मयता व स्थिरता पाने में बड़े सहायक होते है। कालान्तर में विदेशी विजेताओं की संकीर्ण मनोवृति संगीत की प्रगति में बाधक हुई। भारतीय संगीत की पवित्रता और उसके आत्मिक सौन्दर्य को नष्ट करने के प्रयत्न हुए परन्तु भारतीय संगीत ने इस चुनौती को स्वीकार किया। जयदेव, गोपाल नायक, स्वामी हरिदास, इत्यादि संगीतज्ञ अवतरित हुए व अग्रस भी हुए। समय के साथ–साथ मुगल शासक अपेक्षाकृत सहिषुण निकले। इसी युग में उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा जिसमें रामानंद, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश, वल्लभाचार्य, सूरदास, तुलसीदास प्रभृति इत्यादि संतों व संगीतज्ञों ने संगीत की वह लोक पावन शाश्वत मंदाकिनी प्रवाहित की जिसमें योगदान देकर अनेक अगणित संत भक्त अमर हो गए और आज भी वह अपनी वाणी से जन मानस को पवित्र कर रहे है।

प्रेम के पुजारी भक्ति कालीन कृष्ण भक्त कवियों का चरम उद्देश्य अपने आराध्य देव की लीला और छवि का गान करना था। अपने इष्ट देव को रिझाने, भक्ति की तन्मयता में की गई अनुभूति को प्रकट करने के लिए इन भक्तों ने सुन्दर–सुन्दर पदों का गायन किया और दास्य, सखा, रति प्रभृति मनोभूमिकाओं में भावावेश में गाये गए ये पद ही अपने दिव्य साहित्यिक गुणों के कारण काव्य की संज्ञा से विभूषित हुए। कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी विनय, अपनी अकिंचनता, अपनी सांसारिक प्रतारणाओं की वेदना, अपने आराध्य श्री कृष्ण का चरित्र महात्म्य, अपनी शरणागति की भावनाएँ, संगीत की सरसता के सहारे व्यक्त किए है। इन कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में संगीत तत्व का विशिष्ट समावेश है। इन्होंने लोक और शास्त्रीय दोनों प्रकार के संगीत को अपनी भावना की अभिव्यंजना का माध्यम बनाया था। ये अनन्य कृष्ण भक्त काव्य गुणों से तो परिपूर्ण थे ही संगीत शास्त्र में भी पारंगत थे। संगीत के ठाठ में बँधा हुआ इन कृष्ण भक्त कवियों का काव्य आज भी हमारे अन्तः करण में आह्लाद भर आत्मिक प्रेरणा का एक नवीन संदेश भर देता है।

यधपि कुछ आलोचक विद्वानों का मत है कि इन कवियों ने जितना प्रयास अपने धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है उतनी दूर तक वे गेयत्व के लिए नहीं गए है। अपने अध्ययन से मैंने ये पाया है कि संगीत और काव्य की मर्मज्ञता तथा सच्चे भक्त की भक्ति–भावना को लक्ष्य कर ही कुम्भन, सूर, नंद– आदि भक्तों को वैष्णवाचार्यों ने अपना शिष्य बनाया था। कृष्ण भक्ति के प्रचार में इन भक्त कवियों के संगीत मय पदों ने जादू का काम किया। गायन, वादन और नृत्य (विशेषतः रासलीला) तीनों के सफल संयोग के द्वारा इन कृष्ण भक्त कवियों ने संगीत की परिभाषा को सार्थक कर दिया।

पुष्टिमार्गीय सेवा विधि के विधान में एक निश्चित क्रम और व्यवस्थित रूप में निर्धारित अष्टप्रहर की नित्य कीर्तन प्रणाली तथा वर्षोत्सव आदि की नैमितिक कीर्तन प्रणाली आज भी यथावत रूप से चल रही है। पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य के पश्चात् उनेक पुत्र विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना कर पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत को विश्व विख्यात बना दिया। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य से विदित है कि सम्राट अकबर जैसे कला प्रेमी और कलाश्रयदाता इन कृष्ण भक्तों के पद गायन सुनने के इच्छुक रहते थे। अकबर दरबार के नवरत्न में से एक तानसेन ने स्वामी हरिदास तथा अष्टछाप के गोविन्द दास से गान विद्या सीखी थी।

अन्तः यही कहना चाहूँगी कि हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भारतीय कलाओं के विकास का स्वर्ण युग रहा है। कलाओं के अपूर्व समन्वय द्वारा भावों की जैसी सूक्ष्म तीव्रतम अभिव्यंजना हुई वह विश्व इतिहास में अन्यत्र देखने को बहुत कम मिलती है। अपने इष्ट की भक्ति की तन्मयता में काव्य गान के रूप में प्रकट होने वाले पद ही कृष्ण भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य की अधिकांश निधि रहे है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन भक्तों में सन्तों, धर्म प्रचारकों तथा लौकिक कवियों ने भी अपने भावो–विचारों को प्रेम और सौन्दर्य के साथ संगीतमयी वाणी में व्यक्त किया। कृष्ण भक्त कवियों के इस गेय काव्य से हिन्दी साहित्य ने अपने

उतराधिकार में यह ऐसी पैतृक सम्पति प्राप्त की है जिसका वह आज तक सदुपयोग करता चला आ रहा है। हिन्दी साहित्य के काव्य जगत् में तथा संगीत क्षेत्र में भी पुष्टिमार्ग के अष्टछाप कृष्ण भक्त कवियों का स्थान अवर्णनीय है। जो विश्व के अन्य साहित्य में भी विरल रूप से ही मिलता है।

**४. चतुर्थ अध्याय :**

अपने शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में मैंने पुष्टिमार्गीय साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यूं तो पुष्टिमार्गीय साहित्य संस्कृत, हिन्दी (ब्रज भाषा) और गुजराती में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है किन्तु यहाँ मैंने अपने शोध विषय के अनुरूप केवल पुष्टिमार्गीय हिन्दी (ब्रज भाषा) साहित्य पर प्रकाश डाला है। सर्व प्रथम पुष्टिमार्गीय हिन्दी साहित्य का आरम्भ मौखिक रूप से वल्लभाचार्य जी ने किया था बाद में अपने शिष्य सेवकों को ब्रजभाषा हिन्दी में अपने इष्ट श्री कृष्ण की लीलाओं के गान करने की प्रेरणा दी।

पुष्टिमार्गीय साहित्य केवल भक्ति-ज्ञान का ही वर्णन नहीं करता बल्की राष्ट्रीयता, स्वदेशीता, स्व-स्वतंत्रता, पुरातन ऐतिहासिक गौरव आदि अनेक सफल अवतरण प्रस्तुत करता है। पुष्टिमार्गीय साहित्य से उस काल के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन की रूप रेखा सामने आती है। पुष्टिमार्गीय साहित्य चाहे गद्य हो चाहे पद्य हो उसका महत्व धार्मिक एवं साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में है। पुष्टिमार्गीय साहित्य में समान्य जन मानस की अभिव्यक्ति की झलक मिलती है आत्माभिप्राय का यह प्रस्तुती करण पुष्टिमार्गीय साहित्य की विशेष उपलब्धि रहा है जैसे-वार्ता साहित्य में आचार्यों के शिष्य सेवकों का वृतान्त, भावना साहित्य में मनुष्य की आत्मिक भावनाओं का अपने इष्ट के प्रति वर्णन, वचनामृत साहित्य जो आचार्यों द्वार अपने शिष्य-सेवकों-भक्तों को दिए गए बोध वचन, इसके अलावा यात्रा विवरण, मुख्य ग्रंथों का टीका साहित्य साथ ही पद्य साहित्य भी है जो

मुख्यतः अष्टछाप द्वारा रचित है और विश्व साहित्य में आज उसका अवर्णनीय स्थान है।

पुष्टिमार्गीय साहित्य रचना में भी अनेक धर्मी–विधर्मी कलाकारों व कवि भक्तों ने आश्रय लिया है, अष्टछाप कवि गण के उपरान्त अन्य यवन कवि जैसे रसखान, अलीखान पठान, बीबी ताज, इत्यादि भी इस साहित्य के इतिहास का हिस्सा बन चुके है।

अपने पुष्टिमार्गीय साहित्य के अध्ययन से मैंने पाया है कि मुख्य पुष्टिमार्गीय गद्य साहित्य के रूप में वार्ता साहित्य का महत्व विशेष है। साथ ही भावना साहित्य, वचनामृत साहित्य व अन्य गद्य साहित्य का वर्णन भी प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् उस अष्टछाप पद्य साहित्य का विवरण प्रस्तुत किया है जिसके कारण आज हिन्दी साहित्य विश्व स्तर पर भी आदर व सम्मान प्राप्त करता है। मुख्यतः सूरदास का पद्य साहित्य आज विश्व विख्यात है जो हिन्दी साहित्य को पुष्टिमार्गीय साहित्य की ही देन है। पुष्टि सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवि हिन्दी साहित्य जगत के सर्वोच्च कोटि के कवि है जिनका प्रदेय विराट व अतुलनीय है।

अन्तः यही कहना चाहुँगी कि उपरोक्त परिचयात्मक विवरण से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन लोक भाषा--ब्रज भाषा को माध्यम बना कर जो साहित्य पुष्टिमार्ग ने हिन्दी साहित्य जगत् को दिया वो अवर्णनीय है। इसका यथार्थ यही है कि आज भी इस पुष्टिमार्गीय साहित्य का यथोचित परीक्षण हिन्दी जगत् के महानुभावों व विद्वानों द्वारा अविरल रूप से किया जा रहा है।

**५. पंचम अध्याय :**

अपने शोध प्रबन्ध के पंचम अध्याय में मैंने पुष्टिमार्ग के प्रमुख रचनाकारों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। इतिहास का एक दौर जो भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है, इसी युग में पुष्टि सम्प्रदाय का स्थान सब से ऊँचा रहा है। इसी युग में 'संतों–महात्माओं–आचार्यों' ने 'सीकरी' को अपने आत्म त्याग के

बल पर चुनौती दी थी। इन भक्त जनों के जीवन का वास्तविक ज्ञान बहुत गहरा था।

पुष्टिमार्ग के आचार्यों व भक्तों ने भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य को अभिनय उँचाईयाँ प्रदान की है। पुष्टिमार्ग की स्थापना करने वाले परम वंदनीय महान् विभूतिओं के परम पावन जीवन चरित्रों से हमें एक दिव्य संस्कृति व पुनीत धर्म भावना की झाँखी देखने को मिलती है। पुष्टिमार्ग के मुख्य आधार स्तम्भ के समान इन महानुभाव आचार्यों व भक्त कवियों ने कला प्रचार के माध्यम द्वारा हमारी भगवद् भक्ति की रसिकता व सुकुमारता की सच्ची प्रतीति करवाने वाले रहे है। पुष्टिमार्ग के आचार्यों ने तत्कालीन विदेशी शासकों से अपने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए लोहा लिया और कई कष्ट उठाए।

पुष्टिमार्ग के स्थापक वल्लभाचार्य ने अपने अदम्य साहस एवं अपूर्व कौशल से दिल्ली के सुलतान सिकन्दर लोदी की मजहबी तानाशाही के जुल्मों से ब्रज वासियों की रक्षा की ओर उन्हें अपने सहज–सुलभ भक्तिमार्ग की ओर आकर्षित किया व सहस्त्रों लोगों को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। वल्लभाचार्य के पुत्र गोपीनाथ जी ने भी सम्प्रदाय व साहित्य की उन्नति में अपना योग दिया। वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने अकबर की सहिष्णुता व योग्यता तथा कार्य कौशल से पुष्टि सम्प्रदाय को राग, भोग और शृंगार का विशद् रूप प्रदान किया। गुसाँई जी के चतुर्थ पुत्र गोकुलनाथ जी ने भी पुष्टि सम्प्रदाय की उन्नति में अपना सर्वस्व स्वाहा कर, माला–तिलक प्रसंग में सम्राट जहाँगीर के समक्ष उपस्थित होना पड़ा। गोकुलनाथ जी की सुझ–बुझ से यह प्रकरण दोनों ओर की सहिष्णुता से शान्तिपूर्वक निपट गया। गोकुलनाथ जी के पौत्र हरिराय जी के समय में औरंगजेब के भीषण अत्याचार हो रहे थे इस कारण हिन्दू आराध्यों की प्रतिमाओं को ब्रज प्रदेश से हिन्दू राज्यों की ओर ले जाना पड़ा था। हरिराय जी ने भी इस बीच भारत भ्रमण कर अपने पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार प्रसार किया।

अन्तः उपरोक्त पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय का विस्तार कर, साहित्य निर्माण कर, तत्कालीन क्रुर शासकों के असीम अत्याचारों से हिन्दू जनता को उभारा। अतः इन महान गोस्वामी आचार्यों के व्यक्तित्व, कृतित्व से अवगत होना प्रत्येक हिन्दू का पावन कर्तव्य है। इसी दृष्टि से इनका संक्षिप्त जीवन चरित्र मैंने इस अध्याय में प्रस्तुत किया है।

पुष्टिमार्ग के अन्य मुख्य रचनाकारों में अष्टछाप का स्थान उच्चा है। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य से इन अष्टछाप कवियों की जीवन घटनाओं के बारे में वर्णन मिलता है। अष्टछाप के आठों महानुभावों का व्यक्तित्व त्रिआयामी रहा है– भक्त, कवि और संगीतज्ञ । पुष्टि सम्प्रदाय में की गई अष्टछाप की स्थापना अपने आप में इतिहास है जिसका प्रदान चाहे सम्प्रदाय हो, संगीत व साहित्य क्षेत्र में हो उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। तत्कालीन राजा–महाराजा, अन्य संत–महात्मा–भक्तों ने भी इनका यथोचित सम्मान किया था। यधपि आज भी यथार्थ माहिती के अभाव में उपरोक्त महानुभाव गोस्वामी आचार्यों व मुख्य भक्त कवियों की जीवनी सम्पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो पाई है। तथापि अपने समय में जन–साधारण का उचित मार्ग दर्शन कर इन महानुभावों ने अपनी सहृदयना का परिचय दिया है।

६. **षष्ठ अध्याय :**

अपने शोध प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में मैंने पुष्टिमार्गीय हिन्दी कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। अपने अध्ययन से मैंने पाया है कि ब्रजभाषा हिन्दी के गद्य और पद्य का व्यवस्थित रूप हमें पुष्टिमार्गीय हिन्दी कृतियों में ही प्राप्त होता है। पुष्टि सम्प्रदाय ने ही वार्ता साहित्य के द्वारा एक सर्वथा नवीन गद्य विद्या का आरम्भ किया जिसमें आगे चल कर भावना साहित्य, टिका साहित्य आदि को भी समृद्ध किया। पद्य विद्या में भी कीर्तन साहित्य से ब्रजभाषा को काव्य के क्षेत्र में अत्यन्त सम्पन्नता प्रदान की। काव्य में 'भ्रमर गीत' परम्परा का आरम्भ भी पुष्टिमार्ग की ही देन है इसमें सूर और नंद दास की भ्रमर गीत परम्परा अपने

आप में अद्वितीय साहित्य रहा है जिसका लोहा हिन्दी साहित्य जगत् के विद्वानों ने माना है। इसके अलावा पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य में नवधा भक्ति के सभी रूपों का वर्णन मिलता है जो तत्कालीन अन्य भक्त कवियों में इतनी विपुल मात्रा में उपलब्ध नहीं है। अभिव्यंजना शिल्प, भाव सबलता, कल्पना प्रवणता, भाषा माधुर्य, रस परिकल्पना सभी दृष्टिकोणों से पुष्टिमार्गीय पध कृतियों का मूल्यांकन उच्च कोटि का ही रहा है।

पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने दार्शनिक सिद्धान्त के प्रतिवादन में जहाँ पांडित्य पूर्ण संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है वही अपने पुष्टि सम्प्रदाय के साहित्य को जन–समाज तक पहुँचाने के लिए तत्कालीन लोक भाषा ब्रज बोली का सहारा लिया है तथा ब्रज बोली को साहित्यिक रूप प्रदान कर हिन्दी साहित्य जगत को गोरवान्तित किया है।

अस्तु यही कहूँगी की अपने शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत कि गई लेखनी के आधार पर यह विश्वास से केह सकती हूँ कि पुष्टिमार्ग ने हिन्दी साहित्य जगत् को साहित्य, काव्य, कवि, दार्शनिक सभी विभूतियों से सम्मानित किया है। परम्परा और प्रयोग ये दोनों किसी भी कलाकृति के उपकरण कहे जा सकते है जिसका उपयोग कर मैंने अपने मौलिक विचार यहाँ प्रस्तुत किए है। और अपने शोध विषय–'हिन्दी साहित्य को पुष्टिमार्ग की देन' को भी उपयुक्त उदाहरणों द्वारा व्याख्यायित कर स्थापित किया है।

पुष्टिमार्ग की इतनी समृद्ध परम्परा होते हुए भी इसका व्यवस्थित इतिहास आज भी प्राप्त नहीं होता है। साथ ही पुष्टिमार्गीय आचार्यों की उदासीनता के अनुभव के कारण भी इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे अत्यन्त कठिनाइयों व संघर्ष का सामना करना पड़ा है।

मेरे शोध प्रबन्ध के कार्य को सुन्दर, सुचारु व व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करवाने का श्रेय मैं अपनी निर्देशिका डॉ. शैलजा भारद्वाज को देती हूँ जिनके

ममत्वपूर्ण व्यवहार, महत्वपूर्ण सुझावों, विवेचनों, विचारों व मार्ग दर्शन की मैं अत्यन्त आभारी हूँ तथा आजीवन उनके आशीर्वाद की अभिलाषी हूँ।

साथ ही इन्दौर के महानुभाव विद्वान डॉ. गजानन शर्मा की मैं अत्यधिक अभारी हूँ जिन्होंने अपनी ज्ञान गरिमा की शीतल सुखद छाया में मुझे महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री, सहयोग व मार्ग दर्शन से कृतज्ञ किया। मैं डॉ. गजानन शर्मा की प्रेरणा व आशीर्वाद की आजीवन इच्छुक रहूँगी।

मेरे प्रोफेसर डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी तथा डॉ. ओम प्रकाश यादव की भी में कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अध्ययन सामग्री के साथ समय-समय पर मुझे अपना मार्ग दर्शन देकर मेरा हौसला बढ़ाया है।

अपने शोध प्रबन्ध के अध्ययन हेतु मैंने आणंद, अहमदावाद, नाथद्वारा, कांकरोली, इन्दौर व बड़ौदा का दौरा किया है। जिसमें कई प्रोफेसरों, विद्वानों व वैष्णवों ने मेरी सहायता की है। प्रो. नवनीत चौहाण (आणंद), प्रो. वीणाबेन शेठ (अहमदावाद), प्रो. कमला मुखिया व भगवती प्रसाद देवपुरा (नाथद्वारा), डॉ. रचना गौर (कांकरोली), वी.पी. परीख व परेश देसाई (बड़ौदा), जगदीश शास्त्री (खम्भात), जैमैश शाह (डीसा)-इन सभी महानुभावों की मैं अभारी हूँ।

कई संस्थाओं व पुस्तकालयों का भी मैने दौर किया जिनमें गुजरात विद्यापीठ (अहमदावाद), गुजरात युनिवर्सिटी लाइब्रेरी (अहमदावाद), भोलाभई लाइब्रेरी (अहमदावाद), वल्लभ सदन (अहमदावाद), हंसा मेहता लाइब्रेरी, ओरिएनटल लाइब्रेरी, सैन्ट्रल लाइब्रेरी (बड़ौदा), साहित्य मण्डल (नाथद्वारा), गुसाँई जी की बैठक (खम्भात), से मुझे आवश्यक पुस्तक सामग्री प्राप्त हुई है। इन सभी संस्थाओं व लाइब्रेरी के स्टाफ मेम्बर की भी मैं अभारी रहूँगी।

साथ ही विद्वानों की जिन कृतियों से मैंने सहायता ली है उनके प्रति भी मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ।

पुष्टिमार्गीय महिला आचार्य गोस्वामी इन्दिरा बेटी जी के आशीर्वाद की मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरा हौसला बढ़ाया व मुझे मार्गदर्शन दिया।

अपनी परम्परा व पारिवारिक वातावरण से प्रेरित होकर, मेरे माता–पिता की प्रेरणा से मैंने इस विषय को अपने शोध अध्ययन के लिए चुना था। अन्तः यही कहूँगी की अपने इष्ट 'श्री नाथ जी' के श्री चरणों में की हुई मेरी यह साधना शोध प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत है। और विद्वानों से सविनय निवेदन है कि मेरे इस प्रयास को स्वीकार करे तथा अज्ञानता से हुई त्रुटियों को उदार हृदय से क्षमा करें।

******

Bibliography

# संदर्भ ग्रन्थ सूची

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY • The M. S. University of Baroda


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास | – | प्रभु दयाल मीत्तल |
| २. | अष्टछाप परिचय | – | प्रभु दयाल मीत्तल |
| ३. | अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय | – | डॉ. दीन दयालु गुप्त |
| ४. | हिन्दी साहित्य का इतिहास | – | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल |
| ५. | श्रीमद् वल्लभ दर्शन एवं भक्ति सिद्धान्त | – | श्रीमती सौ. प्रतिभा व्यास |
| ६. | कांकरोली का इतिहास | – | प्रो. कण्ठमणि शास्त्री विशारद |
| ७. | पुष्टि पाथेय (गो. श्री द्वारकेशलाल जी महाराज स्मृति ग्रंथ) | – | माधव गोस्वामी |
| ८. | राधा वल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य | – | डॉ. विजयेन्द्र स्नातक |
| ९. | चौरासी वैष्णवन की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावनावाली) | – | गो. हरिराय जी प्रणीत |
| १०. | दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावनावाली) | – | गो. हरिराय जी प्रणीत |
| ११. | वैष्णव धर्म का उद्‌भव और विकास | – | सुवीरा जायसवाल |
| १२. | वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त | – | आचार्य बलदेव उपाध्याय |
| १३. | भागवत सम्प्रदाय | – | आचार्य बलदेव उपाध्याय |
| १४. | अणुभाष्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन (वल्लभाचार्य और उनका दार्शनिक सिद्धान्त) | – | डॉ. वाचस्पति शर्मा |
| १५. | ब्रज वैभव | – | ज्यो. राधेश्याम त्रिवेदी |
| १६. | गोस्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ | – | डॉ. वागीशकुमार गोस्वामी |
| १७. | ब्रज साहित्य और संस्कृति | – | डॉ. आनंद स्वरूप पाठक |
| १८. | ब्रज लोक वैभव | – | मोहनलाल मधुकर |
| १९. | ब्रज यात्रा : स्वरुप एवं महात्म्य | – | पं. हरिप्रसाद जी शर्मा (हरिदास) |
| २०. | हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) (सोलह भागों में) | – | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| २१. | पुष्टि सिद्धान्त दर्पण | – | श्री मनोहरलाल शास्त्री चतुर्वेदः (मनहरलाल जी) |
| २२. | गोस्वामी हरिराय जी और उनका ब्रज भाषा साहित्य | – | डॉ. विष्णु चतुर्वेदी |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २३. | पुष्टि माधुर्य : कृष्णदास स्मृति ग्रंथ | – | डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी |
| २४. | अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन | – | डॉ. मायारानी टण्डन |
| २५. | हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत | – | उषा गुप्ता |
| २६. | पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ | – | वासुदेवशरण अग्रवाल |
| २७. | अष्टछापीय भक्ति संगीतः उद्भव और विकास | – | चम्पकलाल छबीलदास नायक |
| २८. | हिन्दी के अष्टछापेत्तर पुष्टिमार्गीय कविः एक विवेचन | – | डॉ. अक्षयकुमार गोस्वामी |
| २९. | महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग | – | श्री कृष्ण शुद्धाद्वैत मण्डल, हैदराबाद |
| ३०. | महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावलि | – | हरिदास आगरा |
| ३१. | श्री नाथद्वारा का सांस्कृतिक इतिहास | – | प्रभुदास वैरागी |
| ३२. | श्रीमद् भागवत महापुराण | – | गीता प्रेस, गोरखपुर |
| ३३. | श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश | – | डॉ. गजानन शर्मा |
| ३४. | महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग | – | सीताराम चतुर्वेदी |
| ३५. | ब्रज विहार (गुजराती) | – | नवनीत प्रिय जेठालाल शास्त्री |
| ३६. | वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास (गुजराती) | – | दुर्गा शंकर केवलराम शास्त्री |
| ३७. | अष्टछाप | – | धीरेन्द्र वर्मा |
| ३८. | ब्रज भाषा | – | धीरेन्द्र वर्मा |
| ३९. | प्राचीन वार्ता रहस्य | – | द्वारकादास परीख |
| ४०. | वैष्णव धर्म | – | परशुराम चतुर्वेदी |
| ४१. | ब्रज माधुरी सार | – | वियोगी हरि |
| ४२. | श्रीमद् भागवत गीता | – | गीता प्रेस, गोरखपुर |
| ४३. | श्री महाप्रभु जी की निज वार्ता, धरु वार्ता, बैठक चरित्र इत्यादि | – | वैष्णव मित्र मण्डल सार्वजनिक न्यास, इन्दौर |
| ४४. | श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता (श्री हरिराय महानुभाव कृत) श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र | – | विद्या विभाग मंदिर मण्डल, नाथद्वारा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४५. | भाव सिन्धु की वार्ता | – | श्री द्वारिकादास जी परीख |
| ४६. | श्री आचार्य जी महाप्रभुन की निज वार्ता धरु वार्ता (भाव प्रकाश सहित) | – | सम्पादक : श्री द्वारकादास परीख |
| ४७. | खटऋतु वार्ता | – | सम्पादक : श्री द्वारकादास परीख |
| ४८. | रहस्य, भावना, निकुंज भावना | – | सम्पादक : निरंजन देव शर्मा |
| ४९. | अष्टसखान की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावना वाली) | – | सम्पादक : श्री द्वारकादास परीख |
| ५०. | कीर्तन ग्रन्थ (चार भागो में) | – | वैष्णव मित्र मण्डल, इन्दौर |
| ५१. | भाव भावना | – | सम्पादक : श्री द्वारकादास परीख |
| ५२. | सेवाक्रम एवम् उत्सव भावना (हरिराय जी कृत) | – | वैष्णव मित्र मण्डल, इन्दौर |
| ५३. | हीरक जयन्ति ग्रन्थ | – | भगवती प्रसाद देवपुरा साहित्य मण्डल, नाथद्वारा |
| ५४ | हीरक जयन्ति परिशिष्टांक | – | भगवती प्रसाद देवपुरा साहित्य मण्डल, नाथद्वारा |
| ५५. | स्मृति ग्रन्थ (अष्टछाप) | – | भगवती प्रसाद देवपुरा साहित्य मण्डल, नाथद्वारा |
| ५६. | वैष्णव दर्शन माला (पत्रिका) | – | डॉ. गजानन शर्मा |
| ५७. | वार्ता साहित्य के सन्दर्भ में पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास (शोध–प्रबन्ध) | – | कोकिलाबेन अम्बाप्रसाद शुक्ल |
| ५८. | कल्याण (उपासना अंक) वर्ष–४२ | – | पो. गीता प्रेस, गोरखपुर |

******